॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्री मद्वादीभसिंह सूरिविरचित

क्षत्रचूडामणिः

सान्वयार्थ

कर्ता और प्रकाशक

...पुर निवासी पंडित निद्धामल मैत्तल

प्रधानाध्यापकः —

श्री अभिनन्दन दि० जैन पाठशाला क्षेत्रपाल
ललितपुर ।

'जैनविजय' प्रिंटिंग प्रेस, खपाटिया चकला-सूरतमें
मूलचन्द किसनदास कापडियाने मुद्रित किया ।

श्री वीर निर्वाण सं० २४४७

प्रथमावृत्तिः] मूल्य १॥)
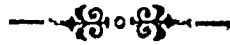
नोटः—पुस्तक मिलनेका पता—
पं० निद्धामल क्षेत्रपाल ललितपुर ।

नम्र निवेदन ।

पाठकगण—

मेरा बहुत दिनसे विचार था कि इस पुस्तकका अन्वयार्थ लिख कर छात्रोंके लिए अर्पण करूं किन्तु बहुतसी असुविधाओंके कारण मैं कृतकार्य नहीं हो सका भाग्योदयसे इस वर्ष सफलित हो सका हू । यद्यपि यह कार्य विद्वानोंकी दृष्टिमें उपादेय नहीं हैं तथापि इससे जैन समाजके संस्कृत पिपठिषु छात्रोंका उपकार अवश्य होगा ।

मुझे ८ वर्षसे इसका अनुभव है कि छात्रोंको कितनी ही बार इसका अन्वयार्थ समझाया जाता है किन्तु वो फिर भी संक्षिप्त कथाके कारण भूल जाते हैं इससे ऐसे छात्रोंका वहुत ही उपकार होगा ।

प्रेसके दूर होनेके कारण पुस्तकमें अशुद्धियां बहुत रह गईं हैं अतएव पाठकगण शुद्धिपत्रसे अशुद्धियां ठीक कर पढनेकी कृपा करें ।

भवदीय—

निद्धामल मैत्तल ।

श्री जीवंधर स्वामीका

जीवन चरित्र

प्रथम लम्ब ।

इस जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्रकी राजपुरी नामकी राजधानीमें एक सत्यंधर नामका राजा रहता था उसकी विजया नामकी सर्व गुणसम्पन्न एक रानी थी इस रानी पर यह राजा इतना मोहित हो गया था कि राजाने अपना सम्पूर्ण राज्याधिकार काष्टाङ्गार नामके किसी राज्य कर्मचारीको दे दिया था उस समय मंत्रियोंने उसे बहुत समझाया पर विषयासक्त होनेके कारण राजाने किसी की एक न सुनी, फिर कुछ दिनोके अनन्तर उस विजया रानीको गर्भ रहा उस समय रानीको रात्रिके पिछले भागमें तीन स्वप्न दिखाई दिये उनका फल विचार कर राजाको यह निश्चय हो गया कि मै अवश्य मारा जाऊगा । इस लिए उसने गर्भवती रानीकी रक्षा करनेके लिये आकाशमे उडनेवाला एक मयूराकृति यन्त्र बनाया और तदनुसार वह प्रतिदिन रानीको यन्त्रमे बिठलाकर कलके द्वारा आकाशमें उडानेका अभ्यास कराने लगा। इधर उस सम्पूर्ण राज्यधिकारी काष्टाङ्गारको क्या दुष्टता सूझी कि इस राजाके जीवित रहते हुए मैं पराधीन सेवक कहलाता हूँ इस लिये राजाको मारकर मुझे स्वतंत्र हो जाना चाहिये फिर उसने

एक दिन मंत्रियोंसे यह बहाना बनाया कि एक देव मुझसे राजाको मार डालनेके लिये आग्रह करता है।

मंत्रियोंमेंसे एक धर्मदत्त नामके मन्त्रीने उसकी दुष्टता समझ कर बहुत समझाया किन्तु उस दुष्टने उसकी बात अन-सुनी करके राजाके मारनेके लिये एक बड़ी भारी सेना भेजी। राजाने द्वारपालके द्वारा मारनेके लिये आई हुई सेनाको सुनकर रानीको यन्त्रमें बिठलाकर आकाशमें उड़ा दिया और स्वयं युद्ध करनेके लिये चल दिया युद्ध करते हुए राजाने विचारा कि वृथा मनुष्यहत्या हो रही है यह विचार कर राजा युद्धसे विरक्त हो गया और संसारकी अनित्यताका विचार करने लगा अन्तमें सम्पूर्ण परिग्रहोंको छोडकर अपने आत्मस्वरूपका चितवन करता हुआ युद्धमें मारा गया और मरकर देव हुआ। उस समय सारे पुरवासी लोग उदास और विरक्त होकर नाना प्रकारके विचार करने लगे और काष्टाङ्गार निष्कंटक होकर राज्य करने लगा।

उसी नगरीमें एक गन्धोत्कट नामका सेठ रहता था एक दिन वह तात्कालिक उत्पन्न हुए और फिर मरे हुए पुत्रको लेकर स्मशानमें उसकी मृत्यु क्रिया करनेके लिये गया तत्पश्चात् किसी मुनिके कथनानुसार वहां पर जीवित पुत्रकी खोज करने लगा। दैव योगसे सत्यन्धरकी विजया रानीको उस यन्त्रने उसी स्मशान भूमिमें जा पटका और उसी विपत्ति अवस्थामें मूर्छित रानीके एक सुन्दर पुत्र हुआ उस पुत्रके पुण्य माहत्म्यसे वहा एक देवि धायका रूप धारण करके आई और उसने विजया रानीको

आश्वासन देकर पुत्रके पालन करनेकी चिन्ताको दूरकर कहाकि तुम्हारे इस पूत्रको राजपुत्रोंके सदृश कोई दूसरा पालन करेगा इस लिये तुम इसको यहां ही रखकर छिप चलो। रानी भी विवश होकर उसके कथनानुसार पिताकी मुद्रासे युक्त पुत्रको जीव यह आशीर्वाद देकर छिप गई और उसी समय उडते फिरते हुए गन्धोत्कटने उस पुत्रको देखकर उठा लिया और जीव यह आशीर्वाद सुनकर जीवक वं जीवंधर उसका नाम रक्खा। और घर आकर अपनी सुनन्दा नामकी स्त्री पर कृत्रिम कोपकर कहा मूर्खे! तूने जीवित पुत्रको कैसे मरा हुआ कह दिया वह भी आनन्दसे उस जीवित पुत्रको गोदमें लेकर फूली न समाई और मारे खुसीके उसका चित्त उछलने लगा फिर क्या था उसने बालकको अच्छी तरह पालन पोषण किया।

पुत्रकी खुशीमें गन्धोत्कटने एक बडा भारी उत्सव किया जिसको मूढ काष्टाङ्गारने अपने राजा होनेकी खुशीमे समझकर गन्धोत्कटको बुलाकर बहुत कुछ धन दिया फिर गन्धोत्कटने उस समयके उत्पन्न हुए छोटे २ फलोको प्राप्तकर उनके साथ जीवंधर कुमारका पालन किया फिर कुछ दिनके पश्चात् उस कुमारके पुण्य प्रभावसे सुनदाके एक और गन्धोत्कट नामका पुत्र हुआ जिससे जीवंधरकी शोभा और बढ़ गई। उधर धात्री वेष धारी देवी विजया रानीको दण्डकारुण्यमें तपस्वियोंके समीप छोड़कर स्वयं किसी बहानेसे चली गई।

द्वितीय लम्ब।

फिर जीवंधरके बडे हो जाने पर गन्धोत्कटने विद्या पढाने के लिये उनको पाठशालामें विठलाया भाग्यवश सम्पूर्ण विद्याओंके पारगामी आर्यनन्दी नामके मुनि उ के गुरु हुए उनसे विद्या पढकर ये संपूर्ण विद्याओंमें अतीव निपुण हो गया तब गुरुने शिष्यको सम्पूर्ण विद्याओंमें निपुण देखकर अपना सारा वृतांत्त कह सुनाया " अर्थात मैं लोकपाल नामका विद्याधर राजा था मैंने मेघके मिमित्तसे संसारकी अनित्यता जानकर मुनिवृत्ति धारण करली थी। पश्चात तपश्चरण करते हुए पापकर्मके उदयसे मुझे भस्मकारव्य नामक रोग उत्पन्न हो गया इस रोगसे पीड़ित मैं मुनिवृत्तिको त्यागकर पाखडी वेष धारण कर क्षुधाकी निवृत्ति करनेके लिये इधर उधर घूमने लगा। दैवयोगसे एक दिन भोजन करनेके समय मै तुम्हारे रहनेके घरमें गया वहां पर तुमने मुझे अतीव बुभुक्षित जानकर अपने रसोइयेको आज्ञा दी कि इनको पेटभर भोजन कराओ किन्तु मेरे रोगकी उत्कटतासे तुम्हारे गृहमें परिपक्व भोजन मेरी क्षुधाको शान्त नहीं कर सका इससे आश्चर्य युक्त होकर भोजन करनेके लिये उद्युक्त तुमने अपने खानेके मोदकको मेरे हाथमे रख दिया उस समय तुम्हारे पुण्यमय हाथोंके स्पर्शसे वह मोदक मेरी क्षुधाकी निवृत्तिका कारण हुआ तब मैने सोचा कि मैं इस महान उपकारीका क्या उपकार करू अन्तमें मैंने विद्या प्रदान करना ही निश्चय किया फिर मैने तुमको विद्या पढाकर विद्वान बना दिया " वृतान्तके कथनान्तर तपश्चरणके

लिये चलते समय गुरूने यह भी कहा कि तुम सत्यंधर महाराजके पुत्र हो और काष्टाङ्गारने तुम्हारे पिताको मार डाला है इस बातके सुननेसे कुमार क्रोधित होकर काष्टाङ्गारसे अपने पिताका बदला लेनके लिये तैयार हो गया किन्तु मुनिने उसकी अल्पवयस्क अवस्था समझकर उससे एक वर्ष न लडनेकी प्रतिज्ञा कराली और वहासे चलकर पुनः दीक्षा धारण कर मोक्षपद प्राप्त किया।

उसी राजपुरी नगरीमें एक नन्दगोप नामका ग्वालियोंका स्वामी रहता था किसी दिनव्याधोंने बनमें आकर उसकी गायें रोकलीं जिससे वह दुःखित होकर अपने साथियोको लेकर काष्टाङ्गार राजाके समीप आक्रंदन शब्दकर चिल्लाने लगा उसके आक्रंदन शब्दसे सदय काष्टाङ्गार राजाने व्याधोंको जीतनेके लिये अपनी सेना भेजी किन्तु भेजी हुई सेना हारकर वापिस चली आई तब नन्दगोपने अपने धनकी रक्षा करनेके लिये यह ढिंढोरा पिटवाया कि जो व्याधोंसे हमारी गायें छुडा लावेगा मैं उसके लिये सप्त सुवर्ण पुत्रियोंके साथ अपनी गोविन्दा नामकी पुत्री व्याह दूंगा यह सुनकर जीवंधर कुमार अपने मित्रों सहित बनमे गया और व्याधोंको जीतकर नन्दगोपकी गायें छुडालाया अपनी प्रतिज्ञानुसार नन्दगोपने अपनी कन्या प्रदान करनेके लिये जीवंधरके लिये जलधारा छोडी किंतु जीवंधर कुमारने स्वयं व्याहनकर अपने प्रधान मित्र पद्मास्यके साथ उसका व्याह करा दिया॥

चौथा लम्ब ।

इसके अनंतर वसंत ऋतुमें नागरिक मनुष्योंकी जलक्रीडाको देखनेके लिये जीवंधर कुमार अपने मित्रोंके साथ वनमें गये जाते समय रास्तेमें हव्य सामग्रीको दूषित करनेके कारण याज्ञिक ब्राह्मणोंसे मारे हुए कुत्तेको देख कर अत्यन्त दया युक्त होकर उनके जिलानेकी चेष्टा करने लगे जिलानेकी चेष्टाएं सफलित न देख कर परलोकमें आत्माको सद्गति देनेवाले पंच नमस्कार मन्त्रका उसके कानोंमें उपदेश दिया। उस मंत्रके प्रभावसे यह पापिष्ट श्वान मर कर यक्ष जातिके देवोंका स्वामी यक्षेन्द्र हुआ पश्चात यक्षेन्द्रने अवधिज्ञानसे अपनी आत्माका वृतात जानकर अपना उपकार करनेवाले कुमारके समीप आकर उनकी पूजा की पश्चात् "किसी कार्यके करनेके लिये मुझे स्मरण कीजिये" यह कहकर तिरोहित हो गया।

तत्पश्चात् कुमारने अपने इष्ट स्थानकी ओर प्रस्थान किया उस जलक्रीडामें सुरमञ्जरी और गुणमाला नामकी दो कन्यायें भी आई थीं उन दोनों कन्याओंने अपने २ चूर्णकी उत्तमतामें वाद विवाद किया। गुणमाला यह कहती थी कि मेरा चूर्ण तेरेसे अच्छा है और सुरमञ्जरी भी ऐसा ही कथन करती थी अंतमें दोनोंने यह प्रतिज्ञा की कि जिसका चूर्ण परीक्षामें उत्तम निकलेगा वह जल स्नान करेगी और दूसरी विना स्नान करे वापिस घर चली जायगी फिर उन दोनो कन्याओने चूर्ण देकर अपनी २ दासियें विद्वानोंके समीप भेजीं वह दासीयें अन्य विद्वानोंसे परीक्षा करा कर अंतमें जीवंधरके समीप पहुंची और अपने २ चूर्णकी परीक्षा करानेके लिये प्रार्थना की जीवंधर स्वामीने दोनों

चूर्णकी परीक्षा करके गुणमालाका चूर्ण उत्तम बतलाया। तब सुरमञ्जरीकी दासी क्रोधित होकर कहने लगी जैसा औरोने बतलाया वैसा ही तुमने कहा क्या तुम भी उनके साथ एक ही शालामें पढे हो तब जीवधर कुमारने दोनोंके चूर्णोंको पृथक् २ करके फेलाया गुणमालाके चूर्णकी सुगधतासे भोर आकर उस पर मंडराने लगे यह देख कर सुरमञ्जरीकी दासी वहां चली गई और अपनी स्वामिनीसे सब वृत्तान्त जासुनाया तब सुरमञ्जरी अपनी प्रतिज्ञानुसार विना स्नान किये कि मैं जिवधर स्वामीको छोडकर दूसरेके साथ विवाह नहीं करूगी ऐसा मनसे संकल्प करके वहासे चली गई गुणमालाको अपनी सखीके विना स्नान किये चले जानेपर अत्यन्त दुःख हुआ अंतमें वह भी स्नान करके घरके लिये चल दी चलते समय रास्तेमे काष्टाङ्गारके अपने स्थानसे छूटे हुए मदोन्मत्त हस्तीने मनुष्योंमें खलवली मचाते हुए गुणमालाको आघेरा देख गुणमालाके कुटुम्ब गण सब भाग गये उनमेंसे बची हुई एक गुणमालाकी धाय जोरसे चिल्लाने लगी जिसके शब्दको सुनकर जीवंधर कुमार वहां आये और उसके हाथीको कुण्डलसे ताडितकर भगा दिया उस समय जीवंधर और गुणमालामें परस्परके अवलोकनसे एक दूसरेके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ अंतमें गुणमाला जीवंधरके प्रेमको हृदयमे छिपाये हुए घर चली गई घर जाकर क्रीडाके तोतेको पत्र देकर जीवधरके समीप भेजा गुणमालाके माता पिताको इन दोनोके प्रेम भवकी वार्ता विदित हो जाने पर उन्होने जीवंधरके साथ गुणमलाका विवाह कर दिया ।

पांचवां लम्ब ।

जीवंधरके कुंडलकी चोटसे दुःखित होकर हाथीने खाना पीना छोड दिया इस समाचारको सुन कर पूर्व कारणोंसे क्रोधित काष्टाङ्गारने जीवंधर स्वामीको पकड़नेके लिये अपने मथन नामके सालेको बहुत सेनाके साथ भेजा। जीवंधर भी गुरुके समक्ष की हुई प्रतिज्ञाके अनुसार और गंधोत्कटके समझानेसे नहीं लड़ा फिर क्या था काष्टाङ्गारकी सेनाके मनुष्य उसके हाथ बांध कर राजाके सामने ले गये उस दुष्टने कुमारको जानसे मारडालनेके लिये आज्ञा दे दी मारनेके समय यक्षेन्द्र अपनी विक्रियासे जीवधर स्वामीको वहांसे उठा ले गया और अपने स्थान पर ले जा कर जीवंधर स्वामीका क्षीरसागरके जलसे अभिषेक कर उनको "अपनी इच्छानुसार रूप बनानेमें, गानेमें और सर्पका विष दूर करनेमें शक्तिमान तीन मन्त्रोंका उपदेश दिया" पश्चात यक्षकी अनुमतिसे वहांसे चलकर कुमारने वनमें वन अग्निसे जलते हुए हाथियोंको देखकर सदय हृदय हो भगवानका स्तवन किया जिसके प्रभावसे उसी समय मेघगर्जना करते हुए वरसे यह देखकर जीवधर स्वामीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई पश्चात् वहांसे चलकर अनेक तीर्थ स्थानोंको पूजते हुए चन्द्राभा नगरीमें पहुंचे वहांके राजा धनपतिकी पुत्री पद्माको सांपने काट खाया था जिसको मन्त्रके प्रभावसे जीवदान देकर राजासे सम्मानित हुए अन्तमें राजाने पद्माका जीवंधर स्वामीके साथ विवाह कर दिया।

छटवां लम्ब

फिर कुछ दिन वहीं रहकर जीवंधर स्वामी वहांसे विना कहे ही चल दिये और मार्गमें अनेक तीर्थस्थानोंकी वन्दना करते हुए एक तपस्वियोंके आश्रममें पहुचे वहांपर तपस्वियोंको पंचाग्नि आदिके मध्यमे तप करते हुए देखकर उन्हें अनेक प्रकारसे धर्मका उपदेश देकर, सच्चे धर्मका स्वरूप समझा कर भगवत प्रणीत सम्यक् तपमें प्रवृत करावा फिर वहांसे चलकर जीवंधर कुमार दक्षिण देशके सहस्र कूट चैत्यालयमे पहूंचे वहांपर जिन मंदिरके किवाड बन्द देखकर बाहरसे ही भगवतका स्तवन प्रारम्भ किया जिसके प्रभावसे जिनमन्दिरके किवाड खुल गये यह देख-कर पूर्वसे रहनेवाला वहांका एक मनुष्य जीवंधर स्वामीसे आकर विनयपूर्वक मिला उससे जीवंधर स्वामीने पूछा तुम कौन हो और किस लिये यहां रहते हो उसने कहां मै क्षेमपुरीमें रहनेवाले सुभद्र नामके सेठका किंकर हूं उसकी क्षेमश्री नामकी कन्याके जन्मलग्नमें ज्योतिषियोंने यह गणना की है कि जिसके आनेपर सहस्र कूट मन्दिरके किवाड़ खुलेंगे वह इसका पति होगा उस मनुष्यकी परीक्षा करनेके लिये भेजा हुआ यहां रहता हूं भाग्य-वश ! आज आपके शुभागमनसे जिन मंदिरके किवाड़ खुल गए हैं इसलिये आप यहां पर कुछ देर ठहरिये ताकि मै अपने स्वामीको आपके शुभागमनकी सूचना दे आऊं फिर उस मनुष्यने शीघ्रही अपने स्वामीके पास जाकर प्रसन्नता पूर्वक जीवंधर स्वा-मीका सारा वृतान्त कह सुनाया सुभद्र भी यह बात सुनकर शीघ्र

वहां आया और जीवंधर स्वामीको पूजन करते हुए देखकर शीघ्र ही उनके शरीर और ऐश्वर्य आदिककी परीक्षा करली तदनन्तर जीवंधर स्वामीको अपने घर ले जाकर शुभ मुहूर्तमें क्षेमश्री नामकी अपनी कन्याका उनके साथ विवाह कर दिया ।

सातवां लम्ब ।

फिर क्षेत्रपुरीमें भी कुछ दिन रह कर जीवंधर स्वामी वहांसे चल दिये चलते समय विवाहके जो वस्त्राभूषण पहने हुए थे उन्हें किसी अच्छे पात्रको देनेके लिये उन्होने विचार किया जब कोई अच्छा पात्र न मिला तो भाग्यवश मार्गमें जाते हुए एक किसानसे बातचीत कर उसे भद्र ज्ञान धर्मका उपदेश दे श्रावक बनाकर अपने सब बहु मूल्य वस्त्राभूषण उतारकर उसे दे दिये ।

आगे चलकर एक बनमें जब कि वे विश्राम करनेके लिये बैठे हुए थे कि इतनेमे किसी विद्याधरकी स्त्री वहा आकर उन्हें दूरसे देखकर उनपर आसक्त हो गई और उनके समीप आकर यह बात बनाई कि मै एक विद्याधरकी अनाथ कन्या हूं मुझे मेरे छोटे भाईके सालेने जबरदस्ती लाकर अपनी स्त्रीके भयसे यहां लाकर छोड़ दिया है इसलिये आप मेरी रक्षा करें जीवंधर कुमार उसके ये वचन सुनकर एकांतमें परस्त्रीके मिलनेसे अत्यन्त भय-भीत हुए वे वहासे जानेके लिये उद्युक्त ही थे इतनेमें ही दूरसे उन्होने यह शब्द सुना कि हे प्राण प्यारी ! मुझे छोडकर कहां चली गई मेरे प्राण निकले जाते हैं इस शब्दके सुनतेही वह स्त्री

बहाना बनाकर वहांसे शीघ्र ही चली गई उसका पति वहां आकर जीवधर स्वामीसे कहने लगा कि हे महाभाग ! मैं अपनी प्यासी स्त्रीको इस बनमें बिठलाकर जल लानेके लिए गया हुआ आकर नहीं देखता हूं और विद्याधरोंके उचित मेरी विद्याभी न मालूम इस समय कहा चली गई जीवंधर कुमार उसके यह बचन सुनकर स्त्रीमें अत्यन्त प्रेम करनेसे डरे और उस भवदत्त विद्याधर-को बहुत समझाया किन्तु उस कामातुरके चित्तमें जीवंधर स्वामीके उपदेशने कुछ भी असर नहीं किया फिर वहासे चलकर जीवंधर कुमार हेमामा नाम नगरीके समीप पहुंचे वहां दृढमित्र राजाके सुमित्रादि बहुतसे पुत्र अपने २ बाणों द्वारा बगीचेमे आम्रके फलोंको तोड रहे थे किंतु उनमेंसे कोई भी धनुर्विद्यामे चतुर नहीं था कि आम्र सहित बाणको वापिस अपने हाथमें ले आये किंतु जीवंधर स्वामीने आम्र सहित बाणको अपने हाथमे लेकर उन्हें दिखा दिया यह देख कर बडे राजकुमारने उनसे कहा कि यदि आप उचित समझें तो हमारे पितासे मिलनेकी कृपा करें वे बहुत दिनोसे धनुर्विद्यामें चतुर विद्वानकी खोजमें हैं जीवधर कुमार उनके कहनेको स्वीकार कर राजासे मिले और राजाकी प्रार्थना करने पर इन सबको धनु-र्विद्यामें प्रवीण कर दिया फिर राजाने इस उपकारसे उपकृत हो अपनी कनकमाला नामकी कन्याका उनके साथ विवाह कर दिया। और फिर जीवंधर स्वामी अपने सालोंके प्रेमसे वहा ही रहने लगे।

———○———

आठवा लम्ब ।

फिर एक दिन मुस्कराती हुई कोई स्त्री उनके पास पहुंची उन्होंने उसे किसी मतलबसे आई हुई समझ कर आदर पूर्वक पूछा " कि तुम यहां क्यों आई " उसने कहा कि हे स्वामिन् ! आयुधशालामें और यहां पर मैं आपको अभेद रूपसे देखती हूं " अर्थात् जिस समय आप यहां हैं उसी समय मुझे आपके समान कोई दूसरा पुरुष वहां दिखाई दिया " फिर जीवंधर स्वामीने यह बात सुन कर आश्चर्य युक्त हो मनमें विचार किया कि क्या यहां मेरा भाई नंदाढ्य आगया है शीघ्र ही वहां जाकर देखा तो उस स्त्रीका कहना सच निकला वहांपर नंदाढ्य ही था फिर क्या था दोनों भाइयोंके समागम होने पर जीवंधर स्वामीने नंदाढ्यसे पूछा कि तुम यहां कैसे आये तब उसने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया अर्थात् "दुष्ट काष्टाङ्गारसे आपका अनिष्ट (मरण) निश्चयकर प्रजावती गन्धर्वदत्ताके रहनेके घरमें पहुंचा उसको पतिवियोगसे कुछ भी दुःखित न देखकर मैंने कहा हे स्वामिनि ! पतिके अभावमें कुलीन स्त्रियोंको तुम्हारी जैसी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती हैं यह सुन उसने कहा " हे वत्स तुम क्यों खेदित होते हो तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता आनन्द पूर्वक सुख भोग रहे हैं यदि तुम्हारी इच्छा उनके दर्शन करनेकी है तो मैं तुमको अपनी विद्याके प्रभावसे उनके पास पहुंचा देती हु मैं पापिनी उनकी आज्ञाके विना एक पग भी घरसे बाहर नहीं जा सकती हू " यह कह कर मुझे मन्त्रपूर्वक शय्यापर सुला कर आपके समीप यह पत्र देकर भेजा है " ।

यह सुनकर स्वामी गुणमालाकी व्यथाका सूचक पत्रको पढ़कर खेचरी गन्धर्वदत्ताके लिये ही खेदित हुए।

फिर ससुरालके सब मनुष्य उनके छोटे भाई नन्दाढ्यको घेर कर उससे प्रेमालाप करने लगे।

तत्पश्चात् एक दिन बहुतसे ग्वालिये राजाके अङ्गणमें आकर इस प्रकार चिल्लाने लगे कि बनमें हमारी गाऐं बहुतसे मनुष्योंने रोक ली है उनके आक्रदन शब्दको सुनकर श्वसुरसे रोके हुए भी जीवंधर कुमार उनकी गौऐं छुडानेके लिये बनमे गये वहा जाकर क्या देखते हैं कि गौओके पकडनेवाले नन्दाढ्यके चले आनेपर गन्धर्व-दत्ताके द्वारा भेजे हुए सब मेरे मित्र ही है उन सबने मालिककी तरह उनका सन्मान किया और जीवंधर स्वामीका मित्रवद् उन लोगोंके व्यवहार न करनेसे और अधिक सन्मान करनेसे उन पर सदेह हुवा और उनसे एकान्तमें उसका कारण पूछा मित्रोंमेंसे प्रधान मित्र पद्मास्यने कहा " स्वामिन् ! आपके वियोगसे दुःखित हम लोग आपके समीप आते हुए कुछ समयके लिये दण्डकारण्यमें ठहरे वहा पर तपस्वियोंके आश्रमको देखनेके लिये इधर उधर घूमते फिरते हुए हम लोगोंने एक स्थान पर किसी एक पुण्य माताको देखा उस माताने हम लोगोंसे पूछा कि तुम कहाके रहने वाले हो और कहां जा रहे हो फिर हमने आपकी घटनाका सब वृत्तान्त मातासे कहा जिससे उन्हें दारुण दुःख हुआ फिर वार २ आश्वासन दिलाकर उनकी आज्ञा लेकर आपका वृत्तान्त जानकर आपकी सेवामें आये हैं " फिर जीवंधरस्वामी जीवित जननीको

मरी हुई समझनेसे अतीव दुखी हुए और माताके चरण कमलोंके दर्शनोंके लिये अत्यन्त उत्कंठित हुए फिर क्या था श्वसुरादिककी आज्ञा ले और अपने सालोंको समझाकर वहांसे माताके दर्शनोंके लिये चल दिये दण्डक अरण्यमें आकर उन्होंने माताके दर्शन किये।

माताने जन्मसे विछुड़े हुए पुत्रको पाकर पहलेके सारे दुःख भुला दिये।

फिर जीवंधरस्वामीने अपनी माताको अपने मामाके समीप भेजकर स्वयं राजपुरीके लिये प्रस्थान किया। चारुवृत्तिसे वहांका वृत्तान्त जाननेके लिये जव कि वे इधर उधर घूम रहे थे एक स्थान परगेंदसेक्रीडा करती हुई एक जवान कन्याको देखकर उसे विवाह करनेकी इच्छासे उसके दरवाजेके अगाडीके छज्जेपर जा बैठे। इतनेमें उस कन्याके पिताने आकर उनसे कहा कि "ज्योतिषियोंने मेरी कन्याके जन्म लग्नमें यह गणनाकी थी कि तुम्हारे घर पर जिसके आनेसे बहुत दिनोंके रक्खे हुए रत्न विक जायेंगे वही इस कन्याका पति होगा आज आपके आनेपर मेरे सब रत्न विक गये हैं इस लिये आप कृपा कर मेरी विमला नामकी कन्याके साथ विवाह करें।

जीवधरस्वामीने उसके आग्रहसे कन्याके साथ विवाह करनेकी स्वीकारता दे दी और विमलाके साथ विवाह कर विवाहके चिन्हों सहित अपने मित्रोंसे जा मिले।

नवमां लम्ब।

फिर जीवंधरकुमारको विवाहके चिन्होंसे युक्त देखकर बुद्धिषेण नामके विदूषकने कहा कि औरोंसे उपेक्षा की हुई कन्याके साथ विहाह करनेमें मित्र आपका क्या बडपन है इसको तो हर कोई विवाह सकता था हम आपको चतुर जब हीं समझेंगे । जब सुरमञ्जरीके साथ विवार करलो यह सुन जीवंधर कुमार मित्रोंके पाससे चल दिये और यक्षके मंत्रके प्रभावसे बूढ़े ब्राह्मणका वेष बना कर किसी प्रकार सुरमञ्जरीके यहां पहुंचे सुरमञ्जरीने अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मणको भूखा समझ कर भोजन कराया और आराम करनेके लिये एक सुकोमल शय्या दी फिर क्या था उस बूढेने मत्रके प्रभावसे जगन्मोहन गाना प्रारम्भ किया जिसको सुन सुरमञ्जरी इसको अत्यन्त शक्तिशाली समझी और अपना कार्य अर्थात् इच्छित वरकी प्राप्तिका उपाय इससे पूछा तब उसने कहा कामदेवके मदिरमे चल कर उसकी उपासना करो अवश्य तुम्हारा इच्छित वर तुमको वहा ही प्राप्त होगा फिर सुरमञ्जरी इसकी बात पर विश्वास कर उसके साथ कामदेवके मंदिरसे गई और जीवंधर कुमारको पतिभावसे पानेके लिये प्रार्थना की वहां पर पूर्वसे बैठे हुए बुद्धिसेनने कहा "तुम्हारा पति तुमको मिल गया" पीछे फिर कर क्या देखती है कि जीवंधर कुमार खड़े हुए हंस रहे हैं । कुमारी "यह कामदेवके ही वचन हैं" ऐसा समझी और कुमारको देख कर अत्यन्त लज्जित हुई अंतमें जीवंधरके साथ उसका विवाह हो गया ।

दशवा लम्ब ।

इसके पश्चात् जीवंधर स्वामी अपने माता पिता (सुनन्दा और गन्धोत्कट,से मिले तदनन्तर गन्धर्वदत्ता और गुणमालाको अपने समागमसे प्रसन्न कर पूज्य गन्धोत्कटसे सलाह कर और उनकी अनुमति ले विदेह देशकी धरणी तिलक नामकी नगरीके राजा अपने मामा गोविद राजके समीप पहुंचे जीवंधर कुमारके वहां पहुचने पर गोविदराजने काष्टाङ्गारका भेजा हुआ संदेशा मंत्रियोंके समक्ष सुनाया उस संदेशेमें काष्टाङ्गारने यह लिखा था कि महाराज सत्यंधरकी मृत्यु एक मदोन्मत्त हस्तीके द्वारा हुई थी किंतु पापकर्मके उदयसे मैं ही उस अयशका भागी हुआ और यह बात समझदार राजा गण मिथ्या समझते ही हैं यदि आप भी इस बातको मिथ्या समझकर यहां आकर मुझसे मिलनेकी कृपा करेंगे तो मैं अवश्य सर्वथा निःशल्य हो जाऊंगा ।

फिर गोविन्दराजने कहा कि शत्रु हमको अपने पास बुलाकर हमें भी अपने जालमे फंसाना चाहता है । अस्तु–हमको भी इसी बहानेसे चलकर उसे इस चालका मजा चखाना चाहिये यह निश्चय कर अपने राज्यमें इस बातका ढिंढोरा पिटवा दिया कि हमारी काष्टाङ्गारके साथ मित्रता हो गई है ।

पश्चात् बहुतसी सेनाके साथ जीवंधर कुमार व गोविन्दराजने शुभ दिनमे भगवत पूजनादि मांगलीक पूजा विधानकर राजपुरीके लिये प्रस्थान किया फिर कुछ दिनोंके पश्चात् राजपुरीके समीप पहुचकर अपनी सेना ठहरा दी ।

तब काष्टाङ्गारने गोविन्दराजको अपने पास आए हुए समझकर बहुतसी उत्तम २ वस्तुओंकी भेट भेजी गोविन्दराजने भी उसके उत्तरमें ऐसा ही किया ।

फिर गोविन्दराजने एक चन्द्रक यन्त्र बनाकर इस बातकी घोषणा कराई कि जो इस चन्द्रक यन्त्रको भेदन करेगा उसे मैं अपनी लक्ष्मणा नामकी कन्या व्याह दूंगा इस घोषणाको सुनकर सब धनुषधारी राजा लोग जिस मंडपमें वह यन्त्र रक्खा था वहां पर आये और फिर सब यन्त्रमें स्थित वराहोंको भेदन करनेकी कोशिश करने लगे किंतु कोई भी उनका छेदन करनेमें समर्थ नहीं हुआ अन्तमें जीवंधर स्वामीने अपने आलात चक्रके द्वारा क्रीडा मात्रसे उनको छेद दिया ऐसे उत्तम अवसर पर गोविन्द-राजने राजाओंके समक्ष जीवंधर स्वामीका परिचय देते हुए यह कहा कि यह सत्यंधर महाराजके पुत्र मेरे भानजे जीवंधरकुमार हैं।

यह सुनकर बहुतसे राजाओंने यह कहा कि हम लोग भी उनके आकारसे ऐसा ही अनुमान कर रहे थे यह सुनकर काष्टाङ्गारके हृदयमें अत्यन्त दारुण दुःख हुआ और मनमें विचार करने लगा कि मैंने व्यर्थ ही अपने नाशके लिये इसके मामाको यहां क्यों बुलाया और प्रथम मेरे सालेने इसको मार दियाथा फिर ये कहांसे आ गया और ये अपने मामाके बलको पाकर मेरे किस २ अनिष्टको नहीं करेगा इस प्रकार चिन्तामें व्याप्त काष्टाङ्गारको स्वामीके मित्रोंने लडनेके लिये उत्तेजना की और फिर लड़ाईमें वह जीवंधर स्वामीके हाथसे मारा गया।

पश्चात् गोविन्दराजने अपनी पुत्रीके साथ जीवंधर स्वामीका व्याह कर दिया और फिर राजपुरीमें जाकर यक्षेन्द्र और अन्य राजाओंके साथ जीवंधर स्वामीका राज्याभिषेक किया।

राजा होनेके पश्चात् जीवंधर स्वामीने बारह वर्ष पर्यन्त

अपने राज्यमें टेक्स माफकर दिया और नंदाढ्यको युवराज पद पर स्थितकर अन्य पद्मास्यादि मित्रोंको यथोचित पद प्रदान किये अन्तमें अपनी सब स्त्रियोंको बुलाकर गन्धर्वदत्ताको पटरानी पद प्रदान कर सुख पूर्वक राज्य करने लगे ।

ग्यारवां लम्ब ।

फिर कुछ दिनोंके पश्चात् विजया महारानी अपने पुत्र जीवंधर स्वामीको उसके पिताके राज्यपर स्थित देख और पुण्य पापका फल अपनेमें प्रत्यक्षकर संसारसे विरक्त हो गई और पुत्रकी अनुमति ले सुनन्दाके साथ वनमें जाकर पद्मा नामकी आर्यिकासे दीक्षा ग्रहणकर तपश्चरण करने लगी ।

फिर एक समय वसंत ऋतुमें जीवंधर स्वामी अपनी आठ स्त्रियों सहित वन क्रीड़ा करनेके लिये वनमें गये । वहां एक बानर दूसरी बानरीसे समंध रखनेके कारण कुपित अपनी बानरीका अनुनय करनेमें असमर्थ हो स्वयं मृत तुल्य स्थित हो गया तब यह देख उसकी बानरीको अत्यन्त दुःख हुआ और वह अपने पतिके समीप आकर उसके शरीरको बार २ अपने अङ्गसे स्पर्श करने लगी तब कपटीबानर हर्षित हो उठ खड़ा हुआ और एक पनसका फल तोडकर अपनी बानरीको दिया फिर वनपालने वानरीको डरा कर उससे वह फल छीन लिया यह देखकर तत्काल ही जीवंधर स्वामीके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और विचार करने लगे कि यह वनपाल मेरे समान है और वानर काष्टाङ्गारके सदृश है राज्य

पनस फलके समान है इस प्रकार संसारमें किसीकी संपत्ति स्थिर नहीं है इत्यादि बारह भावनाओंका बार २ चिन्तवन कर जिनेन्द्र मंदिरमें जाकर जिनदेवकी पूजा की पूजा करते समय वहांपर आये हुए चारण मुनिसे धर्मका उपदेश सुन इन्होंने अपनी पूर्वभव संबंधी भवाबली पूछी।

पूछने पर महामुनिने कहा कि " तुम पूर्व जन्ममें धातुकी खंड द्वीपके भूमि तिलक नाम नगरके पवनवेग नाम राजाके यशोधर नामके पुत्र थे बालक अवस्थामें तुम किसी हंसके बच्चेको उसके स्थानसे क्रीड़ा करनेके लिये उठा लाये थे तब तुम्हारे पिताने तुमको उपदेश देकर धर्मका स्वरूप समझाया तब तुमको अपने कृत्य पर अत्यन्त पश्चाताप हुआ फिर अन्तमें तुमने अपनी आठ स्त्रियों सहित मुनि पद धारण कर लिया पश्चात् स्वर्गमें उत्पन्न हो वहांसे चयकर यहां पर तुम सत्यंधर महाराजके पुत्र हुए। इस लिये पूर्व जन्ममें तुमने हंसके बच्चेको उसके मांवाप तथा उसके स्थानसे अलग किया था और अपने घर लाकर उसे पिंजरेमें बंद किया था इस लिये उसके अलग करनेसे तुम्हें अपने माता पितासे वियोग और उसके बंधनसे बंधनका दुःख हुआ।

फिर जीवंधर स्वामी मुनिके यह बचन सुन कर राज्यसे विरक्त हो घर आकर गन्धर्वदत्ताके पुत्र सत्यंधरको राज्य दे अपनी आठ स्त्रियों और छोटेभाई नन्दाढ्य सहित वर्धमान स्वामीके समीप जाकर मुनिपद धारण कर लिया और अन्तमें फिर घोर तपश्चरणके द्वारा अष्ट-कर्मोंका नाश कर मोक्षपद प्राप्त किया।

इतिशम्‌ ! शुभं भूयात्‌ ! !

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१	३	अन्तङ्ग	अन्तरङ्ग
१	७	प्रप्त	प्राप्त
१	८	जीवकोद्भव	जीवकोद्भवम्
२	१०	इस	(एतद्) इस
२	१३	इम	इस
२	१४	खंडन	खंडमें
२	१५	हेमाङ्ग	हेमाङ्गद
३	४	नित्योद्यागी	नित्योद्योगी
३	९	तस्य	तस्यां
४	१७	पराधन	पराराधन
४	१७	दे॰यात्	दैन्यात्
५	२२	(इदं)	(इदं विज्ञाप्यं)
९	२	शुङ्क	शङ्कः
९	४	सपदि	संपदि
९	६	हृदी	हृदि
१०	४	शुश्रूषा	शुश्रूषी
१०	६	आसित्	आसीत्
११	११	आपत्तिका उपाय	आपत्तिके नाशका उपाय
१३	३	अकल	अकाल
१३	१३	बुद्धि	नित्य बुद्धि
१४	१२	पराधनात्	पराधीनात्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१४	१४	कानेन	कानने
१४	२१	मुक्तसे	मुझसे
१५	६	कया	किया
१५	१०	एतद् वक्तुमधि	एतद्वक्तुमपि
१५	१३	भवसे	भयसे
१५	२०	कुलन	कुलीन
१६	२	आत्मघ्नि	आत्मघ्नीं
१६	४	धर्महत्तारव्य:	धर्मदत्तारव्य:
१६	८	पणिनां	प्राणिनां
२०	१२	नाद्भतम्	नाद्भुतम्
२०	१३	जलबुन्दद	जलबुद्बुद
२२	९	असाह्याङ्गुलि:	असाहाय्याङ्गुलि:
२३	१	विषयासक्ति दोष	विषयासंग दोष:
२३	१९	त्याज्य	त्याज्या:
२४	७	(तद्	(तत्त्याग:)
२५	१०	उसके	उससे
२५	२२	करते है	मानते हैं
२७	१३	करभी	भी
२७	१३	कुर्वन्ति	करोति
२७	१७	कृत्य:	कत्य:
२८	६	मोहन्ति	मुह्यन्ति

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्धि	अशुद्धि
२८	५	देहिनां	देहिनः
२८	१२	अधुना	अधुना
२९	६	वाली	वाले
२९	२०	पातयमास	पातयामास
३०	२२	०	(पंडिता विभ्यतु)
३१	११	सन्निधात्	सन्यधात्
३२	२०	तद्दर्शन	तद्दर्शनेन
३३	८	सूतम्	सुतम्
३३	८	अशास्य	आशास्य
३३	१२	सुखिया	सुखिया
३३	१६	हंति	होती
३५	८	मे०	कृत्वा
७३	१४	(सद्बन्धुःमित्रःअयं)	(सद्बन्धुमित्रः अयं)
३७	२२	हो	होते हुए
३८	४	कमपि	कापि
४१	२१	ऐश्वर्यमें	ऐश्वर्य
४२	१६	जैनी की	जिन संमंधी
४३	१०	दग्धं	दग्धुं
४५	१५	अबु भुजत्	अबूभुजत्
४६	११	पुण्स्य	पुण्यस्य
४७	९	से०	(विद्यमानापि)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४७	५	आयुष्यन्त	आयुष्मन्तम्
४८	१८	शेषतः	विशेषतः
५०	९	गुणः नश्यति)	गुणाः नश्यति
५१	९	अभ्याघात्	अभ्याघात्
५१	१५	अभ्यथात्	,,
५३	१५	दहेस्त्वमेव	दहेत्स्वमेव
५६	१	पदार्थोके०	पदार्थोंके (विनाशवत्
५६	१४	जागृत्वं	जाग्रत्वं
५६	१९	अजलाशय	जलाशय
५८	१	लिये०	(अत्र)
५८	१९	तक०	(न याति)
६०	५	जागृति	जाग्रति
६०	१६	जो	वहा जो
६२	१७	यथाशक्त.	यथाशक्ति
६६	४	पद्मास्यके	(पद्मास्ये)
६६	१२	(श्रीदत्त नामक)	(श्रीदत्त नामकः)
६६	१५	धनशा	धनाशा
६७	१३	भर्यपि	भूर्यपि
७०	४	ओवरान्तं	अवारान्तं
७०	१४	समुद्रको०	समुद्रको (गताः)
७१	७	(पूयं)	(यूयं)
७१	२३	पूर्वोक्त०	पूर्वोक्त (अमोघपत्र)

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
११९	९	स्थाने	स्थान
११९	१०	सदाश्रयत्	सदाश्रयात्
११९	२३	जायेते	जायते
१२०	२२	भवितत्वं	भवितव्यं
१२१	१४	तपध्वं	तप्यध्वं
१२१	२१	”	”
१२१	२३	काष्टगानृपि	काष्ठगानपि
१२३	२	भृग्यते	मृग्यते
१२५	२०	आत्माभासादि	आप्ताभासादि
१२६	२२	भेवेत्	भवेत्
१२७	९	मत	मत्त
१२८	५	निश्चनसे	निश्चयसे
१३८	२२	मव्याबाद	मव्याबाध
१४३	१४	(सचारस्य	सञ्चारस्य
१४४	१५	निजाहार्या	निजाहार्यं
१५०	५	घृतान्त	वृत्तान्त
१५१	११	(निभेषात	निमेषात
१५३	११	विद्यवित्तो	विद्यावित्तो
१५३	४	असजेत्तराम्	असजत्तराम्
१५६	११	साव्यते	साध्यते
१५६	२१	दृष्ट्वा	दृष्ट्वा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१५६	२२	युक्त नही	युक्त
१९८	१	क्षत्रि	क्षत्री
१६१	१८	(असमतिः न	असंमति'
१६७	१०	(पश्य)	(पश्यन्)
१६८	२२	(समकल्पयत)	(समकल्पयम्)
१६९	९	प्रकार०	प्रकार (आलोच्य)
१६९	२१	जाननेवाली०	जाननेवाली (सा)
१७९	१९	कृति	कृती
१७९	१७	पुरुषोंके	पुरुषोंका
१८१	३	तैनंनैव	तेनैव
१८१	१२	प्रातिकूलपं	प्रातिकूल्यं
१८२	३	वीक्ष्य	प्रेक्ष्य
१८७	१	,,	दृष्ट्वा
१९२	१०	तत्त्रापि	तत्रापि
१९४	४	भी०	(अपि) भी
१९६	१	तद्ग्रहम्	तद्गृहम्
१९६	१२	अम्यधुः	अभ्यधुः
२०४	२१	नाय	नायम्
२०५	७	० पृथवीके	(धरण्याः) पृथवीके
२०८	६	कर्दमें	कर्दमे
२०९	२३	डालेन	डालने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२१०	१४	प्रामृतम्	प्राभृतम्
२१०	१६	तिष्पत्ते.	निष्पत्ते.
२१३	१९	कत्सित	कुत्सित
२३६	१	त्यज्या	त्याज्याः
२३८	४	त	त्र
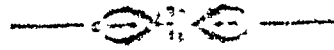
॥ श्री जिनाय नमः ॥

श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचित

सान्वयार्थ

क्षत्रचूड़ामणिः ।
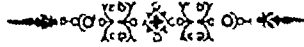
प्रथमो लम्बः ।

श्रीपतिर्भगवान्पुष्याद्भक्तानां वः समीहितम् ।
यद्भक्तिः शुल्कतामेति मुक्तिकन्याकरग्रहे ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(श्री पतिः) अन्तङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मीके स्वामी (भगवान्) श्री जिनेन्द्र देव (वः युष्माकं) तुम (भक्तानां) भक्तोंके (समीहितम्) इच्छित कार्यको (पुष्यात्) पूर्ण करें। (यद्भक्तिः) जिस जिनेन्द्र देवकी भक्ति (मुक्तिकन्याकरग्रहे) मुक्ति रूपी कन्याके विवाहमें (शुल्कताम्) द्रव्य स्वरूपताको (एति) प्राप्त करती है ॥१॥

संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि चरितं जीवकोद्भवं ।
पीयूषं न हि निःशेषं पिबन्नेव सुखायते ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं वादीभसिंह सूरि (जीवकोद्भवम्) जीवंधर स्वामीसे उत्पन्न (चरितं) चरित्रको (संक्षेपेण) संक्षेपतासे

(प्रवक्ष्यामि) कहूंगा। अत्रनीतिः ! (हि) निश्चयसे (निःशेष) सम्का-सत्र (पीयूषं) अमृतको (पिवन्) पीता हुआ (एव) ही पुरुष (सुखायते) सुखी होता है (इति न) ऐसा नहीं किन्तु (स्वल्पमपि पिवन् सुखायते) थोड़ा पीता हुआ भी सुखी होता है ॥ २ ॥

श्रेणिकप्रश्नमुद्दिश्य सुधर्मो गणनायकः ।
यथोवाच मयाप्येतदुच्यते मोक्षलिप्सया ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(सुधर्मः) सुधर्म नामके (गणनायकः) गणधरने (श्रेणिकप्रश्नं) श्रेणिक राजाके प्रश्नको (उद्दिश्य) निमित्त पाकर (यथा) जैसे (उवाच) कहा है (तथा मयापि) वैसे मैं भी (मोक्षलिप्सया) मोक्षकी वाञ्छासे इस चरित्रको (उच्यते) कहता हूं ॥ ३ ॥

इहास्ति भारते खण्डे जम्बूद्वीपस्य मण्डने ।
मण्डलं हेमकोशाभं हेमाङ्गद समाह्वयम् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ —(इह) इस संसारमें (जम्बूद्वीपस्य) जम्बूद्वीपका (मण्डने) भूषणस्वरूप (भारते) भारत (खण्डे) खण्डमें (हेमकोशाभं) स्वर्णके खजानेके सामान है आभा जिसकी ऐसा (हेमाङ्गदसमाह्वयम्) हेमाङ्गद नामका (मण्डलं) देश (अस्ति) है ॥ ४ ॥

तत्र राजपुरी नाम राजधानी विराजते ।
राजराजपुरी स्रष्टौ स्रष्टुर्या मातृकायते ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(तत्र) उस देशमें (राजपुरी नाम) राजपुरी नामकी (राजधानी) राजाकी प्रधान नगरी (विराजते) शुशोभित है (या) जो (स्रष्टुः) ब्रह्माके (राजराजपुरी सृष्टौ) कुबेरकी नगरी

(अलकापुरीकी) रचनामें (मातृ कायते) माताके सदृश आचरण करती है ॥ ५ ॥

तस्यां सत्यधरो नाम राजा भूत्सत्यवाङ्मयः ।
वृद्धसेवी विशेषज्ञो नित्योद्योगी निराग्रहः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(तस्य) उस नगरीमें (सत्यवाङ्मयः) सच बोलनेवाला (वृद्ध सेवी) वृद्धोंकी सेवा करनेवाला (विशेषज्ञः) विशेष कार्योंका जाननेवाला (नित्योद्योगी) निरतर उद्योग करनेवाला (निराग्रहः) हट न करनेवाला (सत्यंधरो नाम) सत्यंधर नामका (राजा) राजा (अभूत्) था ॥ ६ ॥

महिता महिषी तस्य विश्रुता विजयाख्यया ।
विजयाद्विश्वनारीणां पातिव्रत्यादिभिर्गुणैः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(तस्य) उस सत्यंधर राजाकी (महिता) बड़ी (महिषी) प्रसिद्ध पट्टरानी (विश्व नारीणां) सम्पूर्ण स्त्रियोंको (पातिव्रत्यादिभिः) पातिव्रतादि (गुणैः) गुणोंके द्वारा (विजयात्) जीतनेसे (विजयाख्यया) विजया नामसे (विश्रुता) प्रसिद्ध (आसीत्) थी ॥७॥

सत्यप्यन्तः पुरस्त्रीणां समाजे राजवल्लभा ।
सैवासीन्नापराकाचित्सौभाग्यं हि सुदुर्लभम् ॥८॥

अन्वयार्थः—(अन्तःपुर स्त्रीणा) अन्तःपुरकी स्त्रियोंके (समाजे) समुदाय (सति) रहनेपर (अपि) भी (सा) वह (एव) ही (राजवल्लभा) राजाकी प्यारी (आसीत्) थी (अपरा) दूसरी

(काचित्) कोई (न) नहीं अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (सौभाग्य) अच्छाभाग्य (सुदुर्लभम्) बडा दुर्लभ है ॥ ८ ॥

निष्कंटकाधिराज्योऽयं राजा राज्ञी मनारतम् ।
रमयन्नान्यदज्ञासी त्प्राज्ञप्राग्रहरोऽपिसन् ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(निष्कंटकाधिराज्यः) निष्कंटक है राज्य जिसका ऐसा (अयंराजा) यह राजा (प्राज्ञप्राग्रहरः) विद्वानोंमें अग्रसर भी (सन्) होता हुआ (अनारतम्) निरंतर (राज्ञीं) रानीको (रमयन्) रमन करता हुआ (अन्यत्) और कुछ (न) नहीं (अज्ञासीत्) जानता था ॥ ९ ॥

विषयासक्तचित्तानां गुणः को वा न नश्यति ।
नवैदुष्यं न मनुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक् ॥१०॥

अन्वयार्थः—(विषयासक्तचित्तानां) विषयोंमे है आसक्त चित्त जिनका ऐसे पुरुषोंका (को वा) कौनसा (गुणः !) गुण (न) नहीं (नश्यति) नाश होता है (तेषु) उनमें (नवैदुष्यं) न पण्डित्यपना (न मानुष्यं) न मानुष्यपना (नाभिजात्य) न कुलीनता (न सत्यवाक्) न सचाई रहती है ॥ १० ॥

पराधन जाद्दैन्यात्पैशून्यात्परिवादतः ।
पराभवात्किमन्येभ्यो न विभेति हि कामुकः ॥११॥

अन्वयार्थ—(कामुकः) कामी पुरुष (पराराधन जात्) दूसरेकी सेवासे उत्पन्न (दैन्यात्) दीनतासे (पैशुन्यात्) चुगली पनसे (परिवादतः) निंदासे और (पराभवात्) तिरस्कारसे (न)

नहीं (बिभेति) डरता है (अन्येभ्यो) और कार्योंसे (किं) क्या (भेष्यति) डरेगा ॥ ११ ॥

पाकं त्यागं विवेकं च वैभवं मानतामपि ।
कामार्ताः खलु मुञ्चन्ति किमन्यैः स्वञ्च जीवितम्॥१२॥

अन्वयार्थः—(कामार्ताः) कामसे पीड़ित पुरुष (पाकं) भोजन (त्यागं) दान (विवेकं) विवेक (वैभवं सम्पत्ति (च) और (मानतां) पूज्यता (अपि) भी (खलु) निश्चयसे (मुञ्चन्ति) छोड देते हैं (अन्यैः किं) और तो क्या (स्वञ्च जीवितम) अपने जीवनको (अपि) भी (मुञ्चन्ति) छोड देते हैं ॥१२॥

पुनरैच्छदयं दातुं काष्टाङ्गाराय काश्यपीम् ।
अविचारितरम्यं हि रागान्धानां विचेष्टितम् ॥१३॥

अन्वयार्थ.—(पुनः) पश्चात् (अयं) इस राजाने (काष्टाङ्गाराय) काष्टाङ्गारको (काश्यपीम्) पृथवी (दातु) देनकी (ऐच्छत्) इच्छाकी अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (रागान्धाना) स्त्री प्रेमसे अन्धे पुरुषोंकी (विचेष्टितम्) चेष्टाए (अविचारितरम्यं) विना विचारके सुन्दर (भवंति) होती है ॥१३॥

तावतातं समभ्येत्य मन्त्रिमुख्या अबूबुधन् ।
देवदेवैरपि ज्ञातं विज्ञाप्य श्रूयतामिदम् ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(तावता) उसी समय (मन्त्रिमुख्याः) प्रधान मन्त्री (तं) उस राजाके (समभ्येत्य) समीप आकार (अबूबुधन्) समझाते भये (हे देव) हे राजन् (देवैः) आपसे (ज्ञातमपि) जानी हुई भी (इदं) यह प्रार्थना (श्रूयतां) सुनने योग्य है ॥ १४ ॥

हृदयं च न विश्वास्यं राजभिः किं परो नरः ।
किन्तु विश्वस्तवद्दृश्यो नटायन्ते हि भूभुजः ॥१५॥

अन्वयार्थ·—(राजभिः) राजालोग (हृदयं) हृदयका (च) भी (न विश्वास्यं) विश्वास नहीं करते हैं (परोनरः कि विश्वास्य) दूसरे मनुष्यका तो क्या विश्वास करेंगे किन्तु (परो नरः) दूसरे मनुष्यको (विश्वस्तवत्) विश्वासीके सदृश (दृश्यः) देखना चाहिये अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (भूभुज·) राजा लोग (नटायन्ते) नटके समान आचरण करते है ॥ १५ ॥

परस्पराविरोधेन त्रिवर्गो यदि सेव्यते ।
अनर्गलमतः सौख्यं अपवर्गोप्यनुक्रमात् ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(यदि) अगर (परस्परा विरोधेन) एक दूसरेके विरोधके विना (त्रिवर्गः) धर्म, अर्थ, काम यह तीन वर्ग (सेव्यते) सेवन किये जाते हैं (अत·) तो (अनर्गल) विना रुकावटके (सौख्य) सुख (भवति) होता है और (अनुक्रमात्) अनुक्रमसे (अपवर्गः) मोक्ष (अपि) भी (भवति) होता है ॥१६॥

ततस्त्याज्यौ न धर्मार्थौ राजभिः सुखकाम्यया ।
अदः काम्यति देवश्चेदमूलस्य कुतः सुखम् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इस लिये (राजभिः) राजाओको (सुखकाम्यया) सुख प्राप्त करनेकी वाञ्छासे (धर्मार्थौ) धर्म और अर्थको (न) नहीं (त्याज्यौ) छोड़ना चाहिये (चेद्देव.) यदि आप (अद·) काम सुख (काम्यति) इच्छा करते हैं तो अत्र नीति. (अमूलस्य कुतः सुखम्) विना कारणके सुख कैसे हो सकता है ॥१७॥

नाशिनं भाविनं प्राप्यं प्राप्ते च फलसंततिम् ।
विचार्यैव विधातव्यमनुतापोऽन्यथा भवेत् ॥१८॥

अन्वयार्थ—(नाशिनं) जो वस्तु नाश होनेवाली है और जो (भाविनं) आगे होनेवाली है उसे (प्राप्यं) प्राप्त करना चाहिये (च) और (प्राप्ते) प्राप्त होनेपर (फलसंततिम्) फलोंकी परपरा (विचार्य) विचार करके (एव) ही (विधातव्य) कोई काम करना चाहिये (अन्यथा) इसके विपरीत करनेसे (अनुताप) पश्चात्ताप (भवेत्) करना पडता है ॥१८॥

इतिप्रबोधितोप्येषधुरिराज्ञां न्यवेशयत् ।
काष्टाङ्गार महोमोहाद्बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ—(इति इस प्रकार (प्रबोधितः) समझाया हुआ (अपि) भी (एषः) यह राजा (अहो) खेद है ! कि (मोहात्) मोहसे (राज्ञाधुरि) राजाओंके अगाडी (काष्टाङ्गारं) काष्टाङ्गारको न्य-वेशयत्) बिठलाता भया अत्र नीति (बुद्धिः) बुद्धि (कर्मानुसारिणी) कर्मके अनुसार (भवती) होती है ॥ १९ ॥

विषयान्धविचारेण विरक्तानां नृपस्य तु ।
प्रकृष्यमाणरागेण कालो विलयमीयवान् ॥२०॥

अन्वयार्थः—(तदा) उस समय (विरक्ताना) विषयोंमें विरक्त पुरुषोंका (कालः) समय (विषयान्धविचारेण) विषयोंमे अन्ध विचारसे अर्थात विषयोंमे विना वाञ्छाके (विलय) विनाशताको (ईयवान्) प्राप्त होता था (तु) और (नृपस्य) राजाका (काल) समय (प्रकृष्यमाणरागेण) विषयोंमें अत्यंत रागसे (विलयं ईयवान्) वीतता था ।२०

सातु निद्रावती स्वप्नमद्राक्षीत्क्षणदाक्षये ।
अस्वप्नपूर्वं हि जीवानां न हि जातु शुभाशुभम् ॥२१॥

अन्वयार्थः—(तु) इसके अनंतर (निद्रावती सा) नींदमें सोई हुई वह विजया रानी (क्षणदाक्षये) रात्रिके अन्त भागमें (स्वप्न) स्वप्नको (अद्राक्षीत्) देखती भई, अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (जीवानाम्) मनुष्योंके (अस्वप्न पूर्व) विना स्वप्नके (जातु) कभी भी (शुभाशुभम्) शुभ और अशुभका प्रादुर्भाव (न) नहीं (भवति) होता है ॥२१॥

वैभातिक विधेरन्ते विभोरान्तिकमीयुषी ।
अर्धासननिविष्टेयमभाषिष्ट च भूभुजः ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ —(वैमातिक विधे) प्रातःकाल संबधी शौचादि कार्यके (अन्ते) अनन्तर (इय) यह रानी (विभो) अपने पतिके (अन्तिकम्) समीप (ईयुषी) आई हुई (अर्धासन निविष्टा) आधे आसन पर बैठकर (भुभुज.) राजासे (अभाषिष्ट) कहती भई ॥ २२ ॥

श्रुत्वा स्वप्न त्रयं राजा ज्ञात्वा च फलमक्रमात् ।
प्रति वक्तुमुपादत्त किंचिन्न्यन्चन्मना भवन् ॥२३॥

अन्वयार्थ—(राजा) राजा (स्वप्नत्रयं) तीनों स्वप्नोंको (श्रुत्वा) सुनकर (च) और (फलं) फलको (ज्ञात्वा) जानकर (अक्रमात्) अक्रमसे (किंचिन्न्यन्चन्मना भवन्) दुखित मनवाला होता हुआ (प्रतिवक्तुं) उत्तर देनेकी (उपादत्त) स्वीकारता करता भया ॥ २३ ॥

पुत्रमित्र कलत्रादौ सत्यामपिचसंपदि ।
आत्मीयापायशंका हि शुङ्कः प्राणभृतांहृदि ॥२४॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (पुत्रमित्रकलत्रादौ) पुत्र, मित्र, स्त्री, आदिक (च) और (सपदि) धनादिक सम्पत्तिके (सत्यां) रहनेपर (अपि) भी (आत्मीयापाय शङ्का) अपने विनाशकी शङ्का (प्राणभृतां) प्राण धरियोंके (हृदी) हृदयमें (शङ्कुः) कीलकी तरह दु:ख देती है ॥ २४ ॥

देवि दृष्टस्त्वया स्वप्ने बालः शोकः समौलिकः ।
आचष्टे सोदयंसूनु मष्टमालास्तु तद्वधू ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ—(देवि हे देवी (त्वया) तुम्हारेसे (स्वप्ने) स्वप्नमें (दृष्ट) देखा हुआ (समौलिक) मुकट सहित (बालः शोकः) बाल अशोक, वृक्ष (सोदय) उदय सहित (सूनु) पुत्रको (आचष्टे) कहता है (तु) और (अष्टमालाः) स्वप्नमें देखी हुई आठ मालाएं (तद्वधूः) पुत्रकी आठ स्त्रियें होगी ऐसा कथन करती है ॥ २५ ॥

आर्यपुत्र ततः पूर्वं दृष्ट नष्टस्य किं फलं ।
कङ्केलेरिति चेद्देवि कथयत्येष किंचन ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ — हे आर्य पुत्र) हे आर्य पुत्र (ततः पूर्व) उससे पहले (दृष्ट नष्टस्य) देखा और फिर नष्ट होगया ऐसे (कङ्केलेः) अशोक वृक्षका (किं) क्या (फलं) फल है (देवि) हे देवी ! (इति-चेत्) यदि ऐसा कहती हो तो (एष) यह भी (किंचन) कुछ (कथयति) कहता है ॥ २६ ॥

इतीशवाक्यं शुश्रूषी महिषी भुवि पेतुषी ।
मूर्च्छितातन्मुखग्लानेर्वक्रं वक्ति हि मानसम् ॥२७॥

अन्वयार्थः—(इति) इस प्रकार (ईश वाक्य) स्वामीके वाक्योंको (शुश्रूषा) सुनकर (महिषी) पट्टरानी (तन्मुखग्लानेः) उसके मुखकी मलिनता देखनेसे (भुवि) पृथवी पर (पेतुषी) गिरकर (मूर्च्छिता) मूर्च्छित (आसित्) होती भई । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (वक्र) मुख (मानसम्) मनके भावको (वक्ति) कह देता है ॥ २७ ॥

तन्मोहान्मोहितो राजा तामेवायमबूबुधत् ।
सत्यामप्यभिषङ्गार्त्तौ जागर्त्यैवहि पौरुषम् ॥२८॥

अन्वयार्थः—(तन्मोहात्) इसके मोहसे (मोहितः) मोहित (अयं) यह (राजा) राजा (तां एव) उस रानीको ही (अबूबुधत्) सचेत करता भया अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (अभिषङ्गार्तौ) अकस्माद्दैवादिजन्य पीड़ा (सत्यां अपि) होनेपर भी (पौरुषम्) पुरषत्व (जागर्त्यैव) जागृत ही रहता है ॥

स्वप्नदृष्ट कृते सद्यो नष्टासुं किं तनोषिमाम् ।
नहि रक्षितुमिच्छंतो निर्दहन्ति फलद्रुमम् ॥२९॥

अन्वयार्थ.—हे देवी (स्वप्नदृष्ट कृते) स्वप्न देखने ही से (किं) क्यों (माम्) मुझको (सद्य.) तत्काल (नष्टासुं) मरा हुआ (तनोषि) समझती है अत्र नीति. (हि) निश्चयसे (फलद्रुमम्) फलवाले वृक्षको (रक्षितु इच्छन्तः) रक्षा करनेकी इच्छावाले पुरुष (त) उसको (न निर्दहन्ति) नहीं जला देते हैं ॥ २९ ॥

विपदः परिहाराय शोकः किं कल्पते नृणाम्।
पावके नहि पातः स्यादातपक्लेशशान्तये॥३०॥

अन्वयार्थः—(विपदः) विपत्तिके (परिहाराय) दूर करनेके लिये (नृणाम्) मनुष्योंके (किं, क्या (शोकः) शोक (कल्पते) किया जाता है (हि) निश्चयसे (आतपक्लेश शान्तये) गर्मीके क्लेशकी शान्तिके लिये (कि) क्या (पावके) अग्निमे (पातः स्यात्) पतन होता है (अपि तु न स्यात्) किन्तु नही होता है॥ ३०॥

ततोऽव्यापत्प्रतीकारं धर्ममेवविनिश्चिनु।
प्रदीपैर्दीपिते देशे नह्यस्ति तमसो गतिः॥ ३१॥

अन्वयार्थ.—(ततः इसलिये तू निश्चयसे (व्यापत्प्रतीकारं) आपत्तिका उपाय (धर्मं एव) धर्म ही (विनिश्चिनु) निश्चय कर क्योंकि (प्रदीपैः दीपते) दीपकोंसे प्रकाशित (देशे) देशमें (तमसः) अन्धकारका (गतिः) गमन (नास्ति) नही होता॥ ३१॥

इत्यादि स्वामिवाक्येन लब्धाश्वासा यथा पुरम्।
पत्यासाकमसौरेम दुःखचिन्ता हि तत्क्षणे॥३२॥

अन्वयार्थ.—(इत्यादि स्वामि वाक्येन) इस प्रकार स्वामीके वचनोंसे (लब्धाश्वासा) प्राप्त हुआ है विश्वास जिसको ऐसी (असौ) यह रानी (पत्यासाकम्) पतिके साथ (यथा पुरम्) पहलेकी तरह (रेमे) रमन करने लगी अत्र नीति (हि) निश्चयसे (तत्क्षणे) दुःखके समयमें ही (दुःख चिन्ता) दुःखकी चिन्ता (भवति) होती है॥ ३२॥

अथ प्रबोधितं स्वप्नादप्रबुद्ध ममुं पुनः ।
बोधयन्तीव पत्नी यमन्तर्वत्नी धुरां दधौ ॥३३ ॥

अन्वयार्थ.—(अथ) इसके पश्चात् (स्वप्नात्) स्वप्नसे (प्रबोधितं) सचेत किया हुआ (पुनः अप्रबुद्धं) और फिर अचेत (अमुम्) इस राजाको (बोधयन्ती) ज्ञान करानेके लिये ही (इव) मानो (इयं पत्नी) यह रानी (अन्तर्वत्नी धुरां) गर्भवतीके भारको (दधौ) धारण करती भई ॥ ३३ ॥

सदोहलामिमां वीक्ष्य दुःस्वप्न फलनिश्चयात् ।
अनुशेते स्म राजा यमात्मरक्षा परायणः ॥ ३४॥

अन्वयार्थ·—(आत्मरक्षापरायण) अपनी आत्माकी रक्षामें तत्पर (अयंराजा) यह राजा (सदोहला) गर्भवतीके लक्षणों सहित (इमां) इसको (वीक्ष्य) देख कर (दुःस्वप्न फलनिश्चयात्) खोटे स्वप्नोंके फलके निश्चयसे (अनुशतेस्म) पाश्चाताप करने लगा ॥ ३४ ॥

मन्त्रिणां लङ्घितं वाक्यं अभाग्येन मया मुधा ।
विपाके हि सतां वाक्यं विश्वसन्त्य विवेकिनः॥३५॥

अन्वयार्थ·—(अभाग्येन) अभागी (मया) मैने (मंत्रिणाम्) मंत्रियोंके (वाक्य, वचनोंको (मुधा) वृथा (लंघितं) उल्लंघन किया अत्र नीति. (ही) निश्चयसे (अविवेकिनः) विवेक रहित पुरुष (विपाके) अंत समयमें (अर्थात् दुःख मिलने पर (सतां) सज्जनोंके (वाक्यं) वाक्योंको (विश्वसंति) विश्वास करते हैं ॥ ३५ ॥

नह्यकालकृता वाञ्छा संपुष्णाति समीहितम् ।
किं पुष्पावचयः शक्यः फलकाले समागते ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ.—(हि) निश्चयसे (अकल कृता) असमयमें की हुई (वाञ्छा) इच्छा (समीहितम्) ईच्छित कार्यको (न संपुष्णाति) पूर्ण नही करती है जैसे (फल काले समागते) फल लगनेका समय आजाने पर (कि) क्या (पुष्पावचयः शक्य) फूलोंका ढेर इकट्ठा कियाजा सकता है (अपि तु न शक्य) किन्तु नहीं किया जा सकता है ॥३६॥

इत्यार्तो वंशरक्षार्थं केकियन्त्रम चीकरत् ।
आस्था सतां यशः काये न ह्यस्थायि शरीरके ॥३७॥

अन्वयार्थः—इति) इस प्रकार (आर्त) दु खसे पीडित उस राजाने (वंशरक्षार्थ) वंशकी रक्षाके लिये (केकियन्त्रम्) मयूराकृति यन्त्र (अचीकरत्) बनाया अत्र नीति (हि) निश्चयसे (सत्ता आस्था) सज्जनोकी आस्था अर्थात् बुद्ध (यशः काये) यश रूपी शरीरमें ही (भवति) होती है (अस्थायि शरीरके) अनित्य पुरुषाकृति शरीरमें (न भवति) नहीं होती है ॥३७॥

आक्रीडे दौहृद क्रीडामनुभोक्तुं विशांपतिः ।
व्यजीहरच्चयन्त्रस्थां पत्नीं वर्त्मनि वार्मुचाम् ॥३८॥

अन्वयार्थः—(पुनः) फिर (विशांपति.) राजा (दौहृद क्रीड़ां) दोहद कीड़ाओंका (अनुभोक्तुं) अनुभव करनेके लिये (आक्रीडे) क्रीड़ा करने लगा (च) और (यन्त्रस्थां) मयूरयन्त्रमें बैठी हुई

(पत्नीं) विजया रानीको (वार्मुचाम्) मेघोंके (वर्त्मनि) मार्ग आका-शमें (व्यजीहरत्) विहार कराने लगा ॥ ३८ ॥

तावतैव कृतघ्नाख्यां राजघाख्यां च साधयन् ।
स्वविधेयां भुवं चेति काष्टाङ्गारो व्यचीचरत् ॥३९॥

अन्वयार्थः—(तावता एव) उसी समय ही (कृतघ्नाख्यां) कृतघ्नता (च) और (राजघाख्यां) राजाके वध करनेकी संज्ञाको (साधयन्) साधन करता हुआ (च) और (भुवं) पृथवीको (स्वविधेयां) अपने आधीन (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (काष्टांगार:) काष्टांगारने (इति) यह (व्यचीचरत्) विचार किया ॥ ३९ ॥

जीवतात्तु पराधीनाज्जीवानां मरणम् वरम् ।
मृगेन्द्रस्य मृगेद्रत्वं वितीर्णं केन कानने ॥ ४० ॥

अन्वयार्थः—(पराधीनात्) पराधीन (जीवतात्तु) जीवनेसे तो (जीवानां) प्राणियोंका (मरण) मरना ही (वरम्) श्रेष्ठ है अथवा (कानेन) वनमें (मृगेन्द्रस्य) सिंहको (मृगेन्द्रत्वं) सिंहपना (वनके पशुओंका स्वामित्व) (केन) किसने (वितीर्ण) दिया है (स्वपुरुषार्थेनैव सम्पादित) अपने पुरुषार्थसे ही उसने प्राप्त किया ॥ ४० ॥

अचीकथच्चमन्त्रिभ्यो राजद्रोहो विधीयताम् ।
इति राजद्रुहा नित्यं दैवतेनाभिधीयते ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थ—(राजद्रोहो विधीयताम्) राजाके साथ द्रोह करो ऐसा (राजद्रुहा) राजासे द्रोह करनेवाला (दैवतेन) देवता (नित्यं) नित्य ही मुझसे (अभिधीयते) कहता है (इति) इस प्रकार (सः) उसने (मन्त्रिभ्यः) मन्त्रियोंसे (अचीकथत्) कहा ॥ ४१ ॥

स्वन्तं किं नु दुरन्तं वा किमुदर्कं वितर्क्यताम् ।
अतर्कितमिदं वृत्तं तर्करूढं हि निश्चलम् ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थः—(स्वन्तं) इसका अन्त अच्छा है (किन्तु) अथवा (दुरन्तं) बुरा है (किमुदर्कं) इसका क्या परिणाम होगा (वितर्क्यताम्) इस विषयको तुम विचारो (इदं वृत्तं) यह वृत्तान्त अभीतक अतर्कितं) विना विचार कया हुआ है जब यह (तर्करूढं) तर्क पर चढेगा तब (निश्चलम्) स्थिर (भवेत्) हो जावेगा ॥४२॥

जिह्रेमिवक्तुमप्येतदुक्तिर्दैव भयादिति ।
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्धि पापिनाम् ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ.—(अहं) मैं (एतत् वक्तुम् अपि) इसको कहनेके लिये भी (जिह्रेमि) लज्जा करता हूं किन्तु (दैवभयात् इति उक्तिः) देवताके भयसे मैंने यह कहा है अत्र नीति (हि) निश्चयसे (पापिनाम्) पापियोंके (मनसि) मनमें (अन्यत्) कुछ होता है और (वचसि अन्यत्) वचनसे कुछ कहते है और (कर्मणि अन्यत्) कायसे कुछ ही करते है ॥४३॥

तद्वाक्याद्वा च्यतोवंश्या यमिनः प्राणिहिंसनात् ।
क्षुद्रादुर्भिक्षतश्चैवं सन्त्रासः सर्वे हि तत्रसुः ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ—(तद्वाक्यात्) काष्ठाङ्गारके इन वचनों से (वंश्या) उत्तम कुलीन पुरुष तो (वाच्यतः) निन्दासे (यमिनः) संयमी पुरुष (प्राणिहिंसनात्) जीवोंकी हिंसासे (क्षुद्राः) क्षुद्र प्रकृतिके पुरुष (दुर्भिक्षतः) अकालसे (तत्रसुः) डरे (एवं) इस प्रकार

(सर्वेसभ्याः तत्रसु) सम्पूर्ण सभ्य पुरुष भय युक्त होते भये ॥४४॥

आत्मघ्नि धर्मदत्ताख्यः सचिवो वाचमूचिवान् ।
गाढा हि स्वामिभक्तिः स्यादात्मप्राणानपेक्षणी॥४५॥

अन्वयार्थः—उस समय (धर्मदत्ताख्यः) धर्मदत्त नामके (सचिवः) मन्त्रीने (आत्मघ्नीं) अपने आपको नाश करनेवाली (वाचं) वाणी (उचिवान्) कही अत्र नीति (हि) निश्चयसे (गाढास्वामिभक्तिः) अतिशय स्वामीकी भक्ति (आत्मप्राणानपेक्षणी) अपने प्राणोंकी अपेक्षा नहीं करनेवाली (स्यात्) होती है ॥४५॥

राजानः प्राणिनां प्राणास्तेषु सत्स्वेव जीवनात् ।
तत्तत्र सदसत्कृत्यं हि लोक एव कृतं भवेत् ॥४६॥

अन्वयार्थः—उसने कहा (राजानः) राजा लोग (प्राणिनां) प्राणियोंके (प्राणाः) प्राण है (तेषु सत्सु) उनके रहने पर ही (जीवनात) प्राणियोंका जीवन होता है (तत्) इसलिये (तत्र) राजामें किया हुआ (सदसत्कृत्य) अच्छा बुरा कर्म (लोक एव कृतं भवेत्) प्रजाके साथ ही किया हुआ होता है ॥ ४६ ॥

एवं राजद्रुहां हन्त सर्व द्रोहित्व संभवे ।
राजध्रुगेव किं न स्यात् पञ्चपातकभाजनम् ॥४७॥

अन्वयार्थ—(एवम्) इस प्रकार (राजद्रुहा) राजद्रोही पुरुषोंके (सर्व द्रोहित्व संभवे) सम्पूर्ण पुरुषोंका द्रोहित्वपना संभव होने पर (हत) खेद है (कि) क्या (राज ध्रुग् एव) राजद्रोही ही (पञ्चपातक भाजनम्) पंच महा पापोंका करनेवाला (नस्यात्) नहीं होतो है (किन्तु स्यादेव) किन्तु अवश्य ही होता है ॥४७॥

रक्षन्त्येवात्र राजानो देवान्देहभृतोऽपि च ।
देवास्तु नात्मनोप्येवं राजा हि परदेवता ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थः—(अत्र) इस लोकमे (राजानः) राजा लोग (देवान्) देव (च) और (देहभृतोऽपि) देह धारी दोनोंकी (एव) ही (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं। परन्तु (देवा.) देवता (आत्मनोऽपि) आपनी आत्माकी भी (न) नहीं (रक्षन्ति) रक्षा करते है (एवं) इस लिये (राजा हि पर देवता) राजा ही निश्चयसे उत्कृष्ट देवता है ॥

किंचात्र दैवतं हन्ति दैवतद्रोहिणं जनम् ।
राजा राजद्रुहां वंशं वंश्यानन्यच्च तत्क्षणे ॥४९॥

अन्वयार्थः—(किंच अत्र) और लोकमें (दैवतं) देवता (दैवत द्रोहिणं जनम्) अपनेसे द्रोह करनेवाले मनुष्यको (हन्ति) मारता है परन्तु (राजा) राजा (राजद्रुहां) राजद्रोहियोंका (वंश) कुल और (वंश्यान्) वंशके मनुष्योंको (च) और (अन्यत्) उसकी धन सम्पत्यादिकको भी (तत्क्षणे) उसी समय (हन्ति) नाश कर देता है॥४९॥

अर्थिनां जीवनोपायमपायं चाभिभाविनाम् ।
कुर्वन्तः खलु राजानः सेव्या हव्यवहा यथा ॥५०॥

अन्वयार्थ.—(अर्थिना) अर्थीजनोंके (जीवनोपाय) जीवनके उपाय (च) और (अभिभाविनाम्) प्रजाको दुःख देनेवाले शत्रुओंका (अपाय) नाश (कुर्वन्तः) करनेवाले (राजानः) राजा लोग (खलु) निश्चयसे (हव्यवहायथा) हवनकी अग्निकी तरह (सेव्या) आदरसे सेवा करने योग्य हैं ॥५०॥

इति धर्मवचोऽप्यासीन्मर्मभिन्नीव कर्मणः ।
पित्तज्वरवतः क्षीरं तिक्तमेव हि भासते ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थः—(तीव्रकर्मणः) दुष्ट कर्मवाले काष्टाङ्गारको (इति) इस प्रकार (धर्मवचोऽपि) धर्मयुक्त वचन भी (मर्मभित्) मर्मछेदी (हृदय विदारक) (आसीत्) हुआ अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (पित्तज्वरवतः) पित्तज्वरवाले मनुष्यको (क्षीरं) मधुर दुग्ध (तिक्तमेव) कडुवा ही (भासते) लगता है ॥५१॥

स कार्तघ्न्यादि दोषं च गुरुद्रोहं च किं परैः ।
परिवादं च नाद्राक्षीत् दोषं नार्थी हि पश्यति॥५२॥

अन्वयार्थः—(सः) उसने (कार्तघ्न्यादि दोषं) कृतघ्नादि दोषोंको (च) और (गुरुद्रोहं) गुरुद्रोह करनेको (न अद्राक्षीत्) नहीं देखा। (परैः किं) और तो क्या ? (परिवादं च नाद्राक्षीत्) अपनी निंदाका भी विचार नहीं किया। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (अर्थी) स्वार्थी मनुष्य (दोष) दोषको (न पश्यति) नहीं देखते हैं ॥५२॥

मथनो नाम तत्स्यालः तद्वाच बहुमन्यत ।
तद्धि पाणौ कृत दात्र परिपन्थिविधायिनः ॥५३॥

अन्वयार्थ.—(मथनो नाम) मथन नामके (तत्स्यालः) उसके सालेने (तद्वाचं) उसके वचन (बहु अमन्यत) बहुत माने । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (तद्वचनं) उसके वचन (परिपन्थिविधायिन.) शत्रुता करनेवाले काष्टाङ्गारके (पाणौकृतं) हाथमें आये हुए (दात्रमिव) हंसियेकी तरह (अभवत्) होते भये ।५३॥

प्राहैषीच्चबलं हन्तुं राजानं हन्त पापधीः ।
पयो ह्यास्यगतं शक्यं पाननिष्ठीवनद्वये ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थः—(हन्त) खेद है ? (पापधीः) उस पापबुद्धिवाले

काष्टाङ्गारने (राजानं) राजाको (हन्तुं) मारनेके लिये (बलं) सेना (प्राहैषीत्) भेजी अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (आस्यगतं) मुखमें गया हुआ (पयः) दुग्ध (पान निष्ठीवनद्वये) पीने और वमन क्रिया द्वयमे (शक्यं) समर्थ (भवति) होता है ॥९४॥

दौवारिकमुखादेतदुपलभ्य रुषा नृपः ।
उदतिष्ठत संग्रामे न हि तिष्ठति राजसम् ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थः—(नृप.) राजाने (दौवारिक मुखात्) द्वारपालके मुखसे (एतद्) यह (उपलभ्य) जानकर (रुषा) क्रोधसे (संग्रामे उदतिष्ठत्) युद्धके निमित्त चेष्टा की अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (राजसम् न तिष्ठति) राजसी भाव स्थिर नहीं रहता (अपमान होने पर प्रगट हो ही जाता है) ॥९५॥

तावतार्धासनाद्भ्रष्टांनष्टासुं गर्भिणीं प्रियाम् ।
दृष्ट्वा पुनर्न्यवर्तिष्ट स्त्रीष्ववज्ञा हि दुःसहा ॥९६॥

अन्वयार्थ.—परन्तु (तावता) उसी समय राजा (अर्धासनात्) अर्धासनसे (भ्रष्टां) गिरि हुई अतएव (नष्टासु) गतप्राणकी तरह (गर्भणी प्रियाम्) गर्भवती अपनी प्यारी स्त्रीको (दृष्ट्वा) देखकर (पुनः) फिर (न्यवर्तिष्ट) उल्टा लौट आया अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (स्त्रीष्ववज्ञा) स्त्रियोके विषयमें अनादर व अपमान (दुःसहा) नहीं सहा जा सकता ॥९६॥

अबोधयच्च तां पत्नीं लब्धबोधो महीपतिः ।
तत्त्वज्ञानं हि जागर्ति विदुषामार्तिसंभवे ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थ—(महीपतिः) पृथवीपति राजाने (लब्धबोधः सन्) स्वय सचेत होकर (तां पत्नीं) उस अपनी स्त्रीको (अबोधयत्)

सचेत किया अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (आर्ति संभवे) पीड़ाके होने पर (विपत्ति कालमें) (विदुषां) विद्वानोंका (तत्वज्ञानं जागर्त्येव) सच्चा ज्ञान जागृत ही रहता है ॥ ५७ ॥

शोकेनालमपुण्यानां पापं किं न फलप्रदम् ।
दीपनाशे तमोराशिः किमाह्वानमपेक्षते ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थः—राजा कहने लगा (शोकेन अलम्) शोक नहीं करना चाहिये ? (अपुण्यानां) पुण्य रहित (पापी पुरुषोंका) (पापं) पाप (किं) क्या ? (फल प्रदम् न) फल देनेवाला नहीं होता किंतु (स्यादेव) होता ही है (किं) क्या (दीपनाशे) दीपकके नाश हो जाने पर (तमो राशिः) अन्धकारकी पङ्क्ति (आह्वानमपेक्षते) बुलानेकी अपेक्षा करती है किंतु (नापेक्षते) स्वयं आजाती है ॥५८॥

यौवनं च शरीरं च संपच्च व्येति नाद्भुतम् ।
जलबुद्बुदनित्यत्वे चित्रीया न हि तत्क्षये ॥ ५९ ॥

अन्ययार्थः—(यौवन) जोवन (च) और (शरीरं) शरीर (च) और (सम्पत्) धन ये सब (व्येति) नाशको प्राप्त होते हैं (अत्र अद्भुतं न) इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं हैं ? (जलबुद्बुदनित्यत्वे) पानीके बुल बुलेके वहुत देर तक ठहरनेमें (चित्रिया) आश्चर्य है (हि) निश्चयसे (तत्क्षये चित्रियान) उसके नाश होनेमें कोई अचरज नहीं है इसी प्रकार सांसारिक वस्तुके ठहरनेमे आश्चर्य है उसके क्षयमें नहीं ॥ ५९ ॥

संयुक्तानां वियोगश्च भविता हि नियोगतः ।
किमन्यैरङ्गतोऽप्यङ्गी निःसङ्गो हि निवर्तते ॥ ६० ॥

अन्ययार्थः—(संयुक्तानां) संयोगी पदार्थोंका (नियोगतः) अवश्य ही (वियोगः) वियोग (भविता) होता है। (अन्यैः किं) और तो क्या ? (अङ्गतः) इस शरीरसे (अङ्गी अपि) आत्मा भी (निःसंगो निवर्तते) शरीरको छोडकर चला जाता है ॥ ९० ॥

अनादौ सति संसारे केन कस्य न बन्धुता ।
सर्वथा शत्रुभावश्च सर्वमेतद्धि कल्पना ॥ ६१ ॥

अन्ययार्थः—(संसारे) संसारके (अनादौ सति) अनादि होनेपर (कस्य) किसकी (केन) किसके साथ (बन्धुता शत्रुता च न) मित्रता और शत्रुता नहीं है अतएव किसीको (सर्वथा शत्रुभावः मित्रभावश्च) सर्वथा शत्रु व मित्र समझना (सर्वमेतद्कल्पना) ये सब कल्पना मात्र ही है ॥ ६१ ॥

इति धर्म्यं वचस्तस्या लेभे नैव पदं हृदि ।
दग्धभूम्युप्तबीजस्य न ह्यङ्कुरसमर्थता ॥६२॥

अन्वयार्थः—(इति) इस प्रकार (धर्म्यवचः) नीति युक्त वचनोंने (तस्याः) उस विजया रानीके (हृदि) हृदयमें (पदं) स्थानको (नैव) नहीं (लेभे) प्राप्त किया अत्र नीति (हि) निश्चयसे (दग्धभूम्युप्त बीजस्य) जली हुई पृथ्वीमें बोए हुए बीजके अन्दर (अंकुर समर्थता न भवति) अकुर पैदा होनेकी शक्ति नहीं होती है ॥६२॥

अयं त्वापन्नसत्त्वां तामारोप्य शिखियन्त्रकम् ।
स्वयं तद्भ्रामयामास हन्त क्रूरतमो विधिः ॥६२॥

अन्वयार्थः—(तु) तदनन्तर (अयं) राजा (आपन्नसत्वां तां) गर्भवती उस रानीको (शिखियन्त्रकम्) मयूर यन्त्रमें (आरोप्य) बिठला करके (हन्त) खेद है ? (स्वयं) अपने आप (तद्) उसको

(भ्रामयामास) घुमाता भया (अत्र नीति) (विधिः क्रूरतमः) पूर्वोपार्जित कर्म अत्यन्त कठोर होते हैं ॥ तात्पर्य कर्म रंक राजाका विचार नहीं करता सबको एकसा ही फल देता है ॥ ६३ ॥

वियतास्मिन्गते योद्धुं स मोहादुपचक्रमे ।
न ह्यङ्गुलिरसाहाय्या स्वयं शब्दायतेतराम् ॥६४॥

अन्वयार्थः—(अस्मिन्) इस यन्त्रके (वियता गते) आकाश मार्गसे ऊपर चले जाने पर (सः) उस राजाने (मोहात्) मोहके वशसे (योद्धुं) लड़ना (उपचक्रमें) प्रारम्भ किया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (असाह्यांगुलिः स्वयं) अकेली उंगली अपने आप (नशब्दायते तराम्) शब्दको नहीं करती है अर्थात् विना निमित्तके लड़ाई नहीं होती है ॥ ६४ ॥

अथ युद्ध्वा चिरं योद्धा मुधा प्राणिवधेन किम् ।
इत्यूहेन विरक्तोऽभूद्गत्यधीनं हि मानसम् ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनन्तर (योद्धा) योधा राजा (चिरयुध्वा) बहुत काल युद्ध करके (मुधा) निष्प्रयोजन (प्राणिवधेन) प्राणियोंकी हिंसासे (कि) क्या फल है ? (इति ऊहेन) ऐसा विचार करके (विरक्तोऽभूत) लड़ाईसे उदासीन हो गया अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (गत्यधीनं मानसम्) गतिके अनुकूल ही मनके भाव होते हैं। अर्थात् जिसको जिस गतिमे जाना होता है उसके मृत्युके समय वैसे ही भाव हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

विषयासङ्गदोषोऽयं त्वयैव विषयीकृतः ।
सांप्रतं वा विषप्रख्ये मुञ्चात्मन्विषये स्पृहाम् ॥६६॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्) हे आत्मा (अयं) इस (विषया-

सक्तिः दोषः) विषयासक्ति दोषको (त्वया एव) तूने ही (विषयी कृतः) प्रत्यक्ष कर लिया है अतएव (सांप्रत वा) अब तो (विष प्रख्ये) विषके समान (विषये) इन्द्रियोंके विषयमें (स्पृहां) इच्छाको (मुञ्च) छोड दे ॥ ६६ ॥

भुक्तपूर्वमिदं सर्वं त्वयात्मन्भुज्यते ततः।
उच्छिष्टं त्यज्यतां राज्यमनन्ता ह्यसुभृद्भवाः ॥६७॥

अन्वयार्थः—और (हे आत्मन्) हे आत्मा (इदं सर्वं) यह सब (भुक्त पूर्वं) पूर्व जन्ममें भोगे हुएको (त्वया) तू (भुज्यते) भोगता है (अतः) इस लिये (उच्छिष्ट राज्यं) उच्छिष्ट राज्यको (त्यज्यतां) त्याग दे अब नीतिः (हि) निश्चयसे (असुभृद्भवाः) जीवोंके भव (अनन्ताः) अनन्त (सन्ति) होते है। तात्पर्य—अनन्त जन्मोंमेसे बहुतसे जन्मोंमें इस जीवने राजसुख भोगा है इसलिये वह उच्छिष्टके समान है ॥ ६७ ॥

अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयाश्चिरम्।
स्वयं त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा॥६८॥

अन्वयार्थः—(यदि) अगर (विषयाः) इन्द्रियोंके विषय (चिरं) बहुत काल तक (स्थित्वापि) स्थिर रहकर भी (अवश्यं) अवश्य (नश्यति) नाशको प्राप्त हो जाते हैं तो (स्वयं) स्वय ही (त्याज्यः) छोड देने चाहिये (तथाहि) ऐसा करने पर (मुक्तिः स्यात्) आत्मा कर्म बन्धनसे मुक्त होती है (छूट जाती है) (अन्यथा) इसके विपरीत करनेसे (संसृतिरेव स्यात्) संसार ही होता है ॥ ६८ ॥

त्यज्यते रज्यमानेन राज्येनान्येन वा जनः ।
भज्यते त्यज्यमानेन तत्यागोऽस्तु विवेकिनाम् ॥६९॥

अन्वयार्थः—(रज्य मानेन राज्येन अन्येन वा जनः) राग विषय कृत राज्य अथवा अन्य वस्तुसे मनुष्य त्यज्यते) छोडा जाता है (त्यज्यमानेन) त्याग विषयी कृत वस्तुसे (जनः) मनुष्य (भज्यते) सेवन किया जाता है (ततः) इसलिये (विवेकिनाम्) विचारवान् पुरुषोंको (तद्) उसका (त्यागोऽस्तु) त्याग करना ही उचित है ।

तात्पर्यः—मनुष्य जिस वस्तुकी इच्छा करता है वह वस्तु उसको प्राप्त नहीं होती है किन्तु अनिच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है अतएव महात्मा पुरुष सांसारिक पदार्थोंमें उदासीन ही रहते हैं ॥ ६९ ॥

इति भावनया राजा वैराग्य परमीयिवान् ।
त्यक्त्वा सङ्गं निजाङ्गं च दिव्यां संपदमासदत् ॥७०॥

अन्वयार्थः—(राजा) राजाने (इति भावनया) इस प्रकारकी भावनासे (परम्) उत्कृष्ट (वैराग्यं) वैराग्य (ईयिवान्) प्राप्त किया और फिर अन्तमें (सङ्ग) परिग्रह (निजाङ्गं च) और अपने शरीरको (त्यक्त्वा) छोडकर (दिव्यां संपदं) स्वर्गसबंधी ऐश्वर्यको (आसदत्) प्राप्त करता भया ॥ ७० ॥

पौराः जानपदाः सर्वे निर्वेदं प्रतिपेदिरे ।
पीडा ह्यभिनवा नृणां प्रायो वैराग्यकारणम् ॥७१॥

अन्वयार्थः—उस समय (सर्वे पौराः) सारे पुरवासी (च) और

(जनपदा) देशनिवासी (निर्वेदं) उदास और विरक्त पनेको (प्रतिपेदिरे) प्राप्त हुए ? अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अभिनवा) नई तुरंतको (पीड़ा) पीडा (नृणा) मनुष्योंको (प्राय वैराग्य कारणम्) प्राय. वैराग्यका कारण होती है अर्थात् यह एक नियमसा है कि संसारी लोग नई अच्छी या बुरी वार्तासे शीघ्र ही सुख और दु:खका अनुभवन किया करते हैं ॥ ७१ ॥

अधिस्त्रि रागः क्रूरोऽयं राज्यं प्राज्यमसूनपि ।
तद्वञ्चिता हि मुञ्चन्ति किं न मुञ्चन्ति रागिणः ॥७२॥

अन्वयार्थ—(अयं) यह (अधिस्त्रिरागः) स्त्री विषयक प्रेम वा अनुराग (क्रूर) बड़ा क्रूर वा कठोर है (तद्वञ्चिता) उसके ठगाये हुए मनुष्य (प्राज्य राज्यं) बडे भारी राज्यको और (असूनपि) प्राणोंको भी (मुञ्चन्ति) छोड़ देते हैं ? सच है (रागिणः) रागी पुरुष (किं न) क्या नहीं (मुञ्चन्ति) छोड देते हैं अर्थात् (सर्व मुञ्चन्ति) सबको छोड़ देते है ॥ ७२ ॥

नारीजघनरन्ध्रस्थविण्मूत्रमयचर्मणा ।
वराह इव विड्भक्षी हन्त मूढः सुखायते ॥७३॥

अन्वयार्थ.—(हन्त) खेद है ? (मूढ.) मूर्ख जन (नारी जघन रंध्रस्थ विण्मूत्रमय चर्मणा) स्त्रियोंकी जघाओंके छिद्रमें स्थित मलमूत्रसे भरे हुए चमड़ेसे (विड्भक्षी) विष्टा खानेवाले (वराह इव) शूकरकी तरह (सुखायते) सुखी होते हैं अर्थात् विषयासक्त मूर्ख जन निन्दनीक विषय भोगादिकमें भी आनन्द करते हैं ॥ ७३

किं कीदृशं कियत्केति विचारे सति दुःसहम् ।
अविचारितरम्यं हि रामासंपर्कजं सुखम् ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थः—वह सुख (कि) क्या है (कीदृशं) कैसा है (कियत्) कितना है (क) कहां है (इति विचारे सति) ऐसा विचार करने पर (दुःसहम्) दुःसह हो जाता है अर्थात् (रामा संपर्कजं) स्त्रीके संगसे उत्पन्न (सुखं) सुख (अविचारितरम्य) विना विचारके ही सुन्दर है ॥ ७४ ॥

निवारिताप्यकृत्ये स्यान्निष्फला दुष्फला च धीः ।
कृत्ये तु नापि यत्नेन कोऽत्र हेतुर्निरूप्यताम् ॥७५॥

अन्वयार्थ—(अकृत्ये) बुरे काममें (निवारितापि) निवारण किये जाने पर भी (धी.) बुद्धि (निष्फला) फल रहित (च) और (दुष्फला) बुरे फल वाली (स्यात्) प्रवृत्त होती है (तु) किन्तु (कृत्ये) अच्छे काममें (प्रयत्नेन अपि) प्रयत्न करनेसे भी (न) नहीं (प्रवर्तते) प्रवृत्त होती है। (अत्र हेतु निरूप्यतां) कहो इसमें क्या हेतु है ?

अर्थात् बुरे कामोंमें आत्माकी प्रवृति विना उपदेशके भी होजाती है किन्तु सत्कार्यमे सदुपदेश मिलनेपर भी वैसी प्रवृति नहीं होती ॥

निश्चित्याप्यघहेतुत्वं दुश्चित्तानां निवारणे ।
येनात्मन्निपुणो नासि तद्धि दुष्कर्मवैभवम् ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्) हे आत्मा (दुश्चित्तानां) बुरे मानसीक विचारोंको (अघहेतुत्वं) पापका कारण (निश्चित्य) निश्चय

करके (अपि) भी (येन) जिस कारणसे (त्व) तू (निवारणे) निवारण करनेमे (निपुणः) समर्थ (नासि) नहीं होता है (हि) निश्चयसे (तत् दुष्कर्म वैभवम्) यह बुरे कर्मोका ही प्रभाव है ।

अर्थात् दुर्व्यसनोंका फल बुरा होता है ऐसा समझने पर भी आत्मा उनको छोड़नेमे असमर्थ दुष्कर्मके प्रभावसे ही होता है ॥ ७६ ॥

हेये स्वयं सती बुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे ।
तद्धेतुकर्म तद्वन्तमात्मानमपि साधयेत् ॥ ७७ ॥

अन्वयार्थ.—(बुद्धिः) बुद्धि (हेये) बुरे कार्यमें (स्वयं सती) अपने आप ही लग जाती है किन्तु (शुभेयत्नेनापि असती) अच्छे कामोंमे प्रयत्न करने पर भी प्रवृत्त नहीं होती (तद्धेतु) इस प्रवृत्तिसे बंधनेवाला (कर्म) कर्म ही (आत्मानं अपि) आत्माको कर भी (तद्वन्तं कुर्वन्ति) वैसा ही कर देता है ॥७७॥

कोऽहं कीदृग्गुणः क्वत्यः किंप्राप्यः किंनिमित्तकः ।
इत्यूहः प्रत्यहं नो चेदस्थाने हि मतिर्भवेत् ॥ ७८ ॥

अन्वयार्थः—(अहं कः) मैं कौन हूं ? (कीदृग्गुण.) मुझमें कैसे गुण हैं ? (क्वत्यः) मैं कहांसे आया हूं ? (किं प्राप्यं) क्या प्राप्त कर सकता हूं ? किं निमित्तकः) और मैं किस निमित्तके लिये हूं ? (चेत्) यदि (इति ऊहः) इस प्रकार विचार (प्रत्यहं नस्यात्) प्रतिदिन नहीं होवे तो (हि) निश्चयसे (मतिः) मनुष्योंकी बुद्धि (अस्थाने भवेत्) अयुक्त स्थानमे प्रवृत्त हो जाती है ॥ ७८ ॥

मुह्यन्ति देहिनो मोहान्मोहनीयेन कर्मणा ।
निर्मितान्निर्मिताशेषकर्मणा धर्मवैरिणा ॥ ७९ ॥

अन्वयार्थ—(निर्मिता शेषकर्मणा) सम्पूर्ण कर्मोका निर्माण करनेवाले (धर्मवैरिणा) धर्मके शत्रु (मोहनीयेन कर्मणा) मोहनीय कर्मसे (निर्मितात्) उत्पन्न (मोहात्) मोहसे (देहिनाम्) प्राणी (मोहन्ति) अविवेकको प्राप्त होते हैं ॥

अर्थात् यह मोहनीय कर्मका ही प्रभाव है कि आत्मा अपने स्वभावको भूलकर पर पदार्थमें लुभा रहा है ॥७९॥

किं नु कर्तुं त्वयारब्धं किं नु वा क्रियतेऽधुना ।
आत्मन्नारब्धमुत्सृज्य हन्त बाह्येन मुह्यसि ॥ ८० ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्) हे आत्मा (त्वया) तूने (किंतु कर्तुं आरब्धं (क्या) तो करनेके लिये आरंभ किया था और (अधुना किं नु क्रियते) अब तू क्या कर रहा है ? (हन्त) बडे खेदकी बात है कि (आरब्धं उत्सृज्य) अपने प्रारंभ किये हुएको छोड़कर (बाह्येन) बाह्य पदार्थोंसे (मुह्यसि) मोहको प्राप्त हो रहा है ॥

अर्थात्—कर्तव्यको छोड़कर अकृत्यमें प्रवृत्ति करना अनुचित है ॥८०॥

इदमिष्टमनिष्टं वेत्यात्मन्संकल्पयन्मुधा ।
किं नु मोमुह्यसे बाह्ये स्वस्वान्तं स्ववशीकुरु ॥८१॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्) हे आत्मा (इदं इष्टं वा अनिष्टं) यह इष्ट है अथवा अनिष्ट है (इति) इस प्रकार (मुधा) वृथा (संकल्पयन्) संकल्प करता हुआ (त्वं) तू (बाह्ये) बाह्य पदार्थोंमें (किनु) क्यों (मोमुह्यसे) मुग्ध हो रहा है इस लिये (स्वस्वा-

न्तं स्ववशी कुरु) अपने हृदयको अपने वशमें कर ॥

लोकद्वयाहितोत्पादि हन्त स्वान्तमशान्तिमत ।
न द्वेक्षि द्वेक्षि ते मौढ्यादन्यं संकल्प्य विद्विषम् ॥८२॥

अन्ययार्थः—(हन्त) बड़े खेदकी बात है (त्वं) तू (लोकद्वया हितोत्पादि) इस लोक और परलोकमें अहित (दु.ख)को उत्पन्न करने वाली (अशान्तिमत्) अशान्तिमय (ते स्वान्तं) अपने हृदयको (नद्वेक्षि) द्वेष नहीं करता है किन्तु (मौढ्यात्) मूर्खतासे (अन्य) दूसरोंको (विद्विषम् सकल्प्य) शत्रु, समझ कर (द्वेक्षि) द्वेष करता है ॥ ८२

अन्यदीयमिवात्मीयमपि दोष प्रपश्यता ।
कः समः खलु मुक्तोऽयं युक्तः कायेन चेदपि ॥८३॥

अन्वयार्थः—(अन्यदीय दोप इव) दूसरोके दोषोंके सदृश (आत्मीयं) अपने (अपि) भी (दोषं प्रपश्यता) दोषोको देखने वाले पुरुषके (सम) समान (अय) यह (क) कौन (खलु) निश्चयसे (कायेन युक्तः चेदपि) कायसे युक्त होता हुआ भी (मुक्तः) जीवन मुक्त है ॥

अर्थात् दूसरोंके दोषोंकी तरह अपने दोषोंको देखनेवाला ही सत्पुरुष कहलाता है ॥ ८३ ॥

इत्याद्यूहपरे लोके केकी तु वियता गतः ।
पातयमास राज्ञीं तां तत्पुरप्रेतवेश्मनि ॥ ८४ ॥

अन्वयार्थः—उस समय (इत्याद्यूहपरे) इस प्रकारके विचारमें मग्न (लोके) वहाके लोगोंके होनेपर (वियता गतः) आकाशमें गये हुए (केकी) यन्त्रने (तां राज्ञीं) उस विजया रानीको (तत्पुर

प्रेत वेश्मनि) उस नगरके बाहर श्मशानभूमिमें (पातयामास) डाल दिया ॥८४॥

जीवानां पापवैचित्री श्रुतवन्तः श्रुतौ पुरा ।
पश्येयुरधुनेतीव श्रीकल्पाभूदकिंचना ॥ ८५ ॥

अन्वयार्थः—(पुरा) पूर्व कालमें (श्रुतौ) शास्त्रोंमें (जीवानां पापवैचित्री) जीवोंके पापोंकी विचित्रता (श्रुतवन्तः) सुननेवाले पुरुष (अधुना) इस समय (पश्येयुः) देख लें कि (इतीव हेतो) इसी हेतुसे मानो (श्री कल्पा) लक्ष्मीके समान विजया रानी इस समय (अकिंचना अभूत्) जन धनसे निर्धन शून्य हो गई है ॥८५॥

क्षणनश्वरमश्वैर्यमित्यर्थं सर्वथा जनः ।
निरणैर्षीदिमां दृष्ट्वा दृष्टान्ते हि स्फुटा मतिः ॥८६॥

अन्वयार्थ.—(जनः) मनुष्य (ऐश्वर्यम् क्षणनश्वरम्) राज सम्पति क्षणमे नाश हो जाती है (इत्यर्थ) इस अर्थको (इमां दृष्ट्वा) रानीको देखकर (सर्वथा) सर्वथा (निर्णैषीत्) निर्णय कर लें ? क्योंक (दृष्टान्ते) दृष्टान्त मिलनेपर (मतिः) बुद्धि (स्फुटा भवेत्) विशद व निर्मल हो जाती है ॥ ८६ ॥

पूर्वाण्हे पूजिता राज्ञी राज्ञा सैवापराह्णके ।
परेतभूशरण्याभूत्पापाद्बिभ्यतु पण्डिताः ॥८७ ॥

अन्वयार्थः—(या राज्ञी) जो रानी (पूर्वाण्हे) प्रातः काल (राज्ञा) राजासे (पूजिता) पूजित थी (सा एव) उस ही रानीने (अपराण्हके) मध्यान्ह कालमें (परेतभूशरण्या भूत्) मसान भूमिका शरण लिया अत्र नीतिः अतएव (पापाद्) पापसे (पण्डित लोग डरें।

सा तु मूर्च्छापराधीना सूतिपीडामजानती ।
मासि वैजनने सूनुं सुषुवे हन्त तद्दिने ॥ ८८ ॥

अन्वयार्थ—(तु) तदनन्तर (हन्त) खेद है (तद्दिने) उसी दिन (वैजनने मासि) प्रसव मासमें (दशवें महीनेमे (मूर्छापराधीना सा) मूर्छाके आधीन उस रानीने (सूतपीडामजानती) प्रसूतकी पीडा नहीं जान कर (सूनु सुषुवे) पुत्र जना (उत्पन्न किया) ।

तावता देवता काचिद्धात्रीवेषेण सन्यधात् ।
तत्रैव पुत्रपुण्येन पुण्ये किं वा दुरासदम् ॥ ८९ ॥

अन्वयार्थ·—(तावता) उसी समय (तत्रैव) वहां पर (पुत्र पुण्येन) पुत्रके पुण्यसे (काचिद् देवता) कोई देवी (धात्री वेषेण) धायका वेष रखकर (सन्निधात्) आई। अत्र नीति. (पुण्ये कि) पुण्य रहने पर क्या ? (दुरासदम्) दुष्प्राप्य होता है (न किमपि) कुछ भी दुष्प्राप्य नही होता है ॥ ८९ ॥

तां पश्यन्त्या अभूत्तस्या उद्वेलः शोकसागरः ।
संनिधौ हि स्वबन्धूनां दुःखमुन्मस्तकं भवेत् ॥९०॥

अन्वयार्थः—(ता) उसको (पश्यंत्या) देखकर (तस्याः) रानीका (शोकसागर·) शोकरूपी सागर (उद्वेलः अभूत्) उमड़ पडा) और बढ गया। अत्र नीति· (हि) निश्चयसे (स्ववंधूनां) अपने वंधुओके (सनिधौ) निकट होनेपर (दु·ख) दु ख (उन्मस्तकं) भवेत्) उन्मस्तक (पूर्वसे अत्यन्त अधिक) होजाता है ॥ ९० ॥

देवता तु समाश्वास्य जातमाहात्म्यवर्णनैः ।
ऊर्णादिदर्शनोद्भूतैर्देवीं तामित्यवोचत ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थः—(तु) तदनन्तर (देवता) देवीने (ऊर्णादि दर्शनोद्भूतैः) भौंके मध्यमें वालोके ऊपर भौरी इत्यादिक अनक चिन्ह दिखाकर (जातमाहात्म्यवर्णनै) बालकका माहात्म्य वर्णन करके (तां देवीं समाश्वास्य) उस रानीको विश्वास दिलाकर (इति अवोचत) इस प्रकार कहा ॥ ९१ ॥

पुत्राभिवर्धनोपाये देवि चिन्ता निवर्त्यताम् ।
क्षत्रपुत्रोचितं कश्चिदेनं संवर्धयिष्यति ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थः—(देवि) हे देवी तू (पुत्राभिवर्धनो पाये) पुत्रकी वृद्धिके उपायमें (चिन्ता निवर्त्यताम्) चिन्ता मत कर (कश्चित्) कोई क्षत्रि पुत्रो चित) छत्रियोंके पुत्रोंके समान (एनं) इसका (संवर्धयिष्यति) पालन पोषण करेगा ॥ ९२ ॥

इत्युक्ते कोऽपि दृष्टोऽभूद्विसृष्टप्रेतसूनुकः ।
सूनुं सूनृतयोगीन्द्रवाक्यात्तत्र गवेषयन् ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थः—(इत्युक्ते) ऐसा कहते ही (विस्टष्टप्रेतसूनकः) मसान भूमिमें रक्खा है मरे पुत्रको जिसने ऐसा और (सूनृत योगीन्द्रवाक्यात्) सत्यार्थ मुनिके वचनसे (तत्रसूनुं गवेषयन्) वहां पर जीवित पुत्रको ढूंढता हुआ (कोऽपि दृष्टः अभूत्) कोई दिखलाई दिया ॥ ९३ ॥

तद्दर्शनेन तद्वाक्यं प्रमाणं निर्णिनाय सा ।
निश्चलादविसंवादाद्वस्तुनो हि विनिश्चयः ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थ.—(सा) उस विनया रानीने (तद्दर्शन) उस सेठके देखनेसे (तद्वाक्यं) देवीके वचनोंको (प्रमाणं निर्णिनाय) ठीक प्रमाण समझा। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे निश्चलात्) (अविसंवादात्)

निश्चल (स्थिर) विसंवाद रहित वचनसे (वस्तुनः) वस्तुका (विनिश्चय.) निश्चय होता है ॥ ९४ ॥

ततो गत्यन्तराभावाद्देवताप्रेरणाच्च सा ।
पित्रीयमुद्रयोपेतमाशास्यान्तरधात्सुतम् ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) तदंनतर (सा) वह रानी (गत्यतराभावात्) और कोई उपाय न देखकर (च) और (देवता प्रेरणात्) उस देवीकी प्रेरणासे (पित्रीय मुद्रयोपेतं) पिताकी मुद्रासे युक्त (सुतम्) पुत्रको (आशास्य) आशीर्वाद देकर (अन्तर्धात्) छिप गई ॥ ९५ ॥

गन्धोत्कटोऽपि तं पश्यन्नातृपद्वैश्यनायकः ।
एधोन्वेषिजनैर्दृष्टः किं वा न प्रीतये मणिः ॥ ९६ ॥

अन्वयार्थ —(वैश्यनायकः) वैश्योंका मुखिया (गन्धोत्कटः अपि) गन्धोत्कट भी (तं) उस पुत्रको (पश्यन्) देखकर (नातृपत्) तृप्तताको प्राप्त नहीं हुआ । अत्र नीतिः एधोन्वेषिजनैः) ईंधन ढूंढनेवाले मनुष्योसे (दृष्टः) देखी हुई (मणिः) मणि (किंवा) क्या (प्रीतये न भवति) प्रीतिके लिये नही होती है ? किन्तु (स्यादेव) होती ही है अर्थात् छोटे मनुष्योंसे देखी हुई उत्तम वस्तु प्रीतिकर ही होती है ॥ ९६ ॥

हर्षकण्टकिताङ्गोऽयमादधानस्तमङ्गजम् ।
जीवेत्याशिषमाकर्ण्य तन्नाम समकल्पयत् ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थः—(हर्षकण्टकिताङ्गः) हर्षसे रोमाञ्चित है अङ्ग जिसका ऐसे (अयं) इस गन्धोत्कटने (तं अङ्गजं) उस पुत्रको

(आदधानः) उठाकर (जीव) जीव (इति आशिषम्) ऐसी आशीर्वाद (आकर्ण्य) सुनकर (तन्नाम समकल्पयत) जीवक वा जीवंधर उसका नाम रक्खा ॥ ९७ ॥

अमृतं सूनुमज्ञानात्संस्थितं कथमभ्यधाः ।
इति क्रुध्यन्स्वभार्यायै सानन्दोऽयमदात्सुतम् ॥९८॥

अन्वयार्थः—इसके पश्चात् उसने घर जाकर (स्वभार्यायै) अपनी स्त्रीके लिये (अमृतं) नहीं मरे हुए (सूनु) बालकको (अज्ञानात) अज्ञानसे तूने (कथं) कैसे (संस्थितं) मरा हुआ (अभ्यधाः) कह दिया (इति क्रुध्यन्) ऐसा कह कर क्रोध करता हुआ (सानन्द अयं) आनन्द सहित इसने (सुतं अदात) पुत्रको उसे सौंप दिया ॥ ९८ ॥

अभ्यनन्दीत्सुनन्दापि नन्दनस्यावलोकनात् ।
प्राणवत्प्रीतये पुत्रा मृतोत्पन्नास्तु किं पुनः ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थः— (सुनन्दा अपि) वैश्यकी स्त्री सुनन्दा भी (नन्दनस्य) पुत्रको (अवलोकनात्) देखनेसे (अभ्यनन्दीत) अत्यन्त आनन्दित होती भई । अत्र नीतिः (ही) निश्चयसे (पुत्रः) पुत्र (प्राणवत्)प्राणोंकी तरह (प्रीतये भवन्ति) प्रीतिके लिये होते हैं (तु) और जो (मृतोत्पन्नः किं पुनः वक्तव्यः) पुत्र मर कर फिर जन्म धारण करते हैं ? उनका तो कहना ही क्या है ॥ ९९ ॥

देवता जननीमस्य बन्धुवेश्मपराङ्मुखीम् ।
दण्डकारण्यमध्यस्थमनैषीत्तापसाश्रमम् ॥ १०० ॥

अन्वयार्थः—(देवता) वह देवी (बन्धुवेश्मपराङ्मुखीं) बन्धुओंके घर जानेसे विमुख (अस्य जननीं) इस जीवंधरकी माताको (दण्डकारण्यमध्यस्थं) दण्डक वनके मध्यमें स्थित (तापसाश्रमम्) तपस्वियोंके आश्रममें (अनैषीत्) पंहुचाती भई ॥१००॥

कृत्वा च तां तपस्यन्तीं सतोषा सा मिषादगात् ।
समीहितार्थसंसिद्धौ मनः कस्य न तुष्यति ॥१०१॥

अन्वयार्थः—इसके पश्चात् (तां) उस रानीको (तपस्यन्तीं) तपश्चरण क्रियामें लगा करके (सतोषासा) संतुष्ट वह देवी किसी (मिषात्) बहानेसे (अगात्) चलीगई। अत्र नीतिः (समीहितार्थसंसिद्धौ) मनोमिलषत अर्थके सिद्ध हो जाने पर (कस्य मनः) किसका मन (न तुष्यति) संतुष्ट नहीं होता है ? किन्तु (संतुष्यत्येव) संतुष्ट ही होता है ॥ १०१ ॥

अवात्सीद्राजपत्नी च वत्सं निजमनोगृहे ।
जिनपादाम्बुजं चैव ध्यायन्ती हन्त तापसी ॥१०२॥

अन्वयार्थः—(हन्त) खेदकी बात है ? (तापसी) तपस्विनी (राजपत्नी) राजाकी स्त्री विजया पट्टरानी (जिन पादाम्बुजं) जिनेन्द्रके चरण कमलोंको (ध्यायन्ती) ध्यान करती हुई (निजमनोगृहे) अपने मनरूपी घरमें (वत्सं एव) जीवंधर पुत्रको ही (अवात्सीत्) निवास कराती भई ॥ १०२ ॥

अनल्पतूलतल्पस्थसवृन्तप्रसवादपि ।
निर्भरं हन्त सीदन्त्यै दर्भशय्याप्यरोचत ॥ १०३ ॥

अन्वयार्थः—और (हन्त) बड़े खेदकी बात है ? (अनल्प-

तूलतल्पस्थसवृन्तप्रसवाद् अपि) बहुतसी रूईके बिछे हुये है गद्दे जिस पर ऐसी शय्याके ऊपर पड़े हुए डोड़ी सहित पुष्पोंसे भी (निर्भरं) अत्यन्त (सीदन्तये) शरीरमें क्लेश मानने वाली रानीके लिये आज (दर्भशय्या अपि) डाभकी चटाई भी (अरोचत) रुचिकर हुई है ॥ १०३ ॥

स्वहस्तलूननीवारोऽप्याहारोऽस्याः परेण किम् ।
अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१०४॥

अन्वयार्थ;—(परेण कि) और तो क्या ? (स्वहस्तलून-नीवारः अपि) अपने हाथसे काटा हुआ नीवार धान्य भी (अस्याः) इसका (आहारः अजनि) आहार हुआ । अत्र नीतिः (पूर्वकृतं) पूर्वमें किये हुए (शुभाशुभम् कर्म) शुभ वा अशुभ कर्म (अवश्यं अनुभोक्तव्यं) अवश्य ही भोगने पड़ते हैं ॥ १०४ ॥

अथ गन्धोत्कटायार्थमर्भकार्थं महोत्सवम् ।
आत्मार्थं गणयन्मूढः काष्ठाङ्गारोऽप्यदान्मुदा ॥१०५॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदन्तर (मूढः) मूढ (काष्ठाङ्गारः) [illegible] (ही) निश्चयसे [illegible]ङ्गारने (अर्भकार्थं महोत्सवम्) बालकके जन्[illegible]वन्ति [illegible]वको (आत्मार्थं) अपने लिये (मेरे राजा होनेसे इसने यह महोत्सव किया है) (गणयन्) समझ कर उसने (गन्धोत्कटाय) गन्धोत्कट सेठके लिये (मुदा) हर्षसे (अर्थं) धन (अदात्) दिया ॥ १०५ ॥

तत्क्षणे तत्पुरे जाताञ्जातानपि तदाज्ञया ।
लब्ध्वा वैश्यपतिः पुत्रं मित्रैः सार्धमवर्धयत् ॥१०६॥

अन्वयार्थः—(वैश्यपतिः) वैश्योंमें प्रधान गन्धोत्कटने

(तत्क्षणे) उस दिन (तत्पुरे जातान्) उस पुरमें उत्पन्न हुए (जातान्) बालकोंको (तदाज्ञया) काष्टाङ्गारकी आज्ञासे (लब्ध्वा) प्राप्त करके (मित्रैः सार्धं) उन मित्रोंके साथ (पुत्रं अवर्धयत्) पुत्रको बढाया ॥ १०६ ॥

अथ जातः सुनन्दाया नन्दाढ्यो नामनन्दनः ।
तेन जीवंधरो रेजे सौभ्रात्रं हि दुरासदम् ॥ १०७ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनन्तर (सुनन्दायाः) गंधोत्कटकी स्त्री सुनन्दाके (नन्दाढ्यः नाम नन्दनः) नंदाढ्य नामका पुत्र (जातः) उत्पन्न हुआ (तेन) उस पुत्रसे (जीवन्धरः) जीवन्धर (रेजे) और शोभित होते भये। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (सौभ्रात्रं दुरासदम्) अच्छे भाईका मिलना बड़ा कठिन है ॥ १०७ ॥

एवं सद्बन्धुमित्रोऽयमेधमानो दिने दिने ।
अतिशेते स्म शीतांशुमकलङ्काङ्गभावतः ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थः—(एवं) इस प्रकार (सद्बन्धुः मित्रः अयं) श्रेष्ठ बन्धु और मित्र हैं जिसके ऐसे यह जीवंधर कुमार (दिने दिने) प्रतिदिन (एधमानः) बढते हुए (अकलङ्काङ्गभावतः) निर्दोष शरीरकी कान्तिसे (शीतांशु) चन्द्रमाको (अतिशेते स्म) जीतते भये ॥ १०८ ॥

ततः शैशवसंभूष्णुसर्वव्यसनदूरगः ।
पञ्चमं च वयो भेजे भाग्ये जाग्रति का व्यथा ॥१०९॥

अन्वयार्थः—(ततः) तदनन्तर (शैशवसंभूष्णुसर्वव्यसन दूरगः) बालक अवस्थामें होनेवाले सम्पूर्ण व्यसनोंसे रहित हो

हुए जीवंधर कुमारने (पञ्चमं वयो भेजे) पांचवें वर्षकी अवस्था प्राप्त की। अत्रनीतिः (भाग्ये) भाग्यके (जाग्रति सति) जागृत रहने पर (का व्यथा) कौन पीड़ा हो सकती हैं ? अर्थात् (अपि तु न कमपि) कोई भी नहीं हो सकती ॥ १०९ ॥

अथानर्थकमव्यक्तमतिहृद्यं च वाङ्मयम् ।
मुक्त्वातिव्यक्तगीरासीत्स्वयं वृणवन्ति हि स्त्रियः॥११०॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनन्तर (अनर्थकं) अर्थ शून्य (अव्यक्तं) अस्पष्ट शब्दवाली (च) और (अतिहृद्यं) अत्यन्त मनोहर (वाङ्मयम्) बालक अवस्थाकी तौतली भाषाको (मुक्त्वा) छोड़कर जीवंधरकुमार (अतिव्यक्तगीः आसीत्) अत्यन्त स्पष्ट भाषी हुआ। अत्र नीति. (ही) निश्चयसे (स्त्रियः स्वयं वृणवन्ति) स्त्रियें अच्छे पतिको स्वयं वर लेती हैं। अर्थात् अस्पष्ट सुसंस्कृत वाणीने जीवंधर स्वामीका आश्रयण किया ॥ ११० ॥

आचार्यैकवपुः कश्चिदार्यनन्दीति कीर्तितः ।
आसीदस्य गुरुः पुण्याद्गुरुरेव हि देवता ॥ १११ ॥

अन्वयार्थः—उस समय (कश्चिद् आचार्यएकवपुः) कोई आचार्यकी पदवीको प्राप्त और (आर्यनन्दीति कीर्तितः) आर्यनन्दी इस नामसे प्रसिद्ध (अस्य पुण्यात्) इस जीवंधरके पुण्यसे (गुरु- आसीत्) गुरु हुए। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (गुरु एव देवता) गुरु ही देवता है ॥ १११ ॥

निष्प्रत्यूहेष्टसिद्ध्यर्थं सिद्धपूजादिपूर्वकम् ।
सिद्धमातृकया सिद्धामथ लेभे सरस्वतीम् ॥११२॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनन्तर कुमार (निष्प्रत्यूहेष्ट सिध्यर्थं) निर्विघ्न इष्ट सिद्धिके लिये (सिद्ध पूजादि पूर्वकम्) सिद्ध परमेष्टीकी पूजा करके (सिद्धमातृकया सिद्धां) अनादि स्वर व्यंजन मात्राओंसे प्रसिद्ध (सरस्वतीं) सरस्वतीको (लेभे) प्राप्त करते भये ॥ ११२ ॥

इति श्री वादीभसिंह सूरि विरचते क्षत्रचूड़ामणौ
सान्वयार्थो सरस्वतीलम्भो नाम प्रथमो लम्ब ॥

इति

अथ द्वितीयो लम्बः ॥

अथ विद्यागृहं किंचिदासाद्य सखिमण्डितः ।
पण्डिताद्विश्वविद्यायामध्यगीष्टातिपण्डितः ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(अथ) तदनन्तर (सखिमण्डितः) मित्रगणोंसे भूषित जीवंधरकुमारने (किंचित् विद्यागृहं) किसी विद्यालयको (आसाद्य) प्राप्त करके (विश्वविद्याया पडितात्) सम्पूर्ण विद्याओंमें पण्डित गुरुसे (अध्यगीष्ट) पढ़ा (पश्चात्) पश्चात् (अतिपण्डितः बभूव) बड़ा भारी पण्डित हुआ ॥ १ ॥

तस्य प्रश्रयशुश्रूषाचातुर्याद्गुरुगोचरात् ।
स्मृता इवाभवन्विद्या गुरुस्नेहो हि कामसूः ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(तस्य) उसको (गुरुगोचरात्) गुरुके विषयमें (प्रश्रयशुश्रूषाचातुर्याद्) विनय सेवा शुश्रुषा और चतुराईकी

प्रगटतासे (विद्या स्मृता इव) विद्यायें यादकी तरह (अभवन्) आ गई । अर्थात् जिस प्रकार भूली हुई वस्तु याद आ जाती है उसी तरह उसे विद्यायें प्राप्त हो गई ! अत्र नीतिः (ही) निश्चयसे (गुरुस्नेहः कामसूः) गुरुका प्रेम सम्पूर्ण इच्छाओंको पूरा करनेवाला होता है ॥ २ ॥

अनुजीवकमेवात्र जीवलोके विपश्चितः ।
इति निश्चयतः सूरिः सुतरां प्रीतिमव्रजत् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(अत्र जीवलोके) इस संसारमें (विपश्चितः) जितने पण्डित हैं वे सब (जीवकं अनु एव) जीवधरसे हीन (कम योग्यताके) ही हैं (इति निश्चयतः) ऐसा निश्चय होनेसे (सूरिः) पढानेवाले आचार्य (सुतरां प्रीतिं) स्वयमेव उस पर प्रसन्न (अव्रजत्) होते भये ॥ १०३ ॥

आत्मकृत्यमकृत्यं च सफलं प्रीतये नृणाम् ।
किं पुनः श्लाध्यभूतं तत्किं विद्यास्थापनात्परम् ॥४॥

अन्वयार्थ—(नृणाम्) मनुष्योंको (आत्मकृत्यं) अपना कार्य (अकृत्यं च) बुरा भी (सफलं) सफल होने पर (प्रीतये) प्रीतिकर (भवति) होता है तो फिर (श्लाध्यभूतं) अच्छा काम (किं पुनः वक्तव्यं) क्यों अच्छा नहीं लगेगा ? लगेगा ही, उसमें भी (विद्या स्थापनात्परं तत्किं) विद्या स्थापनसे (विद्यादानसे बढ कर) और दूसरा कौन अच्छा काम है ? (कोई भी अच्छा काम नहीं है) ॥ ४ ॥

अथ प्रसन्नधीः सूरिरन्तेवासिनमेकदा ।
एकान्ते हि निजप्रान्तमावसन्तमचीकथत् ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (एकदा) एक दिन (प्रसन्नधीः) प्रसन्नचित्त (सूरिः) गुरुने (निज प्रान्तं आवसन्तं) अपने पास रहनेवाले (अन्तेवासिनं) शिष्यसे (एकान्ते) एकान्तमें (अचीकथत्) कहा ॥ ५ ॥

श्रुतशालिन्महाभाग श्रूयतामिह कस्यचित् ।
चरितं चरितार्थेन यदत्यर्थं दयावहम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(श्रुतशालिन्महाभाग) हे शास्त्रज्ञानसे शोभित उत्तम भाग्यवाले ! (इह) इस लोकमें प्रसिद्ध (कस्यचित्) किसीके (चरितं) चरित्रको (श्रूयतां) सुनो ! (यत् चरितं) जो चरित्र (चरितार्थेन) सुननेसे (अत्यर्थं) अत्यत (दयावहम्) दया करनेवाला है ॥ ६ ॥

विद्याधरास्पदे लोके लोकपालाह्वयान्वितः ।
लोकं वैपालयन्भूपः कोऽपि कालमजीगमत् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ —(विद्याधरास्पदेलोके) विद्याधरोंका है स्थान जिसमें ऐसे लोकमें (लकपालाह्वयान्वितः) लोकपाल है नाम जिसका ऐसा (कोऽपि भूपः) कोई राजा (लोकं वैपालयन्) प्रजाका पालन करता हुआ (काल अजीगमत्) कालको विताता भया ॥ ७ ॥

क्षणक्षीणत्वमैश्वर्ये क्षीवाणामिव बोधयत् ।
क्षेपीयः पश्यतां नश्यदभ्रमैक्षिष्ट सोऽधिराट् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—एक दिन (सः अधिराट्) उस राजाने (क्षीवाणां) धनोन्मत्त पुरुषोंको (ऐश्वर्ये) ऐश्वर्यमें (क्षणक्षीणत्वं) क्षण मात्रमें नष्ट हो जाता है ? (इति) ऐसा (बोधयत्) बोध करानेवालेके सदृश

और (पश्यतां अग्रे) देखने वालोंके अगाड़ी (क्षेपीयः नश्यत्) शीघ्र ही नाश होनेवाले (अभ्रं) मेघको (ऐक्षिष्ट) देखा ॥ ८ ॥

तद्वीक्षणेन वैराग्यं विजजृम्भे महीभुजः ।
पम्फुलीति हि निर्वेगो भव्यानां कालपाकतः ॥९॥

अन्वयार्थः—(तद्वीक्षणेन) उस मेघको देख कर (महीभुजः) राजाको (वैराग्यं) वैराग्य (विजजृम्भे) उत्पन्न हो गया । अत्र नीतिः (ही) निश्चयसे (भव्यानां) भव्य पुरुषोंके (कालपाकतः) काल लब्धिके आजाने पर (निर्वेगः) निर्वेग (सांसारिक विषयोंमें उदासीनता) भाव (पम्फुलीति) अतिशयतासे प्रगट हो जाता है । अर्थात् समय आजाने पर भव्य आत्माओंका कार्य शीघ्र सिद्ध हो जाता है ॥ ९ ॥

ततोऽयं पुत्रनिक्षिप्तराज्यभारः क्षितीश्वरः ।
जैनीं दीक्षामुपादत्त यस्यां कायेऽपि हेयता ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके पश्चात् (पुत्रनिक्षिप्तराज्यभारः) पुत्रके ऊपर छोडा है राज्यभारको जिसने ऐसे (अयं क्षितीश्वरः) इस राजाने (जैनीं दीक्षां) जैनीकी दीक्षा (उपादत्त) धारण की ! (यस्यां) जिस दीक्षाके अंदर (कायेऽपि) शरीरमें भी (हेयता) त्याग बुद्धि होती है ॥ १० ॥

तपांसि तप्यमानस्य तस्य चासीदहो पुनः ।
भस्मकाख्यो महारोगो भुक्तं यो भस्मयेत्क्षणात् ॥११॥

अन्वयार्थः—(पुनश्च) और फिर (अहो) खेद है ! (तपांसि तप्यमानस्य) तपको तपते हुए (तस्य) तपस्वी उस राजाको (भस्म-

काख्यः) भस्मक नामका (महारोगः) महारोग (आसीत्) उत्पन्न हुआ (यः) जो रोग (भुक्तं) खाये हुए अत्यंत पौष्टिक पदार्थोंको भी (क्षणात्) क्षण मात्रमें (भस्मयेत्) भस्म कर देता है ॥ ११ ॥

न हि वारयितुं शक्यं दुष्कर्माल्पतपस्यया ।
विस्फुलिङ्गेन किं शक्यं दग्धुमार्द्रमपीन्धनम् ॥१२॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (अल्प तपस्या) थोडीसी तपस्याके द्वारा (दुष्कर्म) खोटा कर्म (निवारयितु) निवारण करनेके लिये कोई भी (न शक्यं) समर्थ नहीं हो सकता ? (किं) क्या (विस्फुलिङ्गेन) अग्निकी जरासी चिगारीसे (आर्द्र इन्धनम्) गीला ईन्धन (दग्धु शक्यं) जलनेके लिये समर्थ है ? (अपि तु दग्धं न शक्यं) अर्थात् जलनेके लिये समर्थ नहीं है ॥ १२ ॥

अशक्त्यैव तपः सोऽयं राजा राज्यमिवात्यजत् ।
श्रेयांसि बहुविघ्नानीत्येतन्नह्यधुनाभवत् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(सः अयं राजा) उस इस राजाने (अशक्त्या एव) शक्ति हीनपनेसे (राज्यमिव) राज्यकी तरह (तप अत्यजत्) तप करना छोड़ दिया। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (श्रेयांसि बहु विघ्नानि) कल्याणकारी कार्य बहुत विघ्नवाले (भवंति) होते है (इति एतद् अधुना न अभवत्) यह किंवदंती अभी ही नही हुई किंतु पहलेसे चली आती है ॥ १३ ॥

तपसाच्छादितस्तिष्ठन्स्वैराचारी हि पातकी ।
गुल्मेनान्तर्हितो गृह्णन्विष्करानिव नाफलः ॥ १४॥

अवर्तिष्ट यथेष्टं स पाषण्डितपसा पुनः ।
चित्रं जैनी तपस्या हि स्वैराचारविरोधिनी ॥ १५ ॥
युग्मम्

अन्वयार्थः—(पुनः) इसके पश्चात् (स) वह (स्वैराचारी पातकी) स्वेच्छाचारी पापी पुरुष (गुल्मेनांतर्हितः) छोटे वृक्षसे छिपे हुये (विष्करान् गृह्णन्) चिड़ियोंको पकडनेवाले (नाफल इव) व्याधके सदृश (तपसाच्छादितः तिष्ठन्) झूठे तपसे आच्छादित होता हुआ अर्थात् तपके बहानेसे (पाषण्ड तपसा) पाखण्ड तपके द्वारा (यथेष्टं) इच्छानुसार इधर उधर (अवर्तिष्ट) घूमता भया। अत्र-नीतिः (चित्रं) आश्चर्य है ? (हि) निश्चयसे (जैनी तपस्या) जैन धर्मके अनुकूल तपश्चरण (स्वैराचारविरोधनी) स्वच्छंद आचरणका विरोधी है ॥ १५ ॥

अथ भिक्षुर्बुभुक्षुः सन् गन्धोत्कटगृहं गतः ।
उपतापरुजोऽप्येष धार्मिकाणां भिषक्तमः ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनंतर (भिक्षु) भिक्षुक(बुभुक्षुः सन्) भूखसे पीड़ित होता हुआ (गंधोत्कट गृहंगतः) गधोत्कट सेठके घर गया। तो भी (एष) यह तापसी (उपताप रुजः अपि) रोगसे पीड़ित होता हुआ भी (धार्मिकाणां) धर्मात्मा पुरुषोंका (भिषक्तमः) उत्तम वैद्य था ॥ १६ ॥

धार्मिकाणां शरण्यं हि धार्मिका एव नापरे ।
अर्हन्कुलवत्तेषां प्रकृत्यान्ये हि विद्विषः ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (धार्मिकाणां) धार्मिक पुरुषोंके (शरण्यं) रक्षक (धार्मिकाएव) धार्मिक पुरुष ही होते हैं (अपरे न)

दूसरे नहीं। और (अन्ये) दुर्जन पुरुष (तेषा) सज्जन पुरुषोंके (अहेः नकुलवत्) सर्पनौलेके सदृश (प्रकृत्याः) स्वभावसे (विद्विषः) शत्रु होते हैं ॥ १७ ॥

तत्र मध्येगृहं भिक्षुरद्राक्षीत्पुत्रपुंगवम् ।
अङ्गत्वां त्वं च तं वीक्ष्य तद्बुभुक्षामलक्षयः ॥ १८॥

अन्वयार्थः—(तत्र) वहां पर (भिक्षुः) भिक्षुकने (गृहं मध्ये) गृहके मध्यमे (हे अङ्ग) हे अङ्ग (पुत्रपुङ्गवम्) पुत्रोंमें श्रेष्ठ (त्वां) तुमको (अद्राक्षीत्) देखा (च) और (त्वं) तुमने (तं वीक्ष्य) उसको देख करके (तद् बुभुक्षां) उसकी भूखको (अलक्षयः) जान लिया ॥ १८ ॥

भोक्तुमारभमाणस्त्वं पौरोगवमचीकथः ।
भोज्यतामयमित्येष पुनरेनमबूभुजत् ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ—(भोक्तुं आरभमाणः) भोजन करनेके लिये प्रवृत्त (त्वं) तुमने (अयं भोज्यतां) इनको भोजन कराओ (इति पौरोगवम्) ऐसा रसोइयेसे (अचीकथः) कहा (पुनः) फिर (एषः) इस रसोइयेने (एनं) इनको (अबुभुजत्) भोजन कराया ॥ १९ ॥

अन्नैस्तद्गृहसंपन्नैर्नाभूत्तत्कुक्षिपूरणम् ।
अहो पापस्य घोरत्वमाशाब्धिः केन पूर्यते ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(तद्गृहसम्पन्नैः) उस घरमें तैयार (अन्नैः) अन्नसे (तत्कुक्षि पूरणम्) इस भिक्षुककी उदरपूर्ति (न अभूत्) नहीं हुई अत्र नीतिः (अहो) अहो। पापस्य घोरत्वं) (पापका भयंकरपना कैसा

है ? (आशाब्धिः) आशासमुद्र (केन पूर्यते) किससे पूर्ण ह सकता है ॥ २० ॥

अभुञ्जानस्त्वमाश्चर्यादासीनोऽस्मै वितीर्णवान् ।
कारुण्यादस्य पुण्याद्वा करस्थं कवलं मुदा ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(अभुञ्जानः) नहीं भोजन करते हुए औ (आश्चर्याद् आसीनः) आश्चर्यसे बैठे हुए (त्वं) तुमने (कारुण्यात् करुणासे (वा अस्य पुण्यात्) अथवा इसके पुण्यसे (करस्थं) हाथ रक्खे हुए (कवलं) ग्रासको (मुदा) हर्षसे (अस्मै) इसे (वितीर्णवान् देदिया ॥ २२ ॥

वर्णिनो जठरं पूर्णं तदास्वादनतः क्षणात् ।
आशाब्धिरिव नैराश्यादहो पुण्यस्य वैभवम् ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—जैसे (नैराश्यात्) निराश पनेसे (आशाब्धि-रिव) आशा रूपी समुद्र पूर्ण हो जाता है उसी तरह (वर्णिनः जठरं) उस तपस्वीका उदर (तदास्वादनतः) उसके स्वाद मात्रसे (क्षणात् पूर्ण अभूत) क्षण मात्रमें पूर्ण हो गया (अहो) अहो (पुण्यस्य वैभवम्) पुण्यकी बड़ी सामर्थ्य है ॥२२॥

परिव्राडपि संप्राप्य सौहित्यं तत्क्षणे चिरात् ।
महोपकारिणोऽस्याहं किं करोमीत्यचिन्तयत् ॥२३॥

अन्वयार्थः—(परिव्राडपि) तपस्वीने भी (तत्क्षणे) उसी समय (चिरात्) बहुत कालके पश्चात् (सौहित्यं संप्राप्य) रोगनि-वृति (स्वास्थता) को प्राप्त करके (अस्य महोपकारिणः) इस महोपकारीका (अहं) मैं (किं करोमि) क्या उपकार करूं (इति अचिन्तयत्) ऐसा विचार किया ॥ २३ ॥

अपश्चिमफलां विद्यां निश्चित्यात्र प्रतिक्रियाम् ।
आयुष्मन्तमसौ पश्चाद्विपश्चितमकल्पयत् ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(पश्चाद् असौ) फिर इसने (अपश्चिम फलां विद्या) उत्कृष्ट फलवाली विद्याको (अस्य प्रतिक्रियाम्) इसका प्रत्युकार (निश्चित्य) निश्चय करके (आयुष्यन्तं) चिरंजीवी जीवन्धरको (विपश्चितं अकल्पयत्) विद्वान बना दिया ॥ २४ ॥

विद्या हि विद्यमानेयं वितीर्णापि प्रकृष्यते ।
नाकृष्यते च चोराद्यैः पुष्यत्येव मनीषितम् ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चयसे (विद्यमान भी (इयं विद्या) यह विद्या (वितीर्णापि) दुसरेके लिये दी हुई भी (प्रकृष्यते) वृद्धिको प्राप्त होती है और यह (चौराद्यैः) चोरोंसे (न आकृष्यते) नहीं चुराई जा सकतीं प्रत्युत (मनीषितं) इच्छित कार्यको (पुष्यति एव) पुष्ट करती है ॥ २५ ॥

वैदुष्येण हि वंश्यत्वं वैभवं सदुपास्यता ।
सदस्यतालमुक्तेन विद्वान्सर्वत्र पूज्यते ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (वैदुष्येण) पाण्डित्य वाविद्यासे (वंश्यत्वं) कुलीनता, (वैभवं) प्रभुत्व, (सदुपास्यता) सज्जन पुरुषोंसे पूज्यपना और (सदस्यता) सज्जनता होती है (उक्तेन अलं) बहुत कहनेसे क्या (विद्वान् सर्वत्र पूज्यते) बुद्धिमान पुरुष सब जगह पूजा जाता है ॥ २६ ॥

वैपश्चित्यं हि जीवानामाजीवितमनिन्दितम् ।
अपवर्गेऽपि मार्गोऽयमदः क्षीरमिवौषधम् ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (जीवानां) मनुष्योंका (वैपश्चित्यं) पाण्डित्य (आजीवतम्) जीवनपर्यन्त (अनिन्दितम्) प्रशंसनीय है और (अयं) यह (अपवर्गे अपि मार्गः) मोक्षका भी मार्ग है ? (अद: क्षीरं औषधं इव) जैसे दूध शरीर पुष्ट करने वाला होता हुआ भी औषधी है ॥ २७ ॥

इत्युदन्तं गुरोः श्रुत्वा शिष्यो नोत्तरमूचिवान् ।
स्ववाचा किंतु वक्त्रेण शैष्योपाध्यायिका हि सा २८

अन्वयार्थ.—(शिष्यः) शिष्यने (इति गुरोः उदन्तं) इस प्रकार गुरूके वृतान्तको (श्रुत्वा) सुनकरके (स्वः वाचा नोत्तरं ऊचिवान्) उसने अपनी वाणीसे उत्तर नहीं दिया किंतु (वक्त्रेण एव) मुखकी चेष्टासे ही (उत्तर ऊचिवान्) उत्तर दिया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (सा एव शैष्योपाध्यायिका) यही शिष्य और गुरुपना है । अर्थात् शिष्ट शिष्य गुरुके समीप वाचालित नहीं होते है ॥ २८ ॥

नोटः-छटवें श्लोकसे लेकर अट्ठाईसवे श्लोक तक गुरूने जीवंधरसे अपना वृत्तान्त कहा ॥ २८ ॥

विज्ञातगुरुशुद्धिः स विशेषात्पिप्रियेतराम् ।
माणिक्यस्य हि लब्धस्य शुद्धेर्मोदो विशेषतः ॥२९॥

अन्वयार्थः—(विज्ञात गुरु शुद्धिः सः) जान ली है गुरुकी शुद्धि जिसने ऐसा यह जीवंधरकुमार (विशेषतः) और अधिक रीतिसे (पिप्रियेतराम्) प्रसन्न हुआ । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (लब्धस्य माणिक्यस्य) प्राप्त हुई मणिके (शुद्धेः) ज्ञानादिके ऊपर

शुद्धि हो जानेसे (विशेषतः) विशेष रीतिसे (मोदो भवति) हर्ष होता है ॥ २९ ॥

रत्नत्रयविशुद्धः सन्पात्रस्नेही परार्थकृत् ।
परिपालितधर्मो हि भवाब्धेस्तारको गुरुः ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (यः रत्नत्रयविशुद्धःसन्) जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्रसे विशुद्ध होता हुआ, (पात्रस्नेही) पात्रमें स्नेह करनेवाला, (परार्थकृत्) परोपकारी, (परिपालित धर्मः) धर्मका पालन करनेवाला और (भवाब्धेः तारकः) संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाला हो (स. गुरु अस्ति) वह गुरु है अथात् ऐसा गुरू होना चाहिये ॥ १० ॥

गुरुभक्तो भवाद्भीतो विनीतो धार्मिकः सुधीः ।
शांतस्वान्तो ह्यतन्द्रालुः शिष्टः शिष्योऽयमिष्यते ३१

अन्वयार्थः—(यः गुरुभक्तः) जो गुरुभक्त, (भवाद् भीत.) ससारसे भयभीत, (विनीतः) विनयी, (धार्मिकः) धर्मात्मा, (सुधीः) उत्तम बुद्धिवाला (शान्तस्वान्तः) हृदयका शान्त, (अतंद्रालुः) आलस्य रहित और (शिष्टः) उत्तम आचरणवाला हो (सोऽयं शिष्यः इष्यते) वह शिष्य माना गया है। अर्थात् शिष्य ऐसा होना चाहिये ॥ ३१ ॥

गुरुभक्तिः सती मुक्त्यै क्षुद्रं किं वा न साधयेत् ।
त्रिलोकीमूल्यरत्नेन दुर्लभः किं तुषोत्कर : ॥३२॥

अन्वयार्थ—जब (सती गुरुभक्तिः समीचीन गुरुकी भक्ति (मुक्त्यै भवति) मुक्तिकी प्राप्तिके लिये होती है ? तो फिर

(क्षुद्रं किं वा न साधयेत्) क्षुद्र किस कार्यको साधन नहीं करैगी? करैगी ही। जैसे (त्रिलोकी मूल्यरत्नेन) तीन लोक है मूल्य जिसका ऐसे रत्नसे (तुषोत्कर) भूसेका ढेर मिलना (किं दुर्लभः) क्या दुर्लभ है? (अपि तु न दुर्लभः) किन्तु दुर्लभ नहीं है ॥२२॥

गुरुद्रुहां गुणः को वा कृतघ्नानां न नश्यति ।
विद्यापि विद्युदाभा स्यादमूलस्य कुतः स्थितिः ॥२३॥

अन्वयार्थ—(गुरुद्रुहां) गुरूसे द्रोह करनेवाले (कृतघ्नानां) कृतघ्नी–उपकारको भूलनेवालोंका (को वा गुणः) कौनसा गुण (न नश्यति नष्ट नहीं होता है? अर्थात् (सर्वे गुणः नश्यंते) सर्व गुण नष्ट हो जाते है (तेषां) उन लोगोंकी (विद्या अपि) विद्या भी (विद्युत् आभा स्यात्) विजलीके समान क्षणस्थायी होती है? ठीक है (अमूलस्य स्थितिः कुतः भवति) जडरहितकी स्थिति कैसे हो सकती है? नही हो सकती। अर्थात् विना कारणके कोई वस्तु नहीं ठहर सकती है ॥ २३ ॥

गुरुद्रुहो न हि क्वापि विश्वास्यो विश्वघातिनः ।
अबिभ्यतां गुरुद्रोहादन्यद्रोहात्कुतो भयम् ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (क्वापि) कही पर भी (विश्वघातिनः) सम्पूर्ण जगतके नाश करनेवाले (गुरुद्रुहो) गुरुद्रोहीका (न विश्वास्यः) विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि (गुरुद्रोहात् अबिभ्यतां) गुरुद्रोहसे नही डरनेवाले पुरुषोंको (अन्य द्रोहात्) दूसरोंके साथ द्रोह करनेसे (कुतः भयम्) कैसे भय हो सकता है? अर्थात् नही हो सकता ॥ ३४ ॥

अथ कृत्यविदाचार्यः कृतकृत्यं यथाविधि ।
छात्रं प्रबोधयामास सद्धर्मं गृहमेधिनाम् ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ.—(अथ) इसके अनंतर (कृत्यवित् आचार्य.) कृत्यके जाननेवाले आचार्यने (कृतकृत्य छात्रं) समाप्त हो गये हैं पठनादि कार्य जिनके ऐसे छात्र (जीवधर)को (यथाविधि) विधि पूर्वक (गृहमेधिनाम् सद्धर्मं) गृहस्थोके एक देश विरतिरूपी धर्मका (प्रबोधयामास) ज्ञान कराया ॥ ३५ ॥

पुनश्च राजपुत्रत्वमपि बोधयितुं गुरुः
अनुगृह्याभ्यधात्तस्य तदुदन्तमिदंतया ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ —(पुनश्च गुरु·) फिर गुरूने (अनुगृह्य) अनुग्रह करके (राजपुत्रत्वं बोधयितु अपि) तुम राजाके पुत्र हो ऐसा बोध करानेके लिये ही (तस्य) उस जीवधरका (तदुदन्तं) पूर्वोक्त सारा वृत्तान्त (इदतया अभ्यधात्) इस रीतिसे कहा कि जीवंधरसे इतर कोई पुरुष न जान सके ॥ ३६ ॥

काष्टाङ्गारमसौ ज्ञात्वा राजघं गुरुवाक्यतः ।
सत्यंधरात्मजः क्रोधात्संनाहं तद्वधे व्यधात् ॥३७॥

अन्वयार्थः—(असौ सत्यंधरात्मजः) इस सत्यंधर राजाके कुमार जीवंधरने (गुरुवाक्यतः) गुरूके वचनोंसे (काष्टाङ्गारं) काष्टाङ्गारको (राजघ) राजाका मारनेवाला (ज्ञात्वा) जानकर (तद्वधेः) उसके मारनेके लिये (संनाहं) युद्धकी तैयारी (व्यधात्) की ॥ ३७ ॥

मुहुर्निवार्यमाणोऽपि सूरिणा न शशाम सः ।
हन्तात्मानमपि घ्नन्तः क्रुद्धाः किं किं न कुर्वते ॥३८॥

अन्वयार्थः—(सूरिणा) आचार्यसे (मुहुर्निवार्यमाणः अपि) वारवार रोका हुआ भी (सः न शशाम) वह कुमार शान्त नहीं हुआ । (हन्त) खेद है ! (आत्मानं अपि) अपनी आत्माको भी (घ्नंतः) नाश करते हुये (क्रुद्धाः) क्रोधी पुरुष (किं किं न कुर्वते) क्या क्या कर्म नहीं कर डालते हैं ॥ ३८ ॥

वत्सरं क्षम्यतामेकं वत्सेयं गुरुदक्षिणा ।
गुरुणेति निषिद्धोऽभूत्कोऽनन्धो लङ्घयेद् गुरुम् ॥३९॥

अन्वयार्थः—(हे वत्स) हे बाल ! (एकं वत्सरं) एक वर्ष और (क्षम्यतां) क्षमा करो (इयं गुरु दक्षिणा) यह ही मेरे पढ़ानेकी गुरु दक्षिणा समझो (इति) इस प्रकार (गुरुणा) गुरूसे (निषिद्धः अभूत्) निषेधित होता भया । (कः अनन्धः) कौन सुलोचन (ज्ञानचक्षु) पुरुष (गुरु लङ्घयेत्) गुरुके आदेशको उल्लंघन करता है ॥ ३९ ॥

पश्यन्कोपक्षणे तस्य पारवश्यमसौ गुरुः ।
अशिक्षयत्पुनश्चैनमपथघ्नी हि वाग्गुरोः ॥ ४० ॥

अन्वयार्थः—(पुनश्च असौ गुरुः) फिर इस गुरूने (कोपक्षणे) कोपके समय (तस्य पारवश्यम् पश्यन्) उसकी पराधीनताको देख (एनं) इसे (अशिक्षयत्) शिक्षा दी । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (गुरोःवाक्) गुरुका वचन (अपथघ्नी) खोटे मार्गका नाश करनेवाला होता है ॥ ४० ॥

अवशः किमहो मोहादकुपः पुत्रपुङ्गव ।
सति हेतौ विकारस्य तदभावो हि धीरता ॥४१॥

अन्वयार्थः—(हे पुत्र पुङ्गव) हे श्रेष्ठ पुत्र ! (त्वं) तुम (मोहात्) मोहसे (अवशः) विवश होकर (किं) क्यों (अकुपः) कोप करते हो । (अत्र नीतिः) (हि) निश्चयसे (विकारस्य हेतौ सति) विकारका कारण होने पर (तद् अभावः) विकारका न होना ही (धीरता) धीरता है ॥ ४१ ॥

अपकुर्वति कोपश्चेत्किं न कोपाय कुप्यसि ।
त्रिवर्गस्यापवर्गस्य जीवितस्य च नाशिने ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थः—(चेत्) यदि (अपकुर्वति कोपः) अपकार करनेवालेसे तुम्हारा कोप है तो फिर (त्रिवर्गस्य) धर्म, अर्थ, कामका, (अपवर्गस्य) मोक्षका, और (जीवतस्य) जीवनका (नाशने) नाश करनेवाले (कोपाय) कोपके लिये (कि) क्यों (न कुप्यसि) कोप नहीं करते हो ॥ ४२ ॥

दहेस्त्वमेव रोषाग्निर्नापरं विषयं ततः ।
क्रुध्यन्निक्षिपति स्वाङ्गे वह्निमन्यदिधक्षया ॥४३॥

अन्वयार्थः—(रोषाग्निः) क्रोधरूपी अग्नि (त्वं एव) अपने आप ही को (दहेत्) जलाती है अर्थात् क्रोधीको ही पहले भस्म करती है ! (अपरं विषयं न) दूसरे पदार्थको नहीं । (ततः) इसलिये (क्रुध्यन्) क्रोधी पुरुष (अन्य दिधक्षया) दूसरेको जलानेकी इच्छासे (स्वाङ्गे) पहले अपने शरीरमें ही (वह्नि) अग्निको (निक्षिपति) डालता है ॥ ४३ ॥

हेयोपादेयविज्ञानं नो चेद्व्यर्थः श्रमः श्रुतौ ।
किं व्रीहिखण्डनायासैस्तण्डुलानामसंभवे ॥४४॥

अन्वयार्थः—(चेत्) यदि (हेयोपादेय विज्ञानं नो) हेय वा उपादेयका ज्ञान नहीं है (तर्हि) तो (श्रुतौ) शास्त्रमें (श्रमः) परिश्रम करना (व्यर्थः) व्यर्थ है क्योंकि (तण्डुलानां असभवे) चावलोके नहीं निकलने पर (व्रीहिखण्डनायासैः किं) धान्यके कूटनेसे क्या फायदा ? अर्थात् कुछ भी फायदा नहीं है ॥४४॥

तत्त्वज्ञानं च मोघं स्यात्तद्विरुद्धप्रवर्तिनाम् ।
पाणौ कृतेन दीपेन किं कूपे पततां फलम् ॥४५॥

अन्वयार्थः—(तद्विरुद्धप्रवर्तिनां) शास्त्र वा तत्वज्ञानके विरुद्ध प्रवृत्ति करनेवाले पुरुषोंका (तत्वज्ञान च) तत्वज्ञान भी (मोघं स्यात्) वृथा है ! (कूपे पततां) कूएमें गिरते हुए पुरुषोंको (पाणौ कृतेन दीपेन) हाथमें रक्खे हुये दीपकसे (किं फलं) क्या फल है ? अर्थात् कुछ भी फल नहीं है ॥ ४५ ॥

तत्वज्ञानानुकूलं तदनुष्ठातुं त्वमर्हसि ।
मुषितं धीधनं नस्याद्यथा मोहादिदस्युभिः ॥४६॥

अन्वयार्थः—(तत्तस्मात्) इसलिये (त्वं) तुम (तत्वज्ञानानुकूल) तत्वज्ञानके अनुकूल (अनुष्ठातुं) प्रवृत्ति करनेके लिये (अर्हसि) योग्य हो (यथा) जिससे (मोहादिदस्युभिः) मोहादिक लुटेरोंसे तुम्हारा (धीधनं) बुद्धिरूपी धन (मुषितं न स्यात्) चुराया नहीं जावे ॥ ४६ ॥

स्त्रीमुखेन कृतद्वारान्स्वपथोत्सुकमानसान् ।
दुर्जनाहीञ्जहीहि त्वं ते हि सर्वंकषाः खलाः ॥४७॥

अन्वयार्थः—और (त्वं) तुम (स्त्रीमुखेन कृतद्वारान्) स्त्रियोंके जरियोंसे किया है प्रवेश जिन्होने और (स्वपथोत्सुक मानसान्) अपने खोटे मार्ग पर चलनेके लिये उत्कंठित है मन जिनका ऐसे (दुर्जनाहीन्) दुर्जन रूपी भयंकर सर्पोको (जहीहि) दूरसे ही छोड दो अर्थात् उनके साथ सम्बन्ध मत कर (हि) निश्चयसे (ते खलाः) वे दुर्जन पुरुष (सर्वंकषा.) सम्पूर्ण पुरुषोंको दुःख देनेवाले होते हैं ॥ ४७ ॥

स्पृष्टानामहिभिर्नश्येद्गात्रं खलजनेन तु ।
वंशवैभववैदुष्यक्षान्तिकीर्त्यादिकं क्षणात् ॥४८॥

अन्वयार्थ·—(अहिभि स्पृष्टाना) सर्पोंसे डसे हुए पुरुषोंका केवल (गात्रं नश्येत्) शरीर ही नष्ट होता है (तु) किन्तु (खलजनेन स्पृष्टानां) दुर्जन पुरुषोंका सम्बन्ध करनेवाले पुरुषोंका (वंशवैभववैदुष्यक्षान्तिकीर्त्यादिकं) कुल, सम्पत्ति, पाण्डित्य, क्षमा और कीर्त्यादिक गुण (क्षणात्) उसी क्षणसे (नश्येत्) नाशको प्राप्त हो जाते है ॥ ४८ ॥

खलः कुर्यात्खलं लोकमन्यमन्यो न कंचन ।
न हि शक्यं पदार्थानां भावनं च विनाशवत् ॥४९॥

अन्वयार्थ.—(खलः) दुर्जन पुरुष (लोकं) लोकको (खलं) दुर्जन (कुर्यात) बना देता है किन्तु (अन्यः) सज्जन पुरुष (कंचन) किसीको भी (अन्य न कुर्यात) सज्जन नही कर सकता । (हि)

निश्चयसे (पदार्थानां) पदार्थोंके विनाशकी तरह उनका [भावनं] पैदा करना (न शक्यं) शक्य नहीं है।

अर्थात्–जिस प्रकार किसी पदार्थका नाश कर देना बिलकुल सरल है उसी प्रकार उसका बनाना अत्यन्त दुःसाध्य है ॥४९॥

सज्जनास्तु सतां पूर्वं समावर्ज्याः प्रयत्नतः ।
किं लोके लोष्टवत्प्राप्यं श्लाघ्यं रत्नमयत्नतः ॥५०॥

अन्वयार्थः—(तु) और (सतां) सज्जन पुरुषोंको (प्रयत्नतः) प्रयत्नसे (पूर्वं) पहले (सज्जनाः समावर्ज्याः) सज्जनोंको पूजना चाहिये। (लोके) लोकमें (किं) क्या (लोष्टवत्) ढेलेके समान (श्लाघ्यं रत्न) प्रशंसनीय रत्न (अयत्नतः) विना प्रयत्नके (प्राप्य) मिल सकता है? अर्थात् नहीं मिल सकता ॥५०॥

जाग्रत्त्वं सौमनस्यं च कुर्यात्सद्वागलं परैः ।
अजलाशयसंभूतममृतं हि सतां वचः ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थः—(सद्वाक्) सज्जन पुरुषोंका वचन (जागृत्व) जागृति (च) और (सौमनस्य) उत्तम सहृदयताको (कुर्यात्) करता है (परैः अलं) बहुत कहनेसे क्या? [हि] निश्चयसे (सतां वच) सज्जन पुरुषोंका वचन (अजलाशय सम्भूतं) अजलाशयसे उत्पन्न हुआ (अमृतं) अमृत है।

अर्थात्–अमृत अजलाशयरूप जड़ समुद्रसे पैदा होता है और वचनामृत अजलाशय (सचेतन) सत्पुरुषोंके मुखसे उत्पन्न होता है अतएव अमृतकी अपेक्षा सज्जन पुरुषोंका वचनामृत सर्वोत्कृष्ट है ॥५१॥

यौवनं सत्त्वमैश्वर्यमेकैकं च विकारकृत् ।
समवायो न किं कुर्यादविकारोऽस्तु तैरपि ॥५२॥

अन्वयार्थः—(यौवनं) युवावस्था (सत्वं) बल वा शरीर सामर्थ्य और (ऐश्वर्यं) ईश्वरता अर्थात् प्रभुपना (एकैकं) पृथक् पृथक् (विकारकृत्) विकार भावोंको करनेवाले है। अर्थात् इनमेसे प्रत्येकके होने पर मनुष्य कुपथमें प्रवृत्त होजाता है तो (समवाय) समुदाय अर्थात् समूह (कि) किस अनर्थक कार्यको (न कुर्यात्) नहीं करेगा ?-करैगा ही (तुतैः अपि) इसलिये इन तीनोंसे भी तुम्हारा चित्त (अविकारः अस्तु) विकार रहित होवै ? ऐसा आशीर्वाद गुरुने जीवंधरको दिया ॥५२॥

न हि विक्रियते चेतः सतां तद्धेतुसंनिधौ ।
किं गोष्पदजलक्षोभी क्षोभयेज्जलधेर्जलम् ॥५३॥

अन्वयार्थ.—(हि) निश्चयसे (सतां चेतः) सज्जन पुरुषोंका चित्त (तद्हेतु संनिधौ) विकारको कारण मिलने पर भी (न विक्रियते) विकारको प्राप्त नहीं होता है। (कि) क्या (गोष्पदजलक्षोभी) गायके खुर प्रमाण जलको मलिन करनेवाला मेंढक [जलधेः] समुद्रके (जलं) जलको (क्षोभयेत) क्षोभित कर सकता है ? कदापि नहीं ॥५३॥

देशकालखलाः किं तैश्चला धीरेव बाधिका ।
अवहितोऽत्र धर्मे स्यादवधानं हि मुक्तये ॥५४॥

अन्वयार्थः—(देशकालखलाः) देश, काल और दुर्जन ये (कि कुर्युः) क्या करेंगे (तैः चला) उनसे चलायमान (धीः एव बाधिका)

बुद्धि ही मनुष्यके चरित्रको बिगाड़ देती है इसलिये इस संसारमें (धर्मे) आत्माके स्वभावमें (अवहितः) स्थिर होना चाहिये (हि) निश्चयसे (अवधानं) अपनी आत्माके स्वभावमें स्थिर रहना (मुक्तये स्यात्) मोक्षकी प्राप्तिके लिये होता है ॥५४॥

शिक्षावचःसहस्रैर्वा क्षीणपुण्येन धर्मधीः ।
पात्रे तु स्फायते तस्मादात्मैव गुरुरात्मनः ॥५५॥

अन्वयार्थः—(क्षीण पुण्ये) क्षीणपुण्य पुरुषमे (शिक्षावचः सहस्रैः) हजार शिक्षा वचनोंसे (धर्म धीः) धर्मबुद्धि (न स्यात्) नहीं होती है (तु) और (पात्रे) उत्तम पात्रमें (स्फायते) विना उपदेशके ही धर्मबुद्धि प्राप्त होजाती है । (तस्मात्) इसलिये (आत्मनः) आत्माका (आत्मा एव) आत्मा ही (गुरुः अस्ति) गुरु है ॥५५॥

न शृण्वन्ति न बुध्यन्ति न प्रयान्ति च सत्पथम् ।
प्रयान्तोऽपि न कार्यान्तं धनान्धा इति चिन्त्यताम् ॥५६॥

अन्वयार्थः—(धनान्धाः) धनसे अन्धे पुरुष (सत्पथम्) आत्माकी उन्नतिके सच्चे मार्गको (न शृण्वन्ति) न तो सुनते हैं (न बुध्यन्ति) न जानते हैं और (न प्रयान्ति) न उसपर चलते हैं । (प्रयान्तः अपि) सत्पथ पर चलने पर भी (कार्यान्तं) कार्यके अन्त तक (कार्यके नतीजे तक) नही पहुंचते हैं (इति) ऐसा धनिक पुरुषोंके विषयमें तुम (चिन्त्यताम्) विचार करो ॥५६॥

इत्याशास्य तमाश्वास्य कृच्छ्रे स तपसे गतः ।
प्राणप्रयाणवेलायां न हि लोके प्रतिक्रिया ॥५७॥

अन्वयार्थः—(इति) इस प्रकार (तं) उस जीवंधरको (आशास्य) उपदेश रूप आशीर्वाद देकर (च) और (आश्वास्य) विश्वास दिलाकर (कृच्छ्रं) खेद है ! (सः) वह जीवंधरके गुरू आर्यनन्दी आचार्य (तपसे) तप करनेके लिये (गतः) चले गये । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अत्र लोके) इस संसारमें (प्राणप्रयाण वेलाया) प्राणोंके निकलनेके समय धर्मको छोडकर दूसरा कोई (प्रतिक्रिया न) उपाय नहीं है ॥ ९७ ॥

प्रव्रज्याथ तपः शक्त्या नित्यमानन्दमव्रजत् ।
निष्प्रत्यूहा हि सामग्री नियतं कार्यकारिणी ॥९८॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनन्तर (प्रव्रज्य) फिर दीक्षा लेकर उन गुरूने (तप शक्त्या) तपश्चरण की सामर्थ्यसे (नित्य आनन्द) शाश्वत आनन्द रूपी मोक्षको (अव्रजत्) प्राप्त किया । अत्र नीति (हि) निश्चयसे (निष्प्रत्यूहा) निर्विघ्न (सामग्री) सामग्री (नियत) नियमसे (कार्यकारिणी) कार्यको सिद्ध करनेवाली होती है ॥ ९८ ॥

तपोवनं गुरौ प्राप्ते शुचं प्रापत्स कौरवः ।
गर्भाधानक्रियामात्रन्यूनौ हि पितरौ गुरुः ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थः—(गुरौ तपोवनं प्राप्ते) गुरूके तपोवनमे चले जानेपर (कौरवः) कुरुवशी उस जीवधरने (शुचप्रापत्) अत्यन्त शोक किया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (गर्भाधान क्रियान्यूनौ) गर्भ धारण क्रियासे रहित [गुरु.] गुरू (पितरौ) माता पिताके समान हैं ॥ ९९ ॥

तत्त्वज्ञानजलेनाथ शोकाग्निं निरवापयत् ।
शैत्ये जाग्रति किं नु स्यादातपार्तिः कदाचन ॥६०॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनन्तर जीवंधरने (तत्वज्ञानजलेन) तत्वज्ञान रूपी जलसे (शोकाग्निं) गुरुवियोगजन्य शोकरूपी अग्निको (निरवापयत्) निवारण किया (शैत्ये जागृति) शीतपनेके जागृत होने पर (ठंड रहने पर) (किं) क्या (आतपार्तिः) गर्मीके आतापका दुःख (कदाचन स्यात्) कभी हो सकता है ? कदापि नहीं ॥ ६० ॥

अथास्मिन्विद्यया कान्त्या विदुषां योषितां हृदि ।
रथे च योग्यया भाति तत्र प्रस्तुतमुच्यते ॥६१॥

अन्वयार्थः—(अथ) गुरुके वियोगके अनन्तर (विद्यया) पाण्डित्यतासे (विदुषां) विद्वानोंके (हृदि) हृदयमें और (कान्त्या) शरीरकी सौन्दर्यतासे (योषितां हृदि) स्त्रियोंके हृदयमें और योग्यतया) शस्त्रसंचालन योग्यतासे (रथे च) रथमें (अस्मिन् भाति) इस जीवंधरको शोभायमान होनेपर (तत्र प्रस्तुतं उच्यने) जो वृत्तान्त हुआ उसे कहते हैं ॥ ६१ ॥

अथैकदा समभ्येत्य राजाङ्गणभुवि स्थिताः ।
गावोऽवस्कन्दिता व्याधैरिति गोपा हि चुक्रुशुः॥६२॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनन्तर (एकदा) एक समय "हमारी (गावः) गायें (व्याधैः अवस्कन्दिता) व्याधोंने वनमें रोकली हैं" (इति) ऐसा (गोपाः) ग्वालिये (राजाङ्गणभुवि स्थिताः) राजद्वारके अङ्गणमें स्थित होकर (चक्रुशुः) चिल्लाये ॥ ६२ ॥

काष्ठाङ्गारोऽपि रुष्टोऽभूत्तदाक्रोशवचःश्रुतेः।
असमानकृतावज्ञा पूज्यानां हि सुदुःसहा ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थः—(काष्टाङ्गारः अपि) काष्टाङ्गार भी (तदाक्रोश-वचःश्रुतेः) उन ग्वालियोंके चिल्लानेको सुनकर (रुष्टः अभूत्) व्याधोंपर रुष्ट हुआ। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (असमान कृता-वज्ञा) छोटे पुरुषोंसे किया हुआ तिरस्कार (पूज्यानां) बडे पुरुषोंके (सुदुःसहा) सहन नहीं होता है ॥ ६३ ॥

पराजेष्ट पुनस्तेन गवार्थं प्रहितं बलम्।
स्वदेशे हि शशप्रायो बलिष्ठः कुञ्जरादपि ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थः—(तेन) उस व्याध सेनाने (गवार्थं प्रहितं बलम्) गौओंको छुडानेके लिये भेजी हुई काष्टाङ्गारकी सेनाको (व्यजेष्ट) जीत लिया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (स्वदेशे) अपने स्थानपर (शशप्रायः जन्तुः) खरगोशके समान भी जन्तु (कुञ्जरात् अपि) हाथीसे भी (बलिष्ठः) बलवान हो जाता है अर्थात् थोडी संख्यावाली व्याध सेनाने बलवान् काष्टाङ्गारकी सेना जीत ली ॥ ६४ ॥

व्यजेष्ट व्याधसेनेति श्रुत्वा घोषोऽपि चुक्षुभे।
न बिभेति कुतो लोक आजीवनपरिक्षये ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थः—(घोषः अपि) घुसयानेके रहनेवाले भी (व्याध सेना व्यजेष्ट) "व्याधोंकी सेना जीती" (इति श्रुत्वा) यह सुनकर (चुक्षुभे) क्षोभित हुये अर्थात् स्वयं लड़नेके लिये उत्तेजित होते भये। सच है इस संसारमें (लोकः) संसारी जीव (आजीवन-परिक्षये) जीविकाके नाश हो जाने पर (कुतो न बिभेति) किससे नहीं डरते हैं ॥ ६५ ॥

नन्दगोपाह्वयः कोऽपि तज्जयार्थं व्यचीचरत् ।
किं स्यात्किंकृत इत्येवं चिन्तयन्ति हि पीडिताः॥६६॥

अन्वयार्थः—(कोऽपि नन्दगोपह्वय) किसी नन्दगोप नामके ग्वालेने (तज्जयार्थं) उस व्याध सेनाके जीतनेके लिये (व्यचीचरत्) विचार किया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (पीड़िताः) दुःखादिकोंसे पीडित पुरुष (कि स्यात्) क्या होगा (कि कृतः) क्या करें (इत्येवं चिन्तयन्ति) इस प्रकार विचार किया करते हैं ॥ ६६ ॥

धनार्जनादपि क्षेमे क्षेमादपि च तत्क्षये ।
उत्तरोत्तरवृद्धा हि पीडा नृणामनन्तशः ॥ ६७ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (धनार्जनात् अपि क्षेमे) धनके कमानेसे भी अधिक उसकी रक्षा करनेमें (क्षेमात् अपि तत्क्षये) और रक्षा करनेसे अधिक उसके नाशमे (नृणाम्) मनुष्योंके (अनन्तशः) अनन्तगुणी (पीडा) पीड़ा (उत्तरोत्तरवृद्धाः) उत्तरोत्तर बढ़ती हुई होती है ॥ ६७ ॥

यथाशक्ति प्रतीकारः करणीयस्तथापि चेत् ।
व्यर्थः किमत्र शोकेन यदशोकः प्रतिक्रिया ॥६८॥

अन्वयार्थः—(तथापि) तौ भी (यथाशक्तिः) शक्त्यनुकूल (प्रतीकारः) उसका उपाय (करणीयः) करना चाहिये (व्यर्थः चेत्) यदि उपाय व्यर्थ हो जाय तो (अत्र शोकेन किं) इसमें शोक करनेसे क्या ? (यत् अशोकः प्रतिक्रिया) क्योंकि दुःखका प्रतिकार अशोक ही माना गया है ॥ ६८ ॥

इत्यूहेन स वीराय विजये हि वनौकसाम् ।
सप्तकल्याणपुत्रीभिर्देया पुत्रीत्यघोषयत् ॥ ६९ ॥

अन्वयार्थः—(इति ऊहेन सः) ऐसा विचारकर उस ग्वालेने (हि) निश्चयसे (वनौकसाम्) व्याधोंको (विजये) जीत लेनेपर (वीराय) जीतनेवाले वीरके लिये (सप्तकल्याणपुत्रीभिः) सात सुवर्णकी पुत्रियोंके साथ (पुत्री देया) पुत्री दूगा (इति अघोषयत्) ऐसी घोषणा कराई ॥ ६९ ॥

सात्यंधरिस्तु तच्छ्रुत्वा तद्घोषणमवारयत् ।
उदात्तानां हि लोकोऽयमखिलो हि कुटुम्बकम् ॥७०॥

अन्वयार्थ —(तु) इसके अनन्तर (सात्यंधरिः) सत्यंधर राजाके कुमारने (तद् घोषण श्रुत्वा) उस घोषणाको सुनकर (तत् अवारयत्) उसका निवारण किया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (उदात्ताना) उदार चरित्रवाले पुरषोका (अय) यह (अखिलः लोकः) सम्पूर्ण ससार (कुटुम्बकम्) कुटुम्बके समान है ॥ ७० ॥

जित्वाथ जीवकस्वामी किरातानाहरत्पशून् ।
तमो ह्यभेद्यं खद्योतैर्भानुना तु विभिद्यते ॥७१॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनन्तर (जीवकस्वामी) जीवंधर स्वामी (किरातान् जित्वा) व्याधोको जीतकर (पशून् आहरत्) पशुओंको ले आये। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (खद्योतैः) पटवीजनेसे (अभेद्यंतम) नहीं नाश होनेवाला अन्धकार (भानुना तु विभिद्यते) सूर्यसे तो नाश ही हो जाता है ॥७१॥

ननन्द नन्दगोपोऽपि गोधनस्योपलम्भतः ।
असुमतामसुभ्योऽपि गरीयो हि भृशं धनम् ॥७२॥

अन्वयार्थः---(नन्दगोपः अपि) नन्दगोप भी (गोधनस्य उपलम्भतः) गौरूपी धनके मिलजानेसे (ननन्द) अत्यन्त हर्षित होता भया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (असुमतां) प्राणियोंके (धनं) धन (असुभ्यः अपि) प्राणोंसे भी (गरीयः) प्यारा होता है॥७२॥

अथानीय सुतां दातुं स्वामिने वार्यपातयत् ।
कृत्याकृत्यविमूढा हि गाढस्नेहान्धजन्तवः ॥ ७३ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनन्तर वह नन्दगोप (सुतां आनीय) पुत्रीको लाकर (स्वामिने दातुं) जीवंधर स्वामीके देनेके लिये (वारि) जल धाराको (अपातयत्) डालताभया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (गाढस्नेहान्धजन्तवः) अत्यंत स्नेहसे अन्धे पुरुष (कृत्याकृत्यविमूढाः) कृत्याकृत्यके विचारमें मूढ (सन्ति) होते हैं ॥

अर्थात्—नन्दगोपने यह नहीं विचारा कि जीवंधर स्वामी मेरी पुत्रीको लेंगे या नहीं क्योंकि क्षत्री राजाओंके यहां यह नियम होता है कि पहले क्षत्रि कन्याके साथ विवाह कर फिर दूसरेकी कन्याके साथ विवाह करते हैं ॥७३॥

जीवंधरस्तु जग्राह वार्धारां तेन पातिताम् ।
पद्मास्यो योग्य इत्युक्त्वा न ह्ययोग्ये स्पृहा सताम्॥७४

अन्वयार्थः—(तु) फिर (जीवंधरः) जीवंधरने (तेन पातितां) उसके द्वारा डाली हुई (वार्धारां) जलकी धाराको (पद्मास्य योग्यः) "पद्मास्य इस कन्याके योग्य है" (इति उक्त्वा) यह कह कर

(जग्राह) गृहण की। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (सतां स्पृहा) सज्जन पुरुषोकी इच्छा (अयोग्ये) अयोग्य पदार्थमें (न भवति) नहीं होती है ॥ ७४ ॥

माम मामेव पद्मास्यं पश्येति पुनरब्रवीत् ।
गात्रमात्रेण भिन्नं हि मित्रत्वं मित्रता भवेत् ॥७५॥

अन्वयार्थः—(हे माम) हे मामा ! (मां एव) मुझको ही (पद्मास्य पश्य) पद्मास्य जानो (इति पुनः अब्रवीत्) ऐसा फिर कहता भया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (गात्र मात्रेण भिन्नं) शरीर मात्रसे भिन्न (मित्रत्वं) मित्रपना (मित्रता भवेत) मित्रता कहलाती है ॥ ७१ ॥

गोदावरीसुतां दत्तां नन्दगोपेन तुष्यता ।
परिणिन्येऽथ गोविन्दां पद्मास्यो वह्निसाक्षिकम् ॥७६

अन्वयार्थ.—(अथ) तदनन्तर (पद्मास्यः) पद्मास्यने (तुष्यता नन्दगोपेन) संतुष्ट नन्दगोपसे (दत्ता) दी हुई (गोदावरीसुतां) गोदावरीकी पुत्री (गोविन्दां) गोविन्दाको (वह्निसाक्षिकम्) अग्निकी साक्षीपूर्वक (परिणिन्ये) स्वीकार की ॥ ७६ ॥

इति श्रीमद्वादीभिसिंह सूरि विरचिते क्षत्राचूणामणौ सान्वयार्थो गोविन्दालम्भो नाम द्वितीयो लम्ब. ॥

अथ तृतीयो लम्बः ॥

अथोपयम्य गोविन्दां पद्मास्ये रमयत्यलम् ।
वीरश्रियं कुमारे च तत्र प्रस्तुतमुच्यते ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनन्तर (गोविन्दां) गोविन्दाको (उपयम्य) विवाह करके (पद्मास्यके) पद्मास्यके (अलं रमयति सति) अत्यन्त रमण करने पर (च) और (वीरश्रियं) वीरलक्ष्मीको (प्राप्य) प्राप्त करके (कुमारे) कुमार जीवंधरके (रमयति) रमण करने पर (तत्र) वहा (यत्) जो (प्रस्तुतं) वृतान्त हुआ (तद् उच्यते) उसको कहते हैं ॥ १ ॥

आसीत्तत्पुरवास्तव्यो वैश्यः श्रीदत्तनामकः ।
वित्तायास्पृहयत्सोऽयं धनाशा कस्य नो भवेत् ॥२॥

अन्वयार्थ —(तत्पुर वास्तव्यः) उस पुरमें रहने वाला (श्री-दत्त नामक) श्रीदत्त नामका (वैश्यः) वैश्य (आसीत्) था(सः अय) उस श्रीदत्तने (वित्ताय) धन कमानेके लिये (अस्पृहत्) वान्छा की। अत्र नीतिः (कस्य) किसके (धनशा) धनकी आशा (नो भवेत्) नहीं होती है सबको धनशा होती है ॥ २ ॥

अर्थार्जननिदानं च तत्फलं चायमौहत ।
निरङ्कुशं हि जीवानामैहिकोपायचिन्तनम् ॥३॥

अन्वयार्थः—फिर (अयं) इसने (अर्थार्जननिदान) धनके कमानेका कारण (च) और (तत्फलं) उसका फल (औहत) विचारा। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (जीवानां) मनुष्योके (ऐहिकोपाय चिन्तनम्) इस लोक सम्बन्धी आजीवकाके उपायका चितवन करना (निरङकुशं) विना उपदेशके ही हो जाता है ॥ ३ ॥

अस्तु पैतृकमस्तोकं वस्तु किं तेन वस्तुना ।
रोचते न हि शौण्डाय परपिण्डाद्दीनता ॥४॥

अन्वयार्थः—(पैतृकं) पिता समंधी अर्थात् पूर्वजोंका उपार्जन किया हुआ (अस्तोकं वस्तु अस्तु) बहुतसा धन रहवे (तेन वस्तुना कि) उस धनसे क्या? अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (शौण्डाय) उद्योगी पुरुषोंके लिये (परपिण्डादि दीनता) दूसरोंके कमाये हुए अन्नादिक पर निर्वाह करना (न रोचते) रुचिकर नहीं होता है ॥ ४ ॥

स्वापतेयमनायं चेत्सव्ययं व्येति भूर्यपि ।
सर्वदा भुज्यमानो हि पर्वतोऽपि परिक्षयी ॥५॥

अन्वयार्थः—(स्वापतेयं) स्वस्वामिक धन (चेत्) यदि (अनाय) आमदनीसे रहित और (सव्ययं) व्यय करके सहित है तो (भर्यपि) बहुत भी (व्येति) समाप्त हो जाता है। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (सर्वदा भुज्यमानः) हमेशा भोगमें आने वाला अर्थात् जिसके पत्थर वगेरेह काममें आते हो ऐसा (पर्वतः अपि) पर्वत भी एक दिन (परिक्षयी) नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥

दारिद्र्यादपरं नास्ति जन्तूनामप्यरुन्तुदम् ।
अत्यक्तं मरणं प्राणैः प्राणिनां हि दरिद्रता ॥६॥

अन्वयार्थः—(जन्तूनां) मनुष्योंको (दारिद्र्यात् अपरं) दरिद्रतासे बढ़कर दूसरा कोई (अरुन्तुदतम्) दुःखको देनेवाला (नास्ति) नहीं है। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (प्राणिनां दरिद्रता) जीवोंके दरिद्रता (प्राणैः अत्यक्तं) प्राणोंके निकलनेके विना (मरणं) मरणके समान है ॥ ६ ॥

रिक्तस्य हि न जागर्ति कीर्तनीयोऽखिलो गुणः ।
हन्त किं तेन विद्यापि विद्यमाना न शोभते ॥७॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (रिक्तस्य) निर्धन पुरुषके (कीर्तिनीयः अखिलः गुणः) जगत्प्रशंसनीय सम्पूर्ण गुण (न जागर्ति) प्रकाशित नहीं होते हैं। (हन्त) खेद है ! (तेन किं) और तो क्या ? (विद्यमाना विद्या अपि) उसकी विद्यमान विद्या भी (न शोभते) शोभित नहीं होती है ॥ ७ ॥

स्यादकिंचित्करः सोऽयमाकिंचन्येन वञ्चितः ।
अलमन्यैः स साकूतं धन्यवक्त्रं च पश्यति ॥८॥

अन्वयार्थः—(सः अयं) वह दरिद्र पुरुष (आकिंचन्येन वञ्चितः) दरिद्रतासे ठगाया हुआ (अकिंचित्करः स्यात्) कुछ नहीं कर सकता (अन्यैः अलं) बहुत कहनेसे क्या ? (सः) वह दरिद्र पुरुष (साकूतं) अभिप्राय करके सहित (धन्यवक्त्रं) धनिक पुरुषोंके मुखकी तरफ (पश्यति) देखता है ॥ ८ ॥

संपल्लाभफलं पुंसां सज्जनानां हि पोषणम् ।
काकार्थफलनिम्बोऽपि श्लाघ्यते न हि चूतवत् ॥९॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (पुंसां) मनुष्योंके (संपल्लाभफलं) धनकी प्राप्तिका फल (सज्जनानां पोषणम्) सज्जन पुरुषोंका पोषण करना ही है। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (काकार्थ फल निम्बः अपि) कौएके लिये ही है फल जिसका ऐसा नीमका वृक्ष भी (चूतवत् न श्लाघ्यते) आम्रके वृक्षकी तरह प्रशंसनीय नहीं होता है ॥ ९ ॥

लोकद्वयहितं चापि सुकरं वस्तु नासताम् ।
लवणाब्धिगतं हि स्यान्नादेयं विफलं जलम् ॥१०॥

अन्वयार्थः—(च) और (लोकद्वयहितं अपि) इस लोक और परलोकमें हितको करनेवाली भी (असताम्) दुर्जन पुरुषोंकी (वस्तु) वस्तु (सुकरं न) सुखके देनेवाली नहीं है। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (नादेयं जलं) नदीका मीठा जल (लवणाब्धि गतं) लवण समुद्रमें गया हुआ (विफलं स्यात्) निरर्थक हो जाता है ॥ १० ॥

इत्यूहान्नावमारुह्य प्रतस्थे स वणिक्पतिः ।
वार्धिमेव धनार्थी किं गाहते पार्थिवानपि ॥११॥

अन्वयार्थः—(इति ऊहात्) ऐसा विचार कर (सः वणिक्पतिः) वैश्योंमें प्रधान उस श्रीदत्तने (नावं आरुह्य) नावमें बैठ कर (प्रतस्थे) प्रस्थान किया अत्र नीति. (धनार्थी किं) धनके इच्छुक क्या (वार्धिमेव) समुद्रको ही (गाहते) अवगाहन करते हैं ?। ऐसा नहीं (किन्तु पार्थिवानपि गाहते) किन्तु पृथ्वीमें रहनेवाले खानि आदिक जो बिल हैं उनको भी अवगाहन करते हैं। पक्षान्तरमें बड़े २ पृथवीके राजाओंको भी प्राप्त होते है ॥ ११ ॥

द्वीपान्तरान्न्यवर्तिष्ट पुष्टः सांयात्रिको धनैः ।
अतर्क्यं खलु जीवानामर्थसंचयकारणम् ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ.—कुछ कालके पश्चात् (धनैः पुष्टः सांयात्रिकः) धनसे पुष्ट वह नौकाका स्वामी श्रीदत्त सेठ (द्वीपान्तरात् न्यवर्तिष्ट) दूसरे द्वीपसे धन कमा कर लौटा। अत्र नीतिः (खलु) निश्चयसे (जीवानां अर्थसंचय कारणम्) मनुष्योंके धन कमानेका कारण (अतर्क्यं) तर्कना रहित है अर्थात् पहलेसे विचार नहीं कर सकता कि हमको अमुक व्यापारमें कितना लाभ होगा ॥ १२ ॥

अवारान्तमथ प्रापत्पारावारस्य नाविकः ।
चुक्षुभे नौरिहासारान्न हि वेद्यो विपत्क्षणः ॥१३॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनन्तर (नाविकः) जब वह नौकाका स्वामी श्रीदत्त सेठ (पारावारस्य) समुद्रके (आवरान्तं) तटके समीप (प्रापत्) पहुँचा (इह) तब यहां आनेपर (आसारात्) जलकी बड़ी भारी लहरसे (नौः चुक्षुभे) नौका क्षोभित हो गई अर्थात् जलके प्रवाहसे डूबने लगी अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (विपत्क्षणः) आने वाला विपत्तिका समय (न वेद्यः) नहीं जाना जा सकता है ॥ १२ ॥

पूर्वमेव तु नौनाशाच्छोकाब्धिं पोतगा गताः ।
काष्टागतस्य दुःखस्य दृष्टान्तं तद्धि नौक्षये ॥१४॥

अन्वयार्थः—(तु-पुनः) फिर (पोतगा) नावके बैठनेवाले मनुष्य (नौः नाशात्) नौकाके नाशसे (पूर्व एव) पहले ही (शोकाब्धिं) शोकरूपी समुद्रको प्राप्त होते भये । अत्र नीति· (हि) निश्चयसे (नौक्षये) नौकाके नाश होने पर (काष्टागतस्य दु खस्य) मानो वह मर्याद रहित दुखका (तत् दृष्टान्तं) वह दृष्टान्त था ॥ १४ ॥

सायान्त्रिकस्तु तत्वज्ञो विकारं नैव जग्मिवान् ।
अज्ञात्प्राज्ञस्य को भेदो हेतोश्चेद्विकृतिर्द्वयोः ॥१५॥

अन्वयार्थः—(तु) परन्तु (तत्वज्ञः) पदार्थके स्वरूपको जाननेवाला (सायान्त्रिक) नौकाका स्वामी श्रीदत्त (विकारं) विकार भावको (नैव जग्मिवान्) प्राप्त नहीं हुवा अर्थात् घबराया नहीं। अत्र नीति· (चेत्) यदि (हेतोः द्वयोः विकृतिः स्यात्) विकार (दु ख) के हेतुसे मूर्ख और विद्वान् इन दोनोंके अन्दर विकार

(शोक) होवे तो (अज्ञात् प्राज्ञस्य कः भेदः) मूर्खसे ज्ञानिमें क्या भेद रहा ? ॥ १५ ॥

भाविन्या विपदो यूयं विपन्नाः किं बुधाः शुचा ।
सर्पशङ्काविभीताः किं सर्पास्ये करदायिनः ॥१६॥

अन्वयार्थः—नौकामें स्थित पुरुषोंको श्रीदत्त सेठने उपदेश दिया (हे बुधाः) हे पण्डितो ! (भाविन्या विपदः) आनेवाली विपत्तिके (शुचा) शोकसे (यूयं कि विपन्ना) तुम लोग क्यों दुखी हो रहे हो (किं) क्या (सर्पशङ्काविभीता.) सर्पके भयसे डरे हुये मनुष्य (सर्पास्ये) सर्पके मुखमें (करदायिनः सन्ति) हाथ देनेवाले होते हैं कदापि नहीं ॥ १६ ॥

विपदस्तु प्रतीकारो निर्भयत्वं न शोकिता ।
तच्च तत्त्वविदामेव तत्त्वज्ञाः स्यात तद्बुधाः ॥१७॥

अन्वयार्थः—(तु) इस लिये (विपदः प्रतीकारः) विपत्तिका प्रतीकार (निर्भयत्वं) निर्भय पना ही है (न शोकिता) शोक करना विपत्तिका प्रतीकार नहीं है (तत् च) और निर्भय पना (तत्व विदां एव) तत्व ज्ञानी पुरुषोंके ही होता है (तत) इस लिये (हे बुधाः) हे पण्डितो ! (यूयं तत्वज्ञा स्यात) तुम लोग तत्वोंके जानने वाले हो ॥ १७ ॥

इत्यप्यबोधयत्सोऽयं वणिक्पोताश्रितान्सुधीः ।
तत्त्वज्ञानं हि जीवानां लोकद्वयसुखावहम् ॥१८॥

अन्वयार्थ.—(सः अयं सुधीः वणिक्) उस इस पण्डित वैश्यने (पोताश्रितान् अपि) नौकामें बैठे हुए पुरुषोंको भी (इति) पूर्वोक्त समझाया । अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (जीवानां) मनुष्योंके

(तत्वज्ञानं) तत्व ज्ञान (लोकद्वयसुखावहम्) इस लोक और परलोकमें सुखका देनेवाला है ॥ १८ ॥

तावता नावि नष्टायां दृष्टोऽभूत्कूपखण्डकः ।
सत्यायुषि हि जायेत प्राणिनां प्राणरक्षणम् ॥१९॥

अन्वयार्थ·—(तावता) उसी समय (नावि नष्टायां) नौकाके नाश होने पर कोई (कूप खण्डकः) लकड़ी विशेष (दृष्टः अभूत्) दिखलाई दी । अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (आयुषि सति) आयुके रहने पर (प्राणिनां) प्राणियोंके (प्राणरक्षणम्) प्राणोंकी रक्षा (जायेत) हो जाती है ॥ १९ ॥

श्रीदत्तस्तु तमारुह्य प्रासदद्द्वीपसंश्रितः ।
राज्यभ्रष्टोऽपि तुष्टः स्याल्लब्धप्राणो हि जन्तुकः ॥२०॥

अन्वयार्थः—(तु) इसके अनन्तर (श्रीदत्तः) श्रीदत्त सेठ (तं आरुह्य) उस लकड़ीके टुकड़े पर चढ़ कर (द्वीपसंश्रितः प्रासदत्) दूसरे द्वीपको प्राप्त होकर प्रसन्न हुआ । अत्रनीति. (हि) निश्चयसे (राज्यभ्रष्टः अपि) राज्य भ्रष्ट होने पर भी (लब्ध प्राणः जन्तुक.) प्राणोंसे बचा हुआ प्राणी (तुष्टः स्यात्) संतुष्ट होता है ।२०।

नष्टशेवधिरप्येष मृष्टमेवमतर्कयत् ।
दुःखार्थोऽपि सुखार्थो हि तत्त्वज्ञानधने सति ॥२१॥

अन्वयार्थः—(नष्टशेवधिः अपि एषः) नाश होगा है उपार्जित धन जिसका ऐसे इस श्रीदत्त सेठने भी (एवं मृष्टं अतर्कयत्) इस प्रकार विचार किया। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (तत्वज्ञान धने सति) तत्वज्ञान रूपी धनके रहने पर (दु.खार्थः अपि) दुखकर पदार्थ भी (सुखार्थः भवति) सुखकर हो जाते हैं ॥ २१ ॥

तृष्णाग्निदह्यमानस्त्वं मूढात्मन्किं नु मुह्यसि ।
लोकद्वयहितध्वंसोर्न हि तृष्णारुषोर्भिदा ॥२२॥

अन्वयार्थः—(हे मूढात्मन्) हे मूढ (आत्मा तृष्णाग्निदह्यमानः त्वं) तृष्णा रूपी अग्निसे जलता हुआ तू (किं नु मुह्यसे) क्यों मोहको प्राप्त होता है (हि) निश्चयसे (लोकद्वय हितध्वंसोः) इसलोक और परलोक संबंधी हितके नाश करनेवाले (तृष्णारुषोः) तृष्णा और क्रोधमें (न भिदा) कुछ भेद नहीं है ॥ २२ ॥

लोकद्वयहितायात्मन्नैराश्यनिरतो भव ।
धर्मसौख्यच्छिदाशा ते तरूच्छेदः फलार्थिनाम् ॥२३॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्) हे आत्मा तू (लोकद्वय हिताय) लोकोंके हितके वास्ते (नैराश्यनिरतः भव) निराशपनेको प्राप्त हो अर्थात् विषयोंमें आशा छोड़ दे क्योंकि (तरुच्छेदः फलार्थिनाम्) फलार्थी पुरुषोंके वृक्षके नाश समान अर्थात् जो फल तो चाहते है और वृक्षको काट रहे हैं उन पुरुषोंके समान (ते आशा) तेरी विषय संबंधी आशा (धर्मसौख्यच्छिद्) धर्म और सुखको नाश करने वाली है ॥ २३ ॥

संसारासारभावोऽयमहो साक्षात्कृतोऽधुना ।
यस्मादन्यदुपक्रान्तमन्यदापतितं पुनः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(अहो) आश्चर्य है ? (अधुना) इस समय (मया) मैंने (अयं संसारासार भावः) इस संसारके असारपनेको (साक्षात्कृत.) प्रत्यक्ष कर लिया (यस्मात्) क्योंकि (अन्यत् उपक्रान्तम्) प्रारंभ कुछ और ही किया था (पुनः अन्यत् आपतितं) परन्तु कुछ और ही हो गया ॥ २४ ॥

अत एव हि योगीन्द्रा अपीन्द्रत्वार्हसंपदम् ।
त्यक्त्वा तपांसि तप्यन्ते मुक्त्यै तेभ्यो नमो नमः॥२५॥

अन्वयार्थः---(अत एव हि) निश्चयसे इस ही लिये (योगीन्द्राः) बड़े योगीश्वर पुरुष (इन्द्रत्वार्हसंपदम्) इन्द्र पदके योग्य संपत्तिको (अपि) भी (त्यक्त्वा) छोड कर (मुक्त्यै तपांसि तप्यन्ते) मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तप करते हैं (तेभ्यः नमो नमः) ऐसे योगीश्वरोंके लिये मेरा बारंबार नमस्कार हो ॥ २५ ॥

इत्यूहोऽपि स दृष्टस्य कस्यचित्स्वार्तिमूचिवान् ।
मध्येमध्ये हि चापल्यमा मोहादपि योगिनाम् ॥२६॥

अन्वयार्थ.—(इति ऊहः अपिसः) इस प्रकार विचार करने पर भी उस वणिकने (दृष्टस्य कस्यचित् अग्रे) देखे हुए किसी पुरुषके अगाडी (स्वार्तिम्) अपनी पीडा (ऊचिवान्) कही। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (योगिना अपि) योगियोंके भी (आमोहात्) मोहनीय कर्मके सद्भाव पर्यन्त (मध्ये मध्ये चापल्यम्) बीच२में चपलता होती है ॥ २६ ॥

यादृच्छिक इवायातस्तत्कृच्छ्रं सोऽपि शुश्रुवान् ।
संसृतौ व्यवहारस्तु न हि मायाविवर्जितः ॥२७॥

अन्वयार्थः—(सः अपि) उस पुरुषने भी (यादृच्छिक आयातः इव) बिना मतलबसे आये हुयेके सदृश (तत्कृच्छ्रं शुश्रुवान्) उसका कष्ट सुना । अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (संसृतौ व्यवहारः संसारके अंदर व्यवहार (मायाविवर्जितः न स्यात्) मायासे रहित नहीं होता है अर्थात् कुछ कपट छल जरूर रहता है ॥ २७ ॥

श्रुत्वा मिषेण केनापि नीत्वा राजतभूधरम् ।
स्वागतेः कारणं सर्वमभाणीत्स वणिक्पतेः ॥२८॥

अन्वयार्थ.— फिर (सः) उसने (श्रुत्वा) सेठके दुखको सुन कर (केनापि मिषेण) किसी उपायसे (राजत भूधरम् नीत्वा) विजयार्ध पर्वत पर ले जाकर (वणिकूपतेः) सेठसे (सर्वं स्वागतेः कारणम्) अपने आनेका सारा कारण कहा ॥ २८ ॥

विजयार्धगिरावस्ति दक्षिणश्रेणिमण्डने ।
गान्धारविषये ख्याता नित्यालोकाह्वया पुरी ॥२९॥

अन्वयार्थ —(विजयार्ध गिरौ) विजयार्ध पर्वत पर (दक्षिण श्रेणि मण्डने) दक्षिण श्रेणीके भूषण स्वरूप (गान्धार विषये) गान्धर देशमें (नित्या लोकाह्वया पुरी अस्ति) नित्यालोका नामकी पुरी है ॥ २९ ॥

गरुडवेगनामास्यां राजा राज्ञी तु धारिणी ।
पुत्री गन्धर्वदत्ताभूदभूत्सापि यवीयसी ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—(अस्यां) इस नगरीमे (गरुड़वेगनाम राजा) गरुड़ वेग नामका राजा राज्य करता है (राज्ञीतु धारिणी) और इसकी धारिणी नामकी रानी है और (गन्धर्वदत्ता पुत्री अभूत्) इन दोनोके गन्धर्व दत्ता नामकी पुत्री है (सा अपि यवीयसी) और वह पुत्री भी अब जवान हो गई है ॥ ३० ॥

वीणाविजयिनो भार्या राजपुर्यामियं भवेत् ।
भूमाविति मुहूर्तज्ञा जन्मलग्ने व्यजीगणन् ॥३१॥

अन्वयार्थः—(मुहूर्तज्ञा.) ज्योतिषियोंने (जन्मलग्ने) गन्धर्व-दत्ताके जन्म लग्नमें (भूमौ) भूमि गोचरियोंकी (राजपुर्यां) राज-

पुरीमें (इयं) यह (वीणा विजयिनः) वीणा बजानेमें विजयी पुरुषकी (भार्या भवेत) स्त्री होगी (इति व्यजीगणत्) इस प्रकार गणना की ॥ ३१ ॥

तदर्थं पार्थिवः सार्धमेकान्ते कान्तया तया ।
मन्त्रयित्वा तदन्ते मामऽमन्दप्रीतिरादिशत् ॥३२॥

अन्वयार्थः—(अमन्दप्रीतिः पार्थिवः) अत्यन्त प्रीति रखने वाले उस राजाने (एकान्ते) एकान्तमें (तया कान्तया) अपनी स्त्री के साथ (तदर्थं) इस कार्यके लिये (मन्त्रयित्वा) सलाह करके (तदन्ते) पश्चात् (माम् आदिशत्) मुझको आज्ञा दी ॥ ३२ ॥

कुलक्रमागता मैत्री श्रीदत्तेनास्ति नस्ततः ।
गत्वा सत्वरमत्रैव सोऽयमानीयतामिति ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थः—(कुलक्रमागता नः मैत्री) कुल परंपरासे आई हुई हमारी मित्रता (श्रीदत्तेन अस्ति) श्रीदत्त सेठके साथ है (ततः) इसलिये (सत्वरं गत्वा) शीघ्र जाकर (सः अयं आनीयतां) उन श्रीदत्त सेठको यहां ही ले आओ (इति आदिशत्) ऐसी आज्ञा दी ॥ ३३ ॥

भवन्तं परतन्त्रोऽहं नौभ्रंशभ्रान्तिमावहन् ।
नाम्ना धरः कृतेर्भूम्ना पुनरानीतवानिति ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थः—(नाम्ना धरः) धर नामका (परतन्त्रः अहं) पराधिन सेवक मैं (कृतेर्भूम्ना) कार्यकी गुरुतासे (अत्यन्त आवश्यक कार्य होनेसे (भवन्तं) आपको (नौभ्रंशभ्रांतिम् आवहन्) नौकाके नाश होनेके भ्रमको करता हुआ (पुनः) पश्चात् (अत्र

आनीतवान्) यहां लाया हूं । (इति श्रीदत्तं अकथयत्) उसने ऐसा श्रीदत्त सेठसे कहा ॥ ३४ ॥

श्रीदत्तोऽपि तदाकर्ण्य तुतोष सुतरामसौ ।
दुःखस्यानन्तरं सौख्यमतिमात्रं हि देहिनाम् ॥३५॥

अन्वयार्थः—(असौ श्रीदत्तः अपि) श्रीदत्त सेठ भी (तद् आकर्ण्य) यह बात सुनकर (सुतरां तुतोष) अत्यंत संतुष्ट हुआ । अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (देहिनाम्) देहधारी जीवोंके (दुःखस्य अनन्तरं) दुःखके अनन्तर (अतिमात्रं सौख्यं भवति) अत्यन्त सुख होता है ॥ ३५ ॥

असुखायत वैश्योऽपि खेचरेन्द्रावलोकनात् ।
मित्रं धात्रीपतिं लोके कोऽपरः पश्यतः सुखी ॥३६॥

अन्वयार्थः—(वैश्यः अपि) श्रीदत्त सेठ भी (खेचरेन्द्रावलोकनात्) विद्याधरोंके स्वामीके दर्शनसे (असुखायत) अत्यंत सुखी हुआ । अत्र नीतिः (लोके) इस संसारमें (मित्रं धात्रीपतिं पश्यतः) मित्र राजाको देखनेवालेसे (अपरः कः सुखी) दूसरा कौन सुखी है अर्थात् कोई नहीं है ।

तात्पर्यः—इस संसारमें मित्रका दर्शन मात्र भी सुखके लिये होता है फिर अगर पृथ्वी पति मित्र मिल जाय तो उसके सुखका कहना ही क्या है ॥ ३६ ॥

नभश्चराधिपः पश्चात्तदायत्तां सुतां व्यधात् ।
प्राणेष्वपि प्रमाणां यत्तद्धि मित्रमितीष्यते ॥३७॥

अन्वयार्थः—(पश्चात्) तत्पश्चात् नभश्चराधिपः) विद्याधरोंके स्वमी गरुड़वेगने (सुतां) अपनी पुत्री (तदायत्तां) उस श्री

दत्त सेठके आधीन (व्यधात्) कर दी अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (यत्) जो (प्राणेषु अपि) प्राणोंमें भी (प्रमाणं) प्रमाण हो अर्थात् मित्रके लिये अपने प्राणोंको भी तुच्छ समझता हो (तद् मित्रं इति इष्यते) वही सच्चा मित्र माना गया है ॥ ३७ ॥

श्रीदत्तं सत्वरं तस्मात्खेचरेशो न्यवर्तयत् ।
अङ्गजायां हि सूत्यायामयोग्यं कालयापनम् ॥३८॥

अन्वयार्थः—(खेचरेश) विद्याधरोंके स्वामी गरुड वेगने (श्रीदत्तं) श्रीदत्त सेठको (तस्मात्) अपने यहांसे (सत्वरं) शीघ्रही (न्यवर्तयत्) लौटा दिया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अङ्गजायां सूत्यां सत्यां) पुत्रीके जवान हो जाने पर (कालयापनम्) विना विवाहके काल विताना (अयोग्यं) सर्वथा अयोग्य है ॥ ३८ ॥

गृहस्थानां हि तद्दौःस्थ्यमतिमात्रमरुन्तुदम् ।
कन्यानामप्रमादेन रक्षणादिसमुद्भवम् ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (गृहस्थानां) गृहस्थोंको (तद्दौःस्थं) वह दुख (अतिमात्रं अरुन्तुदम्) अत्यन्त पीडा देनेवाला है (यत्) जो (कन्यानां) कन्याओंका (अप्रमादेन रक्षणादि समुद्भवम्) प्रमाद रहित रक्षणादिकसे उत्पन्न हो ॥ ३९ ॥

तयामा स्वपुरं प्राप्य श्रीदत्तोऽप्यथ तत्कथाम् ।
पत्न्याः प्रकटयामास स्त्रीणामेव हि दुर्मतिः ॥४०॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (श्रीदत्तः अपि) श्रीदत्तने भी (तया अमा) उस गंधर्वदत्ता पुत्रीके साथ (स्वपुरं प्राप्य) अपने नगरमें आकर (तत्कथां) उसकी सारी कथा (पत्न्याः प्रकटया मास) अपनी स्त्रीसे कह दी । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे

(स्त्रीणां एव दुर्मति) स्त्रियोंकी बुद्धि खोटी होती है—

अर्थात् श्रीदत्त सेठने इसलिये अपनी स्त्रीसे कहा कि स्त्रियोंके दुष्ट स्वभावसे यह मेरी स्त्री यह न समझ ले कि यह इसकी दूसरी पत्नी है॥ ४० ॥

वीणाविजयिनो योग्या भोग्या पुत्री ममेति सः।
कटके घोषयामास राजानुमतिपूर्वकम् ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थः—फिर (सः) उस श्रीदत्त सेठने (राजानुमति पूर्वकम्) राजाकी आज्ञापूर्वक (कटके) राज्यभरमें "(योग्या) सर्वोपमा योग्य (मम पुत्री) मेरी पुत्री (वीणा विजयिन: भोग्या) वीणा बजानेमें जीतनेवालेकी भोग्य है अर्थात् जो वीणा बजानेमे इसे जीत लेगा वही इसका पति होगा" (इति घोषयामास) इस प्रकार घोषणा कराई॥ ४१ ॥

अकुतोभीतिता भूमेर्भूपानामाज्ञयान्यथा।
अस्तामन्यत्सुवृत्तानां वृत्तं च न हि सुस्थितम् ॥४२॥

अन्वयार्थः—क्योंकि (भूपानां आज्ञया) राजाओंकी आज्ञासे (भूमेः) प्रजाके रहनेवाले मनुष्योंको (अकुतोभीतिता) किसीसे भी भय नही होता (अन्यथा) इसके विपरीत अर्थात् राजाकी आज्ञाके विना (अन्यदूरे आस्तां) और तो दूर ही रहे (सुवृत्तानां) सच्चरित्र पुरुषोंका (वृत्तच) सदाचार भी (हि न सुस्थितम) निश्चयसे स्थिर नहीं रह सकता॥ ४२ ॥

वीणामण्डपमासेदुस्तावता धरणीभुजः।
स्त्रीरागेणात्र के नाम जगत्यां न प्रतारिताः ॥४३॥

अन्वयार्थः—(तावता) उसी समय घोषणाके सुनते ही (धरणी भुजः) राजा लोग (वीणा मण्डपं आसेदुः) वीणा मण्डपमें आ पहुंचे अत्रनीतिः? (अत्र जगत्यां) इस संसारमें (के नाम) कौन पुरुष (स्त्री रागेण न प्रतारितः) स्त्रीके प्रेमसे नहीं ठगाये गये हैं। अर्थात् स्त्रीका प्रेम सबको अपने आधीन कर लेता है ॥४३॥

कन्यायाः परिवादिन्यां पराजेषत पार्थिवाः ।
अपुष्कला हि विद्या स्यादवज्ञैकफला क्वचित् ॥४४॥

अन्वयार्थ.—(पार्थिवाः) राजा लोग (कन्यायाः परिवादिन्यां) कन्याकी परिवादिनी नामकी वीणा बजाने पर (पराजेषत) हार गये। अर्थात् उससे बढकर कोई वीणा न बजा सका। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (अपुष्कला विद्या) अपूर्ण विद्या (क्वचित्) कहींपर (अवज्ञा एक फला स्यात्) तिरस्कार ही है मुख्य फल जिसका ऐसी होती है। अर्थात् तिरस्कारके सिवाय उसका दूसरा फल नहीं होता ॥ ४४ ॥

जीवंधर कुमारस्तु घोषवत्यां जिगाय ताम् ।
अनवद्या हि विद्या स्याल्लोकद्वयफलावहा ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थः—(तु जीवंधर कुमारः) किन्तु जीवंधर कुमारने (तां) उस कन्याको (घोषवत्यां) अपनी घोषवती नामकी वीणा बजाने पर (जिगाय) जीत लिया। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (अनवद्या विद्या) निर्दोष पूर्ण विद्या (लोकद्वयफलावहास्यात) इस लोक और परलोकमें उत्तम फल देनेवाली होती है ॥ ४५ ॥

पराजयं जयाच्छ्लाघ्यं मत्वा सापि तमासदत् ।
अन्तिकं कृतपुण्यानां श्रीरन्विष्य हि गच्छति ॥४६॥

अन्वयार्थः—(सापि) कन्या भी (पराजय) हारको (जयात्) जीतसे (श्लाघ्यंमत्वा) उत्तम समझ कर (तं आसदत्) उसके पास आगई। अत्रनीतिः! (हि) निश्चयसे (श्रीः) लक्ष्मी (कृत पुण्यानां अन्तिकं) पूर्व जन्ममें किया है पुण्य जिन्होंने ऐसे पुरुषोके समीपको (अनुविष्यगच्छति) स्वय ढूंढकर चली जाती है ॥४६॥

आमुमोचाथ मोचोरुः स्रजं जीवकवक्षसि।
कुर्वन्तु तप इत्येवं सर्वेभ्यो ब्रुवतीव सा ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनतर (सा मोचोरुः) केलेके समान जंघावली उस गंधर्वदत्ताने " (यूय एवं तप. कुर्वन्तु) तुम लोग भी इस प्रकार तप करो " (इति सर्वेभ्यः ब्रुवतीव) इस प्रकार सबके लिये कहती हुई ही मानो" (जीवक वक्षसि) जीवंधर स्वामीके वक्षस्थलमे (स्रज) पति स्वीकारताकी मालाको (मुमोच) डाल दी ॥४७॥

काष्टाङ्गारस्तु तद्वीक्ष्य क्षितिपान्समधुक्षयत्।
अन्याभ्युदयखिन्नत्वं हि दौर्जन्यलक्षणम् ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थः—(तु काष्टाङ्गारः) इसके पश्चात् काष्टाङ्गारने (तद्वीक्ष्य) यह देखकर (क्षितिपान् समधुक्षयत्) राजा लोगोको लड़नेके लिये भडका दिया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अन्याभ्युदयखिन्नत्व) दूसरेकी तरक्कीमें खेदित होना ही (दौर्जन्य लक्षणम्) दुर्जन पुरुषोंका लक्षण है ॥४८॥

क्रयविक्रययोर्योग्यः कुप्यानां वैश्यसूनुकः।
कथं लभेत स्त्रीरत्नं शस्तं वस्तु हि भूभुजाम् ॥४९॥

अन्वयार्थः—(कुप्यानां) चांदी सोनेसे अन्य पदार्थोंको (क्रय विक्रययोः योग्यः) खरीदने और वेचनेकी योग्यता वाला (वैश्य सूनुकः) वैश्य पुत्र (कथं) कैसे (स्त्रीरत्न लभेत) स्त्रीरूपी रत्नको प्राप्त कर सकता है। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (शस्तं वस्तु) उत्तम पदार्थ (भूभुजां भवति) राजाओके लिये होता है। अर्थात् तुम राजा लोगोंके उपस्थित रहते हुये यह स्त्रीरत्न इसको नहीं मिलना चाहिये ॥ ४९ ॥

इति संधुक्षिताश्चक्रुः स्वामिना तेऽपि संयुगम् ।
प्रकृत्या स्यादकृत्ये धीर्दुःशिक्षायां तु किं पुनः ॥५०॥

अन्वयार्थः—(इति संधुक्षिताः) इस प्रकार भड़काये हुये (ते अपि) उन राजा लोगोंने भी (स्वामिना) जीवंधर स्वामीके साथ (संयुगम् चक्रु) संग्राम किया। अत्र नीति (प्रकृत्याधीः अकृत्ये स्यात्) स्वभावसे बुद्धि खोटे कार्यमें प्रवृत्त हो जाती है (दुःशिक्षायां तु किं पुनः वक्तव्यम्) खोटी शिक्षा मिलने पर तो फिर कहना ही क्या है ॥५०॥

पराजेषत भूपास्ते धन्विनां चक्रवर्तिनः ।
अलं काकसहस्रेभ्य एकैव हि दृषद्भवेत् ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थः—(ते भूपाः) वे राजा लोग (धन्विनां चक्रवर्तिनः) धनुष धारियोंके चक्रवर्ती जीवधरसे (पराजेषत) हार गये। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (काक सहस्रेभ्यः) हजार कौओंके उड़ानेके लिये (एका एव) एक ही (दृषद्) पत्थर (अलं भवेत्) समर्थ होता है ॥५१॥

स्थाने कन्यामनः सक्तमित्यूचुः सज्जना मुदा।
सुधासूतेः सुधोत्पत्तिरपि लोके किमद्भुतम् ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थः—(सज्जनाः) सज्जन पुरुषोंने (मुदा) हर्षसे "(कन्या मनः स्थाने सक्तं इति ऊचुः) कन्याका मन योग्य पुरुषमें आसक्त हुआ" ऐसा कहा क्योंकि (लोके) लोकमें (सुधोत्पत्तिः अपि) अमृतकी उत्पत्ति (सुधासूतेः) चन्द्रमासे ही (भवति) होती है। (इति किं अद्भुतम्) इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् इस कन्याको ऐसा ही योग्य वर वरना चाहिये था॥ ५२ ॥

अथ गन्धर्वदत्तां तां श्रीदत्तेनाग्निसाक्षिकम्।
दत्तां स जीवकस्वामी पर्यणैष्ट यथाविधि ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (सः जीवक स्वामी) उन जीवंधर स्वामीने (अग्नि साक्षिकम्) अग्निकी साक्षी पूर्वक (श्रीदत्तेन दत्तां) श्रीदत्त सेठसे दी हुई (तां गंधर्वदत्तां) उस गंधर्वदत्ताको (यथाविधि) विधिपूर्वक (पर्यणैष्ट) व्याहा ॥५३॥

इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरि विरचिते क्षत्रचुडामणौ सान्वयार्थो गन्धर्वदत्ता लम्बो नाम तृतीयो लम्बः॥

—»»•««—

ॐ

चतुर्थो लम्बः

अथ जीवंधरस्वामी रेमे रामासमन्वितः ।
संसारेऽपि यथायोग्यद्भोग्यान्ननु सुखी जनः ॥१॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (रामासमन्वितः) अपनी गंधर्वदत्ता नामकी स्त्री सहित (जीवधरः) जीवंधर स्वामीने (रेमे) क्रीडा की । अत्र नीतिः (ननु) निश्चयसे (संसारे अपि) संसारमें भी (जनः) मनुष्य (यथायोग्यात् भोग्यात्) अपनी योग्यताके अनुकूल भोग सामग्री मिलनेसे (सुखी भवति) सुखी होता है ॥ १ ॥

माधवोऽथ जलक्रीडां पौराणामुदपादयत् ।
रागान्धानां वसन्तो हि बन्धुरग्नेरिवानिलः ॥२॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके अनतर (माधवः) वसंतऋतुने (पौराणां) पुरवासियोंके (जलक्रीडां) जलकेद्वारा फाग खेलानेकी क्रीड़ा (उदपादयत्) उत्पन्न की । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (रागान्धाना) अनुरागसे अन्धे पुरुषोंका (बसन्तः) बसत (अग्नेः अनिलः इव) अग्निका पवनकी तरह (बन्धुः) मित्र है ॥ १ ॥

जीवंधरकुमारोऽपि मित्रैर्द्रष्टुमयादमूम् ।
नवापगाजलक्रीडां लोको ह्यभिनवप्रियः ॥३॥

अन्वयार्थः—(जीवंधर कुमारः अपि) जीवंधर कुमार भी (अमूम् नवापगा जलक्रीड़ां) इस नवीन नदीके जलकी क्रीड़ाको

(द्रष्टुं) देखनेके लिये (मित्रैः सह अयात्) अपने मित्रोंके साथ गये। अत्र नीति. (हि) निश्चयसे (लोकः) संसारी लोग (अभिनव प्रियः भवति) हमेशा नवीन वस्तुसे प्रेम करने वाले होते हैं ॥३॥

अवधिषुर्द्विजास्तत्र हविर्दूषितभाषणम्।
क्रूराः किं किं न कुर्वन्ति कर्म धर्मपराङ्मुखाः ॥४॥

अन्वयार्थः—(तत्र) वहां पर (द्विजाः) याज्ञिक ब्राह्मणोंने " (हविर्दूषितभाषणाम्) हव्य सामग्रीको दूषित किया है जिसने ऐसे कुत्तेको " (अवधिषु) जानसे मार डाला। अत्र नीतिः (धर्म पराङ्मुखाः क्रूराः) धर्मसे पराङ्मुख कठोर हृदय वाले मनुष्य (किं किं कर्म न कुर्वन्ति) क्या क्या नीच कर्म नहीं करते हैं अर्थात् वे सब बुरे कर्म कर डालते हैं॥ ४ ॥

निर्निमित्तमपि घ्नन्ति हन्त जन्तूनधार्मिकाः।
किं पुनः कारणाभासे नो चेदत्र निवारकः ॥५॥

अन्वयार्थः—(हन्त) खेद है। (अधार्मिका.) पापी पुरुष (निर्निमित्तं अपि) विना कारणके भी (जन्तून्) जीवोंको (घ्नंति) मार डालते है (कारणाभासे) कारण मिल जाने पर (चेद् अत्र) यदि वहा (निवारकः) कोई निवारण करने वाला (न स्यात्) नहीं हो (कि पुनः वक्तव्यम्) तो फिर कहना क्या है ॥ ५ ॥

तद्व्यथां वीक्षमाणोऽयं कुमारो विषसाद सः।
तद्धि कारुण्यमन्येषां स्वस्येव व्यसने व्यथा ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(तद् व्यथां वीक्षमाणः) उस कुत्तेकी पीड़ाको देखते हुवे (अयं कुमारः) यह जीवंधर कुमार (विषसाद) अत्यंत

खेदको प्राप्त हुवे । अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (अन्येषां व्यसने) दूसरेकी पीड़ामें (स्वस्येव व्यथा) अपने दुःखके समान पीड़ाका अनुभवन करना ही (तत् कारुण्यं) करुणा है ॥ ६ ॥

प्रत्युज्जीवयितुं श्वानं यत्नेनाप्यथ नाशकत् ।
परलोकार्थमस्यायं पञ्चमन्त्रमुपादिशत् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (अयं) यह जीवंधर कुमार (यत्नेन अपि) यत्नसे भी (श्वानं) कुत्तेको (प्रत्युज्जीवयितुं) जिलानेके लिये (न अशकत्) समर्थ नहीं हुवे किन्तु (अस्य परलोकार्थ) इसके परलोकके सुधारके लिये (पञ्च मन्त्रं) पञ्च नमस्कार मंत्रको (उपादिशत्) उपदेश देते भये ॥ ७ ॥

न ह्यकालकृतो यत्नो भूयानपि फलप्रदः ।
निर्वाणपथपान्थानां पाथेयं तद्धि किं परैः ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (अकालकृतः भूयानपि यत्नः) समय निकल जाने पर किया हुआ भी बहुत यत्न (फलप्रदः न) फल देने वाला नहीं है (परैः किं) बहुत कहनेसे क्या (तत्निर्वाणपथपान्थानां) यह मन्त्र मोक्षके मार्ग पर चलने वाले पथिकोंके लिये (पाथेयं) कलेवा है ॥ ८ ॥

अर्थात्—सुख पूर्वक मोक्षको लेजानेवाला यह मन्त्र है॥८॥

यक्षेन्द्रोऽजनि यक्षोऽयमहो मन्त्रस्य शक्तितः ।
कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ.—(अहो) आश्चर्य है ? (अयं यक्षः) यह कुत्ता (मन्त्रस्य) मन्त्रके (शक्तितः) प्रभावसे (यक्षेन्द्रः अजनि) यक्ष जातिके

देवोका स्वामी होता भया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (कालायसं) अत्यन्तकाला लोहा भी (रसयोगतः) रसके संबंधसे (कल्याणं कल्पते) बहु मूल्य औषधिको प्राप्त हो जाता है ॥ ९ ॥

मरणक्षणलब्धेन येन श्वा देवताजनि।
पञ्चमन्त्रपदं जप्यमिदं केन न धीमता ॥ १० ॥

अन्वयार्थ.—(मरणक्षणलब्धेन येन) मरणके समय प्राप्त जिस मन्त्रसे (श्वा) कुत्ता भी (देवता अजनि) देवता हो गया तब (केन धीमता) किस बुद्धिमानसे (इदं पञ्चमन्त्रं) यह पञ्च णमोकार मन्त्र (न जाप्य) नहीं जपने योग्य है ॥ १० ॥

अर्थात्—यह मन्त्र सब बुद्धिमानोंको जपना चाहिये ॥ १० ॥

स कृतज्ञचरो देवः कृतज्ञत्वात्तदागमत्।
अन्तर्मुहूर्ततः पूर्तिर्दिव्याया हि तनोर्भवेत् ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ—(स कृतज्ञचरो देवः) वह कुत्तेका जीव देव (कृतज्ञत्वात्) कृतज्ञताके कारण (तदा) उसी समय जीवधर स्वामीके पास (आगमत्) आया (हि) निश्चयसे (दिव्यायाः तनोः) देवोके शरीरकी (पूर्तिः) पूर्णता (अन्तर्मुहूर्तत भवेत्) अन्तर्मुहूर्तमें हो जाती है ॥ ११ ॥

कुमारममरो दृष्ट्वा हृष्टस्तुष्टाव मृष्टवाक्।
उपकारस्मृतिः कस्य न स्यान्नो चेदचेतनः ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(मृष्टवाक्) शुद्ध वाणी बोलनेवाला और (हृष्टः) आनदसे परिपूर्ण (अमरः) वह यक्षेन्द्र (कुमारं दृष्ट्वा) जीवंधर कुमारको देखकर (तुष्टाव) उनका स्तवन करने लगा। सच है!

(उपकार स्मृतिः) उपकारका स्मरण (कस्य) किसके (नस्यात्) नहीं होता है (चेत्) यदि (सः अचेतनः नस्यात्) वह अचेतन नहीं हो ॥ १२ ॥

व्यस्मेष्ट तेन न स्वामी मनुमाहात्म्यनिर्णयात् ।
मुक्तिप्रदेन मन्त्रेण देवत्वं न हि दुर्लभम् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(स्वामी) जीवंधर स्वामी (मनुमाहात्म्य निर्णयात्) मन्त्रके माहात्म्यके निर्णयसे (तेन न व्यस्मेष्ट) उस देवके द्वारा आश्चर्ययुक्त नहीं हुवे (हि) निश्चयसे (मुक्तिप्रदेन मन्त्रेण) मुक्तिके देनेवाले मन्त्रसे (देवत्व) देव पर्याय मिलना (न दुर्लभम्) कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ १३ ॥

स्मर्तव्योऽस्मि महाभागेत्युक्त्वा देवस्तिरोऽभवत् ।
प्रतिकर्तुं कथं नेच्छेदुपकर्तुः सचेतनः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(हे महाभाग) हे महाभाग ! समय पर (अह) मैं (स्मर्तव्यः अस्मि) स्मरण करने योग्य हूं (इति उक्त्वा) ऐसा कह कर (देवः तिरो अभवत्) देव अन्तर्धान हो गया । अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (सचेतनः) सचेतन प्राणी (उपकर्तुं) अपने उपकार करने वालेका (प्रतिकर्तुं) प्रत्युपकार करनेके लिये (कथ) कैसे (न इच्छेत्) इच्छा नहीं करता है ? करता ही है ॥ १४ ॥

सारमेयचरे देवे तमाश्लिष्य मुहुर्मुहुः ।
आपृच्छ्य च गते तस्मिन्नत्र प्रस्तुतमुच्यते ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(तस्मिन् सारमेयचरे देवे) उस कुत्तेके जीव देवके " (तं) जीवंधरको (आश्लिष्य) आलिंगन करके (च) और

(मुहुः मुहुः आपृच्छ्य) बार बार पूछ कर " (गते) चले जाने पर (अत्र प्रस्तुतं उच्यते) यहां जो वृतान्त हुआ उसे कहते हैं ॥१५॥

चूर्णार्थं सुरमञ्जर्याः स्पर्धाभूद्गुणमालया ।
एकार्थस्पृहया स्पर्धा न वर्धतात्र कस्य वा ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(चूर्णार्थं) चूर्णके लिये (सुरमञ्जर्याः) सुरमञ्जरीकी (स्पर्धा) ईर्षा (गुणमालया अभूत्) गुणमालाके साथ हुई । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अत्र) इस संसारमें (एकार्थस्पृहया) एक ही पदार्थकी इच्छा करनेसे (कस्य) किसके (स्पर्धा न भवेत्) ईर्षा नहीं बढती है । अर्थात्–सबके यही इच्छा होती है कि मैं ही इस पदार्थको लेलू । अथवा मेरी ही वस्तु औरकी वस्तुसे उत्तम हो ॥ १६ ॥

मा भूत्पराजिता स्नाता नादेये वारिणीति वै ।
संगिराते स्म ते सख्यौ मात्सर्यात्किं न नश्यति ॥१७॥

अन्वयार्थः—"(पराजिता) हारी हुई (नादेये वारीणी स्नाता मा भूत्) नदीके जलमें स्नान नहीं करे " (इति) ऐसी (ते सख्यौ) उन दोनों सखियोने (वै संगिराते स्म) प्रतिज्ञा की। अत्र नीत्तिः (मात्सर्यात्कि न नश्यति) द्वेष भावसे क्या नाश नहीं होता है ? अर्थात् सभी कार्य नष्ट हो जाते हैं ॥ १७ ॥

कन्ये प्राहिणुतां पश्चाचेटयौ स्वे निकटे सताम् ।
कुत्सितं कर्म किं किं वा मत्सरिभ्यो न रोचते ॥१८॥

अन्वयार्थः—(पश्चात् कन्ये) फिर दोनों कन्याओंने (स्वे चेटयौ) अपनी दो दासियें (सतां निकटे) चूर्णकी परीक्षा करने

वाले सज्जनं पुरुषोंके समीपमें (प्राहिणुतां) भेजी । अत्र नीतिः निश्चयसे (मत्सरिभ्यः) मत्सर करनेवाले पुरुषोंको (किं किं कुत्सितं कर्म) कौन २ खोटा कर्म (न रोचते) नहीं रुचता है अर्थात् सभी खोटे कर्म रुचते हैं ॥ १८ ॥

अस्थिषातामथागत्य चेट्यौ जीवककोविदे ।
अनवद्या सती विद्या लोके किं न प्रकाशते ॥१९॥

अन्वयार्थः—(अथ) तदनंतर (चेट्यौ) वे दोनों दासियें (जीवककोविदे) बुद्धिमान जीवंधर स्वामीके समीप (आगत्य) आ करके (अस्थिषातां) ठहर गईं । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (लोके) ससारमें (सती अनवद्या विद्या) समीचीन निर्दोष विद्या (किं न प्रकाशते) किस बातको प्रकाशित नहीं करती है । अर्थात् उत्तम विद्यासे इस लोकमे सब बातोंका निर्णय हो जाता है॥१९॥

गुणवद्गुणमालायाश्चूर्णं निर्वर्ण्य सोऽभ्यधात् ।
पाण्डित्यं हि पदार्थानां गुणदोषविनिश्चयः ॥२०॥

अन्वयार्थः—(सः) उस जीवंधरने (गुणमालायाश्चूर्णं) गुणमालाके चूर्णको (निर्वर्ण्य) देखकर (गुणवत्) गुणवान् (अभ्यधात्) बतलाया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (पदार्थानां गुणदोषविनिश्चयः) पदार्थोंके गुण और दोषका निश्चय करना ही (पाण्डित्यं) पाण्डित्य है ॥ २० ॥

चेटी तु सुरमञ्जर्यास्तच्छ्रुत्वा रोषणाब्रवीत् ।
अन्यैरप्युक्तमुक्तं तैः किमध्यैष्ट भवानिति ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(तु) इसके अनंतर (सुरमञ्जर्याः चेटी) सुरमञ्जरीकी दासीने (तद् श्रुत्वा) यह बात सुनकर (रोषणा सती) क्रोधित

होते हुए " (अन्यैः उक्तम् अपि) दूसरोंसे कहा हुआ ही आपने (उक्तम्) कहा (किं) क्या (तैः सार्धं) उनके साथ (भवान् अध्यैष्ट) आपने पढ़ा है" (इति) इस प्रकार (अब्रवीत्) उत्तर दिया। २१॥

चूर्णयोरलिभिः स्वामी गुणदोषावसाधयत् ।
निर्विवादविधिर्नो चेन्नैपुण्यं नाम किं भवेत् ॥२२॥

अन्वयार्थ —फिर (स्वामी) जीवंधर स्वामीने (चूर्णयोः गुणदोषौ) गुणमाला और सुरमञ्जरीके चूर्णोंके गुण और दोषोंका निर्णय (अलिभिः) भ्रमरोंके द्वारा (असाधयत्) सिद्ध किया। अत्र नीतिः (चेत्) यदि (निर्विवादविधिः न स्यात्) विवाद रहित विधि न होवे तो फिर (नैपुण्यं नाम कि भवेत्) चतुराई ही क्या कहलावे ॥ २२ ॥

आकालिकतया दुष्टं चूर्णमन्यदवर्णयत्
न ह्यकालकृतं कर्म कार्यनिष्पादनक्षमम् ॥२३॥

अन्वयार्थः—जीवंधर स्वामीने (अन्यत् चूर्ण) सुरमञ्जरीके चूर्णको (आकालिकतया) असमयमे बनाये जानेसे (दुष्टं) दूषित (अवर्णयत्) बतलाया अर्थात् सुरमञ्जरीका चूर्ण शरदऋतुके समयके अनुकूल था इसलिये उसमें सुगंध न होनेसे उस पर कोई भौंरा नहीं आया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अकालकृतं कर्म) असमयमे किया हुआ उद्योग (कार्यं निष्पादनक्षमम् न भवति) कार्यके निष्पादन करनेमे समर्थ नहीं होता है ॥ २३ ॥

कुमारादथ कुट्टन्यौ नुत्वा नत्वा च निर्गते ।
निर्विवादं वितन्वाना न स्तुत्याः केन भूतले ॥२४॥

अन्वयार्थ—(अथ) इसके अनंतर (कुट्टन्यौ) वे दोनों दासियें जीवंधर कुमारकी (नुत्वा नत्वा च) स्तुति और वंदना करके (कुमारात्) जीवंधर कुमारके पाससे (निर्गते) चली गईं। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (भूतले) पृथ्वी तल पर (निर्विवाद वितन्वाना) विवाद रहित कार्यको निर्णय करनेवाले पुरुष (केन न स्तुत्याः) किस पुरुषसे स्तुति करने योग्य नहीं हैं अर्थात् सब ऐसे पुरुषोंकी पूजा करते है ॥ २४ ॥

तच्चासीत्सुरमञ्जर्या विरागस्यैव कारणम् ।
न ह्यत्र रोचते न्यायमीर्ष्यादूषितचेतसे ॥२५॥

अन्वयार्थः—(तच्च) और यह निर्णय (सुरमञ्जर्याः) सुरमञ्जरीके (वैराग्यस्य एव) वैराग्यका ही (कारण आसीत्) कारण हुआ। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (अत्र) संसारमे (ईर्ष्यादूषित चेतसे) ईर्षासे दूषित चित्तवाले पुरुषके लिये (न्यायं) न्यायकी बात (न रोचते) रुचिकर नहीं होती है ॥ २५ ॥

प्रार्थिताप्यकृतस्नाना सत्वरं सुरमञ्जरी ।
न्यवर्तिष्ट महारोषादीर्ष्या हि स्त्रीसमुद्भवा ॥२६॥

अन्वयार्थः —(प्रार्थिता अपि सुरमञ्जरी) स्नानके लिये प्रार्थित भी सुरमञ्जरी (अकृतस्नाना) स्नान विना किये हुवे ही (महारोषात्) अत्यंत क्रोधसे (सत्वरं) शीघ्र ही (न्यवर्तिष्ट) लौट गई। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (ईर्ष्या) ईर्षा (स्त्री समुद्भवा) स्त्रियोसे ही उत्पन्न हुई है अर्थात् सबसे अधिक ईर्षा भाव स्त्रियोंमें ही रहता है ॥ २६ ॥

जीवकादपरान्नेक्षे पुरुषानिति संविदा।
कन्यागृहमथ प्रापन्न हि भेद्यं मनः स्त्रियाः ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ —(अथ) इसके अनंतर “ (अहं जीवकात् अपरान् पुरुषान्) जीवंधर कुमारके सिवाय दूसरे पुरुषको (न ईक्षे) नहीं देखूंगी ” (इति सविदा) ऐसी प्रतिज्ञा करके (कन्या) वह सुरमञ्जरी (गृहं प्रापत्) अपने घरको चली गई। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (स्त्रिया· मनः) स्त्रीका मन (न भेद्यं) किसीसे भेदा नहीं जा सकता अर्थात् स्त्रीकी हठ प्रसिद्ध है उसकी हठ किसीसे टाली नहीं जा सकती ॥ २७ ॥

सख्या तथैव यातायां गुणमाला शुशोच ताम् ।
न ह्यनिष्टसंयोगवियोगाभमरुन्तुदम् ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ —(सख्यां तथैव यातायां) सखिके वैसे ही चले जानेपर (गुणमाला) गुणमालाने (ता शुशोच) उसके लिये बहुत शोक किया। अत्रानीति (हि) निश्चयसे (अनिष्टेष्ट संयोगवीयोगाभम्) अनिष्ट दुखदाई वस्तुसे संयोग और इष्ट सुखदाई वस्तुसे वियोगके समान (अरुन्तुदम् न) कोई पीडा देनेवाला नही है ॥ २८ ॥

गन्धसिन्धुरतो भीतिरासीदथ पुरौकसाम् ।
विपदोऽपि हि तद्भीतिर्मूढानां हन्त बाधिका ॥२९॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (पुरौकसाम्) राजपुरी नगरीमे रहने वाले मनुष्योंको (गन्धसिन्धुरतः) गंध हस्तीसे (भीतिः आसीत्) भय हुआ अर्थात् काष्टाङ्गारका एक हाथी अपने स्थानसे छूटकर मदोन्मत्तासे मनुष्योंको इधर उधर मारता हुआ

उसी ही वसंतक्रीड़ाके स्थान पर आया । अत्र नीतिः (हन्त) खेद है ! (हि) निश्चयसे (विपदः अपि) विपत्तिसे भी (तद्भीतिः) विपत्तिका जो भय है वह (मूढानां बाधिका) मूर्ख पुरुषोंको अत्यंत बाधा करने वाला होता है ॥ २९ ॥

परिजनस्तु तं पश्यन्गुणमालामथात्यजत् ।
न हि सन्तीह जन्तूनामपाये सति बान्धवा ॥३०॥

अन्वयार्थ.—(तं पश्यन्) हाथीके देखते हुवे (परिजनः) गुणमालाके सबंधी पुरषोंने (गुणमालां अत्यजत्) उस गुणमालाको अकेली छोड दी। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (इह) इस संसारमें (अपाये सति) विपत्ति पड़ने पर (जन्तूनां) मनुष्योंके (बान्धवाः न सन्ति) बन्धु नहीं रहते हैं अर्थात् विपत्ति कालमें सब छोडकर भाग जाते हैं ॥ ३० ॥

कृत्वा तां पृष्ठतो धात्री काचिदस्थाद्दयावहम् ।
हतायां मय्यतः पूर्वं कन्येयं हन्यतामिति ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(काचिद् धात्री) कोई धाय "(पूर्वमयि हतायां सत्यां) पहले मेरे हत जाने पर (अतः इयं कन्या हन्यतां) पश्चाद् इस कन्याको मारना" (इति उक्त्वा) यह कह कर (दयावहम् अस्थात्) दयाभावसे खडी हो गई ॥ ३१ ॥

समदुःखसुखा एव बन्धवो ह्यत्र बान्धवाः ।
दूता एव कृतान्तस्य द्वन्द्वकाले पराङ्मुखाः ॥३२॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (अत्र) इस संसारमें (सम दु:खसुखाः बन्धवः एव) समान हैं दुःख और सुख जिनके ऐसे बन्धू ही (बान्धवाः) मित्र (सन्ति) कहलाते हैं और जो (द्वन्द पराङ्मुखाः) विपत्ति कालमें साथ छोडकर दूर भाग जाते है वे कृतान्तस्य) यमके (दूता एव) दूत ही है ॥ ३२ ॥

स्वामी परिणतं वीक्ष्य करिण त न्यवारयत ।
स्वापदं न हि पश्यन्ति सन्तः पारार्थ्यतत्पराः॥३३॥

अन्वयार्थ —(स्वामी) जीवंधर स्वामीने (परिणतं दांतोंसे प्रहार करते हुए (तं करिण) उस हाथीको (वीक्ष्य) देख कर (न्यवारयत्) हटा दिया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (पारार्थ्य तत्पराः) दूसरे मनुष्योंके उपकार करनेमें तत्पर (सन्तः) सज्जन पुरुष (स्वापदं न पश्यन्ति) अपनी आपत्तिको नहीं देखते हैं ॥३३॥

यत्र क्वापि हि सन्त्येव सन्तः सार्वगुणोदयः ।
क्वचित्किमपि सौजन्यं नो चेल्लोकः कुतो भवेत्॥३४॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (सर्वगुणोदयः) सबके हितके लिये ही है गुणोंकी उत्पत्ति जिनमें ऐसे (सन्तः) सज्जन पुरुष (यत्र क्वापि) जहां कहीं पर (सन्त्येव) विद्यमान ही हैं । (चेत्) यदि (क्वचित्) कहीं पर (किमपि) कुछ भी (सौजन्यं) सुजनता (न स्यात्) न होवे तो फिर (लोकः कुतः भवेत्) संसार ही कैसे चले ॥ ३४ ॥

परिवारोऽप्यथायासीदहंपूर्विकया स्वयम् ।
स्वार्थेष्वदृष्टपूर्वांश्च कल्पयन्त्येव बन्धुताम् ॥३५॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (परिवारः अपि) परिवारके मनुष्य भी (स्वयं) अपने आप ही "(अहं पूर्विकया) मैं इससे पहले आया मै इससे पहले आया" (इति) ऐसा कहते हुए (अयासीत्) आये। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (स्वास्थ्ये) सुखमें (अदृष्टपूर्वाश्च) पूर्वमें नहीं देखे हुये पुरुष भी (बन्धुतां कल्पयन्ति) बन्धुपनेको कल्पना करते हैं ॥ ३५ ॥

अन्योऽन्यदर्शनादासीत्कामः कन्याकुमारयोः ।
दुःखस्यानन्तरं सौख्यं ततो दुःखं हि देहिनाम् ॥३६॥

अन्वयार्थः—(अन्योन्यदर्शनात्) एक दूसरेको परस्पर देखनेसे (कन्याकुमारयो) कन्या और कुमारमें (कामः आसीत्) प्रीति उत्पन्न हुई। अत्र नीति (हि) निश्चयसे (देहिनाम्) मनुष्योंके (दु खस्यानन्तरं सौख्य) दुःखके अनतर सुखे और (ततः दुःखं भवति) सुखके पीछे दुःख होता है ॥ ३६ ॥

अशान्तस्वान्तसंतापा निशान्तं प्राप सा पुनः ।
नो चेद्विवेकनीरौघो रागाग्निः केन शाम्यति ॥३७॥

अन्वयार्थः—(पुन) फिर "(अशान्तस्वान्तसन्तापा) नहीं शान्त हुआ है हृदयका संताप जिसका अर्थात् काम पीडासे संतप्त वह कन्या (निशान्तं प्राप) घरको चली गई। अत्र नीतिः (चेत्) यदि (विवेकनीरौघः न स्यात्) विवेकरूपी जलका प्रवाह नहीं होवे तो फिर (रागाग्निः राग रूपी अग्नि (केन शाम्यति) किससे शान्त हो सकती है ? ३७ ॥

क्रीडाशुकं च प्राहैषीत्सविधे स्वामिनः पुनः ।
योग्यायोग्यविचारोऽयं रागान्धानां कुतो भवेत् ॥३८॥

अन्वयार्थः—(पुनश्च सा) और फिर उसने (स्वामिनः सविधे) जीवंधर स्वामीके समीप (क्रीडाशुकं प्राहैषीत्) अपने क्रीड़ा शुकको अर्थात् पाले हुवे तोतेको भेजा। अत्र नीति (हि) निश्चयसे (रागान्धानां) रागसे अंधे मनुष्योंके (अथ योग्यायोग्य विचारः) योग्य अयोग्यका विचार (कुतः भवेत्) कहांसे हो सकता है॥ ३८॥

चाटु प्रायुङ्क्त कीरोऽपि तं पश्यन्स्वेष्टसिद्धये।
एतादृशेन लिङ्गेन परलोको हि साध्यते॥ ३९॥

अन्वयार्थः—(कीरः अपि) तोता भी (तं पश्यन्) जीवंधर स्वामीको देख कर (स्वेष्ट सिद्धये) अपने कार्यकी सिद्धिके लिये (चाटु) खुशामदी बातें (प्रायुंक्त) करने लगा। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (एतादृशेन लिङ्गेन) ऐसी खुशामदी बातोसे ही (परलोकः साध्यते) दूसरे मनुष्य वशमें किये जाते है॥ ३९॥

विषयेषु समस्तेषु कामं सफलयन्सदा।
गुणमालां जगन्मान्यां जीवयञ्जीवताच्चिरम्॥४०॥

अन्वयार्थ—तोतेने कहा "(समस्तेषु विषयेषु) सम्पूर्ण विषयोमे (सदाकामं सफलयन्) हमेशा अपनी इच्छायें सफलित करते हुए और (जगन्मान्यां) जगतमें माननीय (गुणमालां) गुणमालाको अथवा अपने जगन्मान्य गुण समूहको" (जीवयन्) रक्षा करते हुए (चिरं जीवतात्) चिर काल तक जीते रहो॥ ४०॥

इत्याशिषा कुमारोऽपि तत्संदेशाच्च पिप्रिये।
इष्टस्थाने सती वृष्टिस्तुष्ट्यै हि विशेषतः॥ ४१॥

अन्वयार्थः—(कुमारः अपि) जीवंधर कुमार भी (इति आशिषा) इस प्रकारके आशीर्वादसे और (तत् संदेशात् च) उस-तोतेके सदेशसे (पिप्रिये) अत्यन्त प्रसन्न हुए । अत्र नीतिः) (हि) निश्चयसे (इष्ट स्थाने सती वृष्टिः) इच्छित स्थानमें उत्तम वृष्टि (विशेषतः) अधिकतासे (तुष्टये भवति) प्रसन्नताके लिये होती है ॥ ४१ ॥

प्रतिसन्देशमप्येष कीराय प्रत्यपादयत् ।
प्रेक्षावन्तो वितन्वन्ति न ह्युपेक्षामपेक्षिते ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थः—(एषः) इन जीवंधरकुमारने (कीराय) उस तोतेके लिये (प्रति सदेशं अपि) सदेशका प्रत्युत्तर भी (प्रत्य-पादयत्) दिया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (प्रेक्षावन्त) बुद्धि-मान पुरुष (अपेक्षते वस्तुनि) अपेक्षित वस्तुमे (उपेक्षां न वितन्व-न्ति) उपेक्षा नही करते है ॥ ४२ ॥

अर्थात् जो अपनेको चाहते हैं उसका तिरस्कार नहीं करते हैं ॥ ४२ ॥

मुमुदे गुणमालापि दृष्ट्वा पत्रेण पत्रिणम् ।
स्वस्यैव सफलो यत्नः प्रीतये हि विशेषतः ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ.—(गुणमाला अपि) गुणमाला भी (पत्रिणम्) तोतेको (पत्रेण सह दृष्ट्वा) पत्र सहित देखकर (मुमुदे) अत्य-न्त प्रसन्न हुई अत्र नीति (हि) निश्चयसे (स्वस्य एव यत्न) अपना किया हुआ ही यत्न (सफलः) सफल होने पर (विशेषतः) अधिकतर (प्रीतये भवति) प्रीतिदायक होता है ॥ ४३ ॥

पितरावेतदाकर्ण्य मुमुदातेभृशं पुनः ।
दुर्लभो हि वरो लोके योग्यो भाग्यसमन्वितः॥४४॥

अन्वयार्थ.—(पुनः) फिर (पितरौ) गुणमालाके मातापिता (एतद् आकर्ण्य) यह बात सुनकर (भृश मुमुदाते) अत्यन्त प्रसन्न हुये (अत्र नीतिः) (हि) निश्चयसे (लोके) इस ससारमें (भाग्य समन्वित.) भाग्यवान् (योग्यः वरः) उत्तम वरका मिलना (दुर्लभः) अत्यंत दुर्लभ है ॥ ४४ ॥

अथामुष्यायमाणौ कौचिन्नीतौ गन्धोत्कटान्तिकम् ।
न हि नीचमनोवृत्तिरेकरूपास्थिता भवेत् ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थ·—(अथ) इसके अनन्तर (अमुष्यायमाणौ कौचित्) प्रसिद्ध कोई दो पुरुष (गन्धोत्कटान्तिकं नीतौ) गन्धोत्कटके समीप गये अर्थात् उन्होने जीवधर गुणमालाकी प्रीतिको अनुचित बतला कर चुगली खाई । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (नीच मनोवृत्ति.) नीच मनुष्यके मनकी वृत्ति (एकरूपा) हमेशा एकसी (न स्थिता) स्थित नही रहती है ॥ ४५ ॥

अनुमेने तयोर्वाक्यं श्रुत्वा गन्धोत्कटोऽपि सः ।
अदोषोपहतोऽप्यर्थः परोक्त्या नैव दृष्यते ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ (सः गन्धोत्कट· अपि) उस गन्धोत्कटने भी (तयोर्वाक्यं श्रुत्वा) उन दोनों पुरुषोके वचन सुनकर (अनुमेने) अनुमति दी अर्थात् उलटी जीवधर और गुणमालाकी प्रीतिकी प्रशंसा की । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अदोषोपहतः अपि)

दोष रहित भी (अर्थः) पदार्थ (परोक्त्या) दूसरेके कहनेसे (नैव दूष्यते) दूषित नहीं होता है ॥ ४६ ॥

सुतां विनयमालाया गुणमालां यथाविधि ।
दत्तां कुबेरमित्रेण परिणिन्येऽथ जीवकः ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (जीवकः) जीवंधरकुमारने (कुबेरमित्रेण) कुबेर मित्रसे (दत्तां) दी हुई (विनयमालायाः) विनयमालाकी (सुतां) पुत्री (गुणमालां) गुणमालाको (यथाविधि) विधिपूर्वक (परिणिन्ये) व्याहा ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरि विरचिते क्षत्रचुडामणौ सान्वयार्थो गुणमालालम्भो नाम चतुर्थो लम्बः ।

पञ्चमो लम्बः ।

अथ व्यूढामिमां मेने स कुमारोऽतिदुर्लभाम् ।
प्रयत्नेन हि लब्धं स्यात्प्रायः स्नेहस्य कारणम् ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (सः कुमारः) उस जीवंधर कुमारने (व्यूढां इमां) व्याही हुई इस स्त्रीको (अति दुर्लभाम्) अत्यंत दुर्लभ्य (मेने) जाना। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (प्रयत्नेन लब्धं) प्रयत्नसे प्राप्त की हुई वस्तु (प्राय) प्रायः करके (स्नेहस्य कारणम्) स्नेहका कारण (स्यात्) होती है ॥ १ ॥

नादत्त कवलं दन्ती स्वामिकुण्डलताडितः ।
न हि सोढव्यतां याति तिरश्चां वा तिरस्कृतिः ॥२॥

अन्वयार्थः—(स्वामिकुण्डलताड़ितः) जीवंधर स्वामीके कुण्डलसे ताडित (दन्ती) हस्तीने (कवल) ग्रासको (न आदत्त) नहीं ग्रहण किया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (तिरश्चां वा तिरस्कृतिः) तिर्यचोंके भी तिरस्कार (सोढव्यता) सहनपनेको (न याति) प्राप्त नहीं होता है ॥ २ ॥

काष्ठाङ्गारस्तदाकर्ण्य चुकोप स्वामिने भृशम् ।
सर्पिष्पातेन सप्तार्चिरुदर्चिः सुतरां भवेत् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(काष्टाङ्गारः) काष्टाङ्गारने (तद् आकर्ण्य) इस बातको सुन कर (स्वामिने) जीवंधर स्वामीके लिये (भृशं) अत्यंत (चुकोप) कोप किया। अत्र नीतिः निश्चयसे (सप्तार्चिः)

अग्नि (सर्पिष् पानेन) घीके डालनेसे (सुतरां) स्वतः ही (उदर्चिः भवेत्) ऊंची ज्वाला वाली होती है ॥ ३ ॥

सङ्गादनङ्गमालाया विजयाच्च वनौकसाम् ।
वीणाविजयतश्चास्य कोपाग्निः स्थापितो हृदि ॥४॥

अन्वयार्थः—(अस्य हृदि) इस काष्टाङ्गरके हृदयमें "(अनङ्ग मालाया सङ्गात्) अनङ्गमालाके समागमसे, (बनौकसाम् विजयात) गौओंके पकडनेवाले व्याघोंके जीतनेसे और (वीणा विजयितः) वीणामे विजयी होनेसे (इन तीन कारणोंसे)" (कोपाग्निः) क्रोध रूपी अग्नि (स्थापिता) स्थापित थी ॥ ४ ॥

गुणाधिक्यं च जीवानामाधेरेव हि कारणम् ।
नीचत्वं नाम किं नु स्यादस्ति चेद्गुणरागिता ॥५॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (गुणाधिक्यं च) दूसरोंमें गुणोंकी अधिकता ही (जीवानां) नीच मनुष्योंके (आधेरेव) मानसीक पीड़ाका ही (कारणम्)कारण (भवेत्) होती है। (चेत) यदि (गुणरागिता अस्ति) दूसरेके गुणोंमें प्रीति होवे तो फिर (नीचत्वं नाम) नीचता ही (कि नु स्यात्) क्या रहे ॥ ५ ॥

उपकारोऽपि नीचानामपकाराय कल्पते ।
पन्नगेन पयः पीतं विषस्यैव हि वर्धनम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ.—(नीचानां) नीच पुरुषोंके साथ (उपकारः

नोटः-१—ग्रथकारने " अनङ्गमाला"का इस ग्रथमें वर्णन नहीं किया है किन्तु गद्यचिन्तामणिमें वेश्याकी पुत्री " अनङ्गमाला " ने काष्टाङ्गारका अनादर करके जीवधरके साथ विवाह किया ऐसा लिखा है ॥

अपि:) उपकार करना भी (अपकाराय) अपकारके लिये (कल्पते) होता है (हि) निश्चयसे (पन्नगेन पीतं) सर्पसे पीया हुआ (पयः) दूध (विषस्य एव) विषकी ही (वर्धनम्) वृद्धि करता है ॥६॥

हस्तग्राहं ग्रहीतुं स कुमारं प्राहिणोद्बलम् ।
मूढानां हन्त कोपाग्निरस्थानेऽपि हि वर्धते ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(सः) उस काष्टाङ्गारने (कुमार) जीवंधर कुमारको (हस्तग्राहं ग्रहीतु) हाथ बाधकर पकडकर लानेके लिये (बलं) सेना (प्राहिणोत्) भेजी । अत्र नीतिः (हन्त) खेद है ! (मूढानां) मूर्ख पुरुषोकी (कोपाग्निः) क्रोधरूपी अग्नि (अस्थाने अपि) अयुक्त स्थानमें भी (वर्धते) बढती है ॥ ७ ॥

अर्थात् जहा क्रोध नही करना चाहिये मूर्ख जन वहां भी क्रोध करते है ॥ ७ ॥

कुमारावसथं पश्चात्तत्सैन्यं पर्यवारयत् ।
मृगाः किं नाम कुर्वन्ति मृगेन्द्रं परितः स्थिताः ॥८॥

अन्वयार्थ.—(पश्चात्) इसके अनंतर (तत्सैन्यं) काष्टाङ्गारकी सेनाने (कुमारावसथं) कुमारके रहनेके स्थानको (पर्यवारयत्) चारों तरफसे घेर लिया । अत्र नीति. (मृगेन्द्रं परित स्थिता.) सिंहके चारों ओर घेर कर खड़े हुए (मृगाः) हिरन (कि नाम कुर्वन्ति) सिंहका क्या कर सकते हैं ॥ ८ ॥

प्रारेभे स कुमारोऽपि महर्तुं रोषतश्चमूम् ।
तत्त्वज्ञानजलं नो चेत्क्रोधाग्निः केन शाम्यति ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(सः कुमारः अपि) उस जीवंधरकुमारने भी (रोषतः) क्रोधसे (चमूम्) सेनाको (प्रहर्तुं) मारनेका (प्रारेभे) प्रारंभ किया । अत्र नीतिः (चेत्) यदि तत्वज्ञानजलं) तत्वज्ञान रूपी जल (नो स्यात्) नहीं होवे तो फिर (क्रोधाग्निः) क्रोध रूपी अग्नि (केन शाम्यति) कौन बुझा सकता है ? ॥ ९ ॥

न्यरौत्सीत्तस्य संनाहमथ गन्धोत्कटः शनैः ।
अलङ्घ्यं हि पितुर्वाक्यमपत्यैः पथ्यकाङ्क्षिभिः॥१०

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (गन्धोत्कट) गन्धोत्कट सेठने (तस्य संनाहं) उसकी लड़नेकी तैयारियोंको (शनैः) धीरे २ (न्यरौत्सीत्) रोका । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (पथ्यकाङ्क्षिभिः अपत्यैः) हितकी इच्छा करनेवाले पुत्रादिक संतान (पितुः वाक्य) पिताका बचन (अलङ्घ्यं) उल्लंघन नहीं करते हैं ॥ १० ॥

पश्चाद्बद्धमम‍ुं पश्चादसौ गन्धोत्कटो व्यधात् ।
न हि वारयितु शक्यं पौरुषेण पुराकृतम् ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ.—(पश्चात्) इसके अनंतर (असौ गन्धोत्कट) इस गंधोत्कटने (अमुम्) जीवंधर कुमारको (पश्चात् बद्ध) पीछेकी ओरसे मुश्कें बंधा हुआ (व्यधात्) कर दिया अर्थात्—उसके हाथ पीछे बांध कर सेनाको सोंप दिया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (पुराकृतम्) पूर्वमें किया हुआ दुष्कर्म (पौरुषेण) पुरुषार्थसे (वारयितुं) निवारण (न शक्यं) नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

दृष्ट्वापि तं तथाभूतं हन्तुमाह सः दुर्मतिः ।
सतां हि प्रह्वता शान्त्यै खलानां दर्पकारणम् ॥१२॥

अन्वयार्थः—(सः दुर्मतिः) उस दुष्टबुद्धि काष्टाङ्गारने (तथाभूतं तं) बंधे हुए उस जीवंधरको (दृष्ट्वा) देखकर (हन्तुं) मारनेके लिये सेनाको (आह) आज्ञा दी । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (सतां) सज्जन पुरुषोंके अगाड़ी (प्रह्वता) नम्रता (शान्त्यै) उनको शान्त करनेवाली (भवति) होती है किन्तु (खलानां) दुर्जन पुरुषोंके अगाड़ी नम्रता (दर्पकारणम् स्यात्) अहंकारको बढानेवाली होती है ॥ १२ ॥

काष्टाङ्गारं कुमारोऽयं गुरुवाक्येन नावधीत् ।
न हि प्राणवियोगेऽपि प्राज्ञैर्लङ्घ्यं गुरोर्वचः ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(अयं कुमार.) इस जीवंधरकुमारने (गुरुवाक्येन) अपने गुरुके बचनसे (काष्टाङ्गारं) काष्टाङ्गारको (न अवधीत्) नहीं मारा ।* अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (प्राज्ञैः) बुद्धिमान पुरुष (प्राणवियोगे अपि) प्राणोंका विनाश उपस्थित होने पर भी (गुरोः वचः) गुरुके बचनोंका (न लङ्घ्य) उल्लघन नहीं करते है ॥१३॥

यक्षेण तत्क्षणे स्वामी स्मृतेनादायि कृत्यवित् ।
सचेतनः कथ नु स्यादकुर्वन्प्रत्युपक्रियाम् ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(तत्क्षणे) उसी समय (स्मृतेन यक्षेण) स्मरण किया हुआ यक्षेन्द्र (कृत्यवित् स्वामी) कार्यको जाननेवाले स्वामीको (आदायि) उठालेगया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (प्रत्युपक्रियां अकुर्वन्) उपकारीके प्रत्युपकारको नहीं करनेवाला (कथं नु सचेतनः स्यात्) कैसे सचेतन पुरुष कहला सकता है अर्थात्

* पूर्वमें जीवधरकुमारसे आर्यनन्दी आचार्यने काष्टाङ्गारको न मारनेकी प्रतिज्ञा कराली थी ॥

सच्चेतन आत्माओंको अपने उपकारीका प्रत्युपकार अवश्य ही करना चाहिये ॥ १४ ॥

अतिमात्रशुचा लोकः पुनरेवमचिन्तयत् ।
गुणज्ञो लोक इत्येषा किंवदन्ती हि सूनृतम् ॥१५॥

अन्वयार्थः—(पुनः) फिर (लोकः) प्रजाके लोगोंने (अतिमात्रशुचा) अत्यन्त शोकसे (एवं अचिन्तयत्) इस प्रकार विचार किया ॥ नोटः—(लोकः गुणज्ञः इति) लोग गुणोंके जानने वाले होते हैं ? ॥ (एषा किंवदन्ती) यह किंवदन्ती (लौकिक कहावत) (सूनृतम्) बिलकुल सत्य है ॥ १५ ॥

अतिलोकमिदं शाठ्यं काष्ठाङ्गारस्य दुर्मतेः ।
एतावदेव किं शाठ्यं स्वामिद्रोहादबिभ्यतः ॥१६॥

अन्वयार्थ—(दुर्मतेः) दुष्टबुद्धि (काष्टाङ्गारस्य) काष्टाङ्गारकी (इदं शाठ्यं) यह शठता (अतिलोकं) लोकको भी उल्लंघन कर गई अथवा (स्वामिद्रोहात अविभ्यत.) राज देनेवाले स्वामीके द्रोहसे नहीं डरनेवालेके (एतावदेव शाठ्यं किं) इतनी शठता क्या चीज है ॥ १६ ॥

समवर्त्यपि दुर्वृत्तिरासीदणकभूपवत् ।
न ह्यसारतया हन्त सोऽपि गृह्णाति दुर्जनान् ॥१७॥

अन्वयार्थः—(हन्त) खेद है ! (समवर्ती अपि) सबके साथ एकसा वर्ताव करनेवाला यमराज भी (अणकभूपवत्) दुष्ट राजाके सदृश (दुर्वृत्तिः आसीत्) दुराचारी हो गया । (हि) निश्चयसे (सः अपि) वह भी (असारतया) निःसार समझकर (दुर्जनान् न गृह्णाति) दुर्जनोंको गृहण नहीं करता ॥ १७ ॥

वारि हंस इव क्षीरं सारं गृह्णाति सज्जनः ।
यथाश्रुतं यथारुच्यं शोच्यानां हि कृतिर्मता ॥१८॥

अन्वयार्थः— सज्जनः) सज्जन पुरुष (वारि क्षीरं हंस इव) जलमेसे दूध गृहण करनेवाले हंसके सदृश (सारं) सार वस्तुका (गृह्णाति) गृहण कर लेते हैं । (हि) निश्चयसे (शोच्यानां कृतिः) शोचनीय दुष्ट पुरुषोंके कार्य (यथारुच्यं यथा श्रुतं मता) रुचि और सुननेके अनूकुल हुआ करते हैं ॥ १८ ॥

हेत्वन्तरकृतोपेक्षे गुणदोषप्रवर्तिते ।
स्यातामादानहाने चेत्तद्धि सौजन्यलक्षणम् ॥१९॥

अन्वयार्थ—(चेत्) यदि (हेत्वंतर कृतोपेक्षे) दूसरे हेतु पर अपेक्षा रहित (गुणदोष प्रवर्तिते) केवल गुण और दोषसे प्रवर्तित (आदानहाने स्याताम्) किसी वस्तुका ग्रहण और त्याग होवे तो (हि) निश्चयसे (तत् सौजन्य लक्षणम्) वह ही सुजनताका लक्षण है ॥ १९ ॥

युक्तायुक्तवितर्केऽपि तर्कारूढविधावपि ।
पराङ्मुखात्फलं किं वा वैदुष्याद्वैभवादपि ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(युक्तायुक्त वितर्के अपि योग्य और अयोग्यके विचारकी वितर्कना होनेपर भी (तर्क रूढ विधौ अपि) तर्क सिद्ध उचितकार्य निश्चित हो जा ने पर भी (पराङ्मुखात् वैदुष्यात्) उससे विमुख विद्वत्ता और (वैभवात्अपि) ऐश्वर्य (प्रभुता) पनेसे (किंवा फलं) क्या फल है । अर्थात् युक्त अयुक्त कार्यके निश्चय कर लेने पर भी यदि उसको न करे तो ऐसे पाण्डित्य और ऐश्वर्य होनेसे क्या लाभ ? ॥ २० ॥

इत्यूहादाधिमापन्ने लोके तेऽपि युयुत्सवः ।
सखायः सानुजाः सर्वे पश्चात्तापमुपागमन् ॥ २१॥

अन्वयार्थः—(इति ऊहात्) इस प्रकारके विचारसे (लोके) प्रजाके सारे लोंगोको (आधिम् आपन्ने) मानसीक पीड़ा प्राप्त होनेपर (युयुत्सवः) युद्धकी इच्छा करनेवाले (सानुजाः) छोटे भाई नंदाढ्य सहित (ते सर्वे सखायः) वह संम्पूर्ण जीवंधरके मित्र (जो उनके साथ पूर्वमें पाले गये थे) जीवंधरके वहां न रहनेपर (पश्चात्तापं) पश्चातापको (उपागमत्) करने लगे ॥२१॥

स्मरन्तो मुनिवाक्यस्य सप्राणौ पितरौ स्थितौ ।
वितथे मुनिवाक्येऽपि प्रामाण्यं वचने कुतः ॥२२॥

अन्वयार्थ.—(मुनिवाक्यस्य) मुनिके वाक्योंका (स्मरन्तौ) स्मरण करते हुए (पितरौ) जीवंधरके माता पिता (सुनन्दा और गन्धोत्कट) (सप्राणौ स्थितौ) प्राणों सहित स्थित रहे । निश्चयसे (मुनिवाक्ये अपि) मुनिके वचन भी यदि (वितथे) झूठे होवें तो फिर (वचने) वचनमें (प्रामाण्यं) प्रमाणपना (कुतः) कैसे हो सकता है।२२।

स्वामिनो न विषादो वा प्रसादो वा तदाभवत् ।
किंतु पूर्वकृतं कर्म भोक्तव्यमिति मानसम् ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(तदा) उस समय (स्वामिन.) जीवंधर स्वामीको (विषादः वा प्रसादः) खेद अथवा हर्ष (न अभवत्) कुछ भी नहीं हुआ "(किन्तु) किन्तु (पूर्वकृतंकर्म) पूर्व जन्ममें संचित किया हुआ कर्म (भोक्तव्यं) अवश्य भोगनीय होता है" (इति मानसम्) इस प्रकार उनके मनमें विचार उत्पन्न हुआ ॥ २३ ॥

अथ चन्द्रोदयाह्वानपर्वतस्थं स्वमन्दिरम् ।
यक्षेन्द्रः स्वामिनं नीत्वा कृतवानभिषेचनम् ॥२४॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनतर (यक्षेन्द्रः) उस यक्षेन्द्रने (चन्द्रोदयाह्वान पर्वतस्थं) चन्द्रोदय नामके पर्वत पर स्थित (स्वमन्दिरं) अपने आवास स्थानपर (स्वामिनं नीत्वा) जीवंधर स्वामीको लेजाकर (अभिषेचनम् कृतवान्) उनका अभिषेक किया ॥ २४ ॥

विपच्च संपदे पुण्यात्किमन्यत्तत्र गण्यते ।
भानुर्लोकं तपन्कुर्याद्विकासश्रियमम्बुजे ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(पुण्यात्) पुण्योदयसे (विपच्च) विपत्ति भी (संपदेस्यात्) सपत्तिका कारण हो जाती है (तत्र) वहांपर (अन्यत्किं गण्यते) और तो गणना ही क्या है। निश्चयसे (लोकं तपन् भानु.) संसारको तपायमान करता हुआ सूर्य (अम्बुजे) कमल दलोंमें भी (विकासश्रियं) विकास श्रीको (कुर्यात्) कर देता है ॥ २५ ॥

पयोवाधिपयःपूरैरभिषिच्यायमब्रवीत् ।
पवित्रोऽसि पवित्रं मां श्वानं यत्कृतवानिति ॥२६॥

अन्वयार्थः—(अयं) इस यक्षेन्द्रने (पयोवाधिपयःपूरैः) क्षीर सागरके जलकी धारासे (अभिषिच्य) जीवंधर स्वामीका अभिषेक करके "(त्वं) तुमने (श्वानं मां) कुत्तेके जीव मुझको (पवित्रं) पवित्र (कृतवान्) किया (यत्) इस लिये (त्वं पवित्रः असि) तुम पवित्र हो" (इति अब्रवीत्) इस प्रकार कहा ॥ २६ ॥

कामरूपविधौ गाने विषह्याने च शक्तिमत् ।
यक्षेन्द्रः स्वामिने पश्चान्मन्त्रत्रयमुपादिशत् ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(पश्चात्) इसके अनतर (यक्षेन्द्रः) उस यक्षेन्द्रने (स्वामिने) जीवंधर स्वामीको (कामरूप विधौ) इच्छाके अनुसार रूप बनानेमे, (गाने) गान विद्यामें (च) और (विष ह्याने) सर्पका विप दूर करनेमे (शक्तिमत्) समर्थ ऐसे (मन्त्रत्रय) तीन मंत्रोका (उपादिशत) उपदेश दिया ॥ २७ ॥

एकहायनमात्रेण धुरि राज्ञां प्रवेक्ष्यसि ।
मोक्षस्यैव पवित्र त्वं पश्चादिति च सोऽब्रवीत् ॥२८॥

अन्वयार्थ.—हे पवित्र !) हे पवित्र (त्वं) तुम (एकहा यन मात्रेण) एक वर्षमे (राज्ञा धुरि) राजाओंके अगाडी (प्रवेक्ष्यसि) प्रवेश करोगे । (पश्चात्) फिर कुछ समयके अनंतर (मोक्षस्य एव) मोक्षके ही अधिकारी होगे (इति) इस प्रकार (सः) उस यक्षेन्द्रने (अब्रवीत्) कहा ॥२८ ॥

तथा संभाव्यमानस्य स्वामिनस्तेन सन्ततम् ।
...न्तरदिदृक्षाभूद्भाव्यधीनं हि मानसम् ॥ २९ ॥

...न्वयार्थः—(तथा) सर्व प्रकारसे (तेन) उस यक्षेन्द्रसे ... निरतर (संभाव्यमानस्य) पूज्यवान् (स्वामिनः) जीवंधर (सन्ततम्) ... दिदृक्षा) अन्य देशोंके देखनेकी इच्छा (अभूत्) स्वामीको (देशांत... ...हि) निश्चयसे (भाव्यधीन) होनहारके अनुसार ... विचार हो जाते है ॥ २९ ॥

हुई अत्र नीतिः । (...
ही (मानसं भवति) मन...

...ज्ञात्वा तस्य मनीषिणः ।
...लज्ञा हि निर्जराः ॥३०॥

मनीषितं हितान्वेषी ...
अनुमेने स देवोऽपि त्रिक...

अन्वयार्थः—(हितान्वेषी) हितके चाहनेवाले (सः देव. अपि) उस देवने भी (मनीषिणः तस्य) बुद्धिमान इस जीवधर कुमारके (मनीषितं) इच्छाको (ज्ञात्वा) जान कर (अनुमेने) अनुमति दी। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (निर्जराः) देव (त्रिकालज्ञाः भवंति) तीनों कालकी बातें जाननेवाले होते हैं ॥ ३० ॥

इदं तया यथोदन्तमुपादिश्याथ संमतः।
सुदर्शनेन सोऽयासीद्धितकृत्त्वं हि मित्रता ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनतंर (इदंतया) इस प्रकार (पथोदत उपादिश्य) जानेके मार्गके वृतातके उपदेशको प्राप्त कर (सुदर्शनेन) सुदर्शन यक्षकी (समत.) अनुमति सहित (स) वह जीवधर कुमार वहासे (अयासीत्) चले गये। अत्र नीति. (हि) निश्चयसे (हित कृत्वं) हित करनापना ही (मित्रता भवेत्) मित्रता कहलाती है ॥ ३१ ॥

एकाकी व्यहरत्स्वामी निर्भयोऽयमितस्ततः।
न हि स्ववीर्यगुप्तानां भीतिः केसरिणामिव ॥३२॥

अन्वयार्थ.—(अय स्वामी) इन जीवंधर स्वामीने (निर्भय.) भय रहित (इतस्तत.) इधर उधर (एकाकी) अकेले (व्यहरत्) विहार किया अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (स्ववीर्य गुप्तानां) अपने पराक्रमसे रक्षित पुरुषोंको (केसारिणा इव) सिंहोंकी तरह (भीतिः न भवेत्) भय नहीं होता है ॥ ३२ ॥

एकाकिनोऽपि नोद्वेगो वशिनस्तस्य जातुचित्।
विक्रिया हि विमूढानां संपदापल्लवादपि ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थः—(एकाकिनः) अकेले (वशिनः) जितेन्द्रिय (तस्य) उन जीवंधर स्वामीको (जातुचित्) कभी भी (उद्वेगः) उद्वेग (न अभूत्) नहीं हुआ । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (विमूढानां) अज्ञानी मूर्ख पुरुषोंके ही (संपदापल्लवादपि) संपत्ति आपत्तिके लेश मात्रसे (विक्रिया उत्पद्यते) चित्तमें विकार उत्पन्न हो जाता है ॥ ३३ ॥

अर्थात्—संपत्तिके लेश मात्रसे गर्व और विपत्तिके लेश मात्रसे उदासीनता व ग्लानि हो जाती है किंतु बुद्धिमानोंके चित्तमें ऐसा नहीं होता ॥ ३३ ॥

अरण्ये क्वचिदालोक्य वनदावेन वारितान् ।
दह्यमानानसौ मह्यस्त्रातुमैच्छदनेकपान् ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थः—(क्वचिद् अरण्ये) किसी वनमें (असौमह्यः) इन पूज्य जीवंधरकुमारने (वनदावेन वारितान्) वनकी अग्निसे घिरे हुये और (दह्यमानान्) जलते हुए (अनेकपान्) हाथियोंको (आलोक्य) देखकर (त्रातुं ऐच्छत्) उन्हें बचानेकी ईच्छा की ॥ ३४ ॥

धर्मो नाम कृपामूलः सा तु जीवानुकम्पनम् ।
अशरण्यशरण्यत्वमतो धार्मिकलक्षणम् ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थः—(कृपामूलः धर्मो नाम) दया है मूल (जड़) जिसका वह धर्म है । (सा तु जीवानुकम्पनम्) और जीवोंकी रक्षा करना ही दया कहलाती है । (अतः) इसलिये (अशरण्यशरण्यत्वं) जिसका कोई रक्षक नहीं है उसकी रक्षा करना ही (धार्मिक लक्षणम्) धर्मात्मा पुरुषोंका लक्षण है ॥ ३५ ॥

ववृषुर्वारिदास्तत्र तावतैव सगर्जिताः ।
सुकृतीनामहो वाञ्छा सफलैव हि जायते ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थः—(तत्र) वहां पर (तावता एव) उसी समय (वारिदाः) मेघ (सगर्जिताः सन्तः) गर्जना करते हुए (ववृषुः) बरसे अत्र नीतिः ! (अहो !) आश्चर्य है ! (हि) निश्चयसे (सुकृतीनां) पुण्यवान पुरुषोंकी (वाञ्छा) इच्छा (सफला एव जायते) सफल ही होती है ॥ ३६ ॥

अनेकपानसौ वीक्ष्य रक्षितानतृपत्तराम् ।
स्वयं त्वासीत्समः स्वामी स्वस्य बन्धविमोक्षयोः॥३७॥

अन्वयार्थ.—(असौ) जीवंधर कुमार (रक्षितान्) प्राणोंसे बचे हुए (अनेकपान्) हाथियोंको (वीक्ष्य) देख कर (अतृपत्तराम्) अत्यंत संतुष्ट हुए। किंतु (स्वयं तु) अपने आप तो (स्वामी) जीवंधर स्वामी (स्वस्य बन्धविमोक्षयो) अपने फंस जाने और उससे बच जानेमे (समः) विषाद व हर्ष रहित (आसीत्) थे ॥३७॥

संपदापद्द्वये स्वेषां समभावा हि सज्जनाः ।
परेषां तु प्रसन्नाश्च विपन्नाश्च निसर्गतः ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थ—(हि) निश्चयसे (सज्जनाः) सज्जन पुरुष (स्वेषां संपदापद्द्वये) अपनी सम्पत्ति और विपत्तिमें (समभावाः) मध्यस्थ भाववाले (भवन्ति) होते है। अर्थात् न तो सम्पत्ति मिलने पर हर्ष होता है और न विपत्ति आने पर शोक होता है ॥ (तु) किंतु (परेषां) दूसरोंकी सम्पत्ति और विपत्ति कालमें (निसर्गतः) स्वभावसे ही (प्रसन्नाश्च विपन्नाश्च भवन्ति) वे सुखी और दुखी होते हैं ॥ ३८ ॥

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य तीर्थस्थानान्यपूजयत् ।
सदसत्वं हि वस्तूनां संसर्गादेव दृश्यते ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) तदनंतर (तस्मात्) उस वनसे (विनिर्गत्य) निकल कर (तीर्थस्थानानि अपूजयत्) उन जीवधर स्वामीने तीर्थ स्थानोंकी वंदना की । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (वस्तूनां) पदार्थोंका (सदसत्व) अच्छा व बुरापना (संसर्गात् एव) उनके साथ संबंध होनेसे ही (दृश्यते) देखा जाता है ॥ ३९ ॥

अथ संभावयामास यक्षी सा धर्मरक्षिणी ।
धर्ममूर्तिममुं तत्र सम्यक्कशिपुदानतः ॥ ४० ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (तत्र) वहां पर (धर्मरक्षिणी सा यक्षी) धर्मकी रक्षा करनेवाली प्रसिद्ध यक्षिणीने (अमुं धर्ममूर्ति) इन धर्ममूर्ति जीवंधर कुमारका (कशिपुदानतः) अन्न वस्त्रादिकके देनेसे (सम्यक्) भले प्रकार (संभावयामास) आदर सत्कार किया ॥ ४० ॥

दैवतेनापि पूज्यन्ते धार्मिकाः किं पुनः परैः ।
अतो धर्मरताः सन्तु शर्मणे स्पृहयालवः ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थः—जब (दैवतेन अपि) देवतासे भी (धार्मिका) धार्मिक पुरुष (पूज्यन्ते) पूजित होते हैं और (परैः किं पुनः वक्तव्यः) का तो फिर कहना ही क्या है । (अतः) इस लिये (शर्मणे स्पृहयालवः) सुखकी वान्छा करनेवाले पुरुष (धर्मरताः सन्तु) धर्ममे प्रीति करनेवाले हों ! ॥ ४१ ॥

ततः पल्लवदेशस्थां चन्द्राभाख्यां क्रमात्पुरीम् ।
भेजे शुभनिमित्तेन सनिमित्ता हि भाविनः ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थः—(तत) तदनतर (क्रमात्) क्रमसे (पल्लवदेशस्थां) पल्लवदेशमे स्थित (चन्द्राभाख्या पुरी) चन्द्राभा नामकी पुरीको इन जीवंधर स्वामीने (शुभनिमित्तेन) शुभ निमित्तसे (भेजे) प्राप्त की। अत्र नीति (हि) निश्चयसे (भाविन.) होनेवाली बात (सनिमित्ताः भवन्ति) अवश्य कुछ न कुछ निमित्त वाली होती है ॥ ४२ ॥

राज्ञो धनपतेः पुत्रीमहिदष्टामजीवजत् ।
निर्हेतुकान्यरक्षा हि सतां नैसर्गिको गुणः ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ·—वहा चन्द्रभा नामकी पुरीमे उन जीवंधर कुमारने (अहिदष्टा) सांपसे डसी हुई (राज्ञ· धनपतेः) राजा धनपतिकी (पुत्री) पुत्रीको (अजीवयत्) जीवदान दिया। अत्रनीति· (हि) निश्चयसे (निर्हेतुका) विना प्रयोजनके (अन्यरक्षा) दूसरोंकी रक्षा करना ही (सतां) सज्जन पुरुषोका (नैसर्गिकः गुण) स्वाभाविक गुण है ॥ ४३ ॥

लोकपालस्तदालोक्य तज्ज्येष्ठस्तमपूजयत् ।
प्राणप्रदायिनामन्या न ह्यस्ति प्रत्युपक्रिया ॥ ४४॥

अन्वयार्थ·—(तज्ज्येष्ठः लोकपालः) उस पुत्रीके बडे भाई लोकपालने (तद् आलोक्य) यह देखकर (तं अपूजयत्) स्वामीकी पूजा की अत्रनीति (हि) निश्चयसे (प्राणप्रदायिना) प्राणोंको बचानेवाले पुरुषोका (अन्या प्रत्युपक्रियान) पूजाको छोड़कर दूसरा प्रत्युपकार नहीं है ॥ ४४ ॥

पूज्या अपि स्वयं सन्तः सज्जनानां हि पूजकाः ।
पूज्यत्वं नाम किं नु स्यात्पूज्यपूजाऽव्यतिक्रमे ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (स्वयं पूज्याः अपि) स्वयं पूज्य होते हुए भी (सन्तः) सज्जन पुरुष (सज्जनानां) सज्जन पुरुषोंके (पूजकाः) पूजक (भवन्ति) होते हैं ॥ किन्तु (पूज्यपूजाव्यतिक्रमे) पूज्य पुरुषोंकी पूजाका उल्लंधन करने पर (पूज्यत्वं नाम कि नु स्यात्) उनमें पूज्यपना कैसे रह सकता है ? ॥ ४५ ॥

प्राज्ञेषु प्रह्वतावश्यमात्मवश्योचिता मता ।
प्रह्वतापि धनुष्काणां कार्मुकस्येव कामदा ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थः—(आत्मवश्या) आत्माको वशमें रखनेवाली (प्रह्वता) नम्रता (प्राज्ञेषु) बुद्धिमान पुरुषोंमें (अवश्यं) अवश्य ही (उचिता) उत्तम (मता) मानी गई है । अत्र नीतिः ! निश्चयसे (प्रह्वताअपि) नम्रता भी (धनुष्काणां) धनुष धारियोंके (कार्मुकस्य इव) धनुषकी नम्रताके सदृश (कामदा) इच्छित कार्योको सिद्ध करनेवाली होती है ॥ ४६ ॥

वपुर्वीक्षणमात्रेण निरणाय्यस्य वैभवम् ।
वपुर्वक्ति हि माहात्म्यं दौरात्म्यमपि तद्विदाम् ॥४७॥

अन्वयार्थ.—उस लोकपालने (वपुर्वीक्षणमात्रेण) शरीरके देखने मात्रसे ही (अस्यवैभवम्) इन जीवंधर कुमारके वैभवको (निरणायि) निर्णय किया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (वपुः) शरीर (तद्विदाम्) शरीरके लक्षणोंको जाननेवाले पुरुषोंके अगाड़ी (माहात्म्यं दौरात्म्यं वक्ति) सज्जनता और दुर्जनता कह देता है ॥ ४७ ॥

अर्धराज्यं च कन्यां च पार्थिवः स्वामिने ददौ ।
पात्रतां नीतमात्मानं स्वयं यान्ति हि संपदः ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थः—(पार्थिवः) राजा धनपतिने (स्वामिने) जीवंधर स्वामीके लिये (अर्धराज्यं) आधा राज्य (च) और (कन्या) कन्याको (ददौ) देदी । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (संपदः) संपत्तियें (पात्रतां नीतं) पात्रताको प्राप्त (आत्मानं) आत्माको (स्वयं यान्ति) स्वयं प्राप्त हो जाती है ॥ ४८ ॥

तिलोत्तमासुतां पश्चाल्लोकपालसमर्पिताम् ।
पर्यणैषीत्पवित्रोऽयं पद्माख्यां तां यवीयसीम् ॥४९॥

अन्वयार्थः—(पश्चात्) पश्चात (अयं पवित्रः) इस पवित्र जीवंधर कुमारने (लोकपालसमर्पिताम्) लोकपालसे दी हुई (तिलोत्तमा सुतां) तिलोत्तमाकी पुत्री (यवीयसीं) युवती (तां पद्माख्यां) उस पद्मानामकी कन्याको (पर्यणैषीत्) व्याहा ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्वादीभसिंह सूरि विरचिते क्षत्रचूडामणौ सान्वयार्थो पद्मा लम्भो नाम पञ्चमो लम्बः ॥

ॐ

अथ षष्ठो लम्बः ।

अथोपयम्य पद्मां तां रमयन्नप्ययात्ततः
असक्तो हि सुखं भुङ्क्ते कृतार्थोऽपि जनः कृती ॥१॥

अन्वयार्थ —(अथ) इसके पश्चात् (ता पद्मा) उस पद्मानामकी कन्यासे (उपयम्य) विवाह करके (रमयन् अपि) उसके साथ सुखभोग करते हुए भी जीवंधर स्वामी (ततः अयात्) वहांसे चले गये। अत्रनीतिः (हि) निश्चयसे (कृतार्थः अपि) भोग सामग्रीसे कृतार्थ होने पर भी (कृती जनः) धर्मात्मा पुरुष (असक्तः सन्) आसक्त नही होते हुए अर्थात् (विरक्त हो कर) (सुखं भुङ्क्ते) सुखका भोग करते है ॥ १ ॥

पद्मा तु तद्वियोगेन दुःखसागरसादभूत् ।
तत्वज्ञानविहीनानां दुःखमेव हि शाश्वतम् ॥ २ ॥

अन्वयार्थ —(तु पुनः) फिर (पद्मा) पद्मा (तद्वियोगेन) जीवंधर स्वामीके वियोगसे (दुःखसागरसात अभूत) दुःखसागरमें डूब गई। अत्रनीतिः ! (हि) निश्चयसे (तत्वज्ञानविहीनानां) तत्वज्ञान रहित जीवोंको (शाश्वतम्) निरंतर (दुःखमेव स्यात्) दुःख ही रहता है ॥ २ ॥

लोकपालजनैरयं रोद्धुं शोके गवेषिभिः ।
प्रतिहन्तुं न हि प्राज्ञैः प्रारब्धं पार्यते परैः ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(गवेषिभिः) ढूंढनेवाले (लोकपालजनैः) लोकपालके नौकर चाकर (अयं) इन जीवंधर स्वामीको (रोद्धुं) रोकनेके

लिये (न शेके) समर्थ नहीं हुए । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे प्राज्ञै. प्रारब्ध) बुद्धिमानोंसे आरम्भ किये हुए कार्यमें (परैः प्रति हन्तुं न पार्यते) दूसरे मनुष्य विघ्न डालनेके लिये समर्थ नहीं होते।

अर्थात्—बुद्धिमानोंका कार्य नियमसे परिपूर्ण होता है ॥३॥

सत्वरं गत्वरः स्वामी तीर्थस्थानान्यपूजयत् ।
पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ॥४॥

अन्वयार्थ—(सत्वर) शीघ्र (गत्वर) चलनेवाले (स्वामी) जीवन्धर स्वामीने (तीर्थ स्थानानि) तीर्थ स्थानोंकी (अपूजयत्) पूजा की । अत्र नीति । हि निश्चयसे (स्थानानि अपि) स्थाने भी (सदाश्रयत्) सज्जन महात्मा पुरुषोंके आश्रयसे (पावनानि जायन्ते) पवित्र हो जाते है ॥ ४ ॥

सद्भिरध्युषिता धात्री संपूज्येति किमद्भुतम ।
कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(सद्भिः अध्युषिता) सज्जन महात्मा पुरुषोंसे निवास की गई हुई (धात्री) पृथवी (सपूज्या) पूजनीय हो जाती है (इत्यत्र किमद्भुतम्) इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ (हि) निश्चयसे (कालायस) काला लोहा भी (रसयोगतः) रस प्रक्रियासे (कल्याणं) बहु मूल्य औषधिको (कल्पते) प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥

सदसत्संगमादेव सदसत्वे नृणामपि ।
तस्मात्सत्संगताः सन्तु सन्तो दुर्जनदूरगाः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(सदसत्संगमात् एव) सज्जनो और दुर्जनोके समागम हीसे (नृणाम) मनुष्योके (सदसत्वे) सज्जन और दुर्जनपना (जायेते) उत्पन्न होता है। (तस्मात्) इसलिये (सन्तः) सज्जन पुरुष

(दुर्जनदूरगाः सन्तः) दुर्जनोंसे दूर रहते हुए (सत्संगताः स तु) सज्जनोंसे ही समागम करनेवाले होवें ॥ ६ ॥

याजंयाजमटन्नेव तीर्थस्थानानि जीवकः ।
क्रमेणारण्यमध्यस्थं तापसाश्रममाश्रयत् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(जीवकः) जीवंधर स्वामी (अटन् एव) घूमते फिरते हुए ही (तीर्थस्थानानि) तीर्थ स्थानोंकी (याजयाज) अधिक रीतिसे पूजा कर (क्रमेण क्रमसे (अरण्यमध्यस्थ) वनके मध्यमें स्थित (तापसाश्रमम्) तपस्वियोंके आश्रममे (आश्रयत्) पहुचे ॥ ७ ॥

असत्तपो विलोक्यासीदनुकम्पी तपस्विनाम् ।
निर्व्याजं सानुकम्पा हि सार्वाः सर्वेषु जन्तुषु ॥८॥

अन्वयार्थः—जीवंधर स्वामी (तत्र) वहां पर (तपस्विनाम्) तपस्वियोंके (असत्तपः विलोक्य) झूठे मिथ्या तपको देख करके (अनुकंम्पी आसीत्) दयायुक्त हुए। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (सार्वाः पुरुषाः) सबका हित करनेवाले पुरुष (सर्वेषु जन्तुषु) सम्पूर्ण प्राणियोंपर (निर्व्याजं) निष्कपट (सानुकम्पा भवन्ति) दया करनेवाले होते हैं ॥ ८ ॥

अतत्वज्ञेऽपि तत्वज्ञैर्भवितव्य दयालुभिः ।
कूपे पिपतिषुर्बालो न हि केनाप्युपेक्ष्यते ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(अतत्वज्ञे अपि) तत्व ज्ञानरहित पुरुषों पर भी (तत्वज्ञैः) तत्वके जाननेवाले पुरुषोंको (दयालुभिः) दयावान् (भवितत्वं) होना चाहिये (हि) निश्चयसे (कूपे पिपतिषुः) कुएँमें

गिरनेकी इच्छा करनेवाले (बाल:) बालककी (केनापि) कोई भी (न उपेक्षते) उपेक्षा नहीं करता है ।

अर्थात्—सब कोई उसको गिरनेसे बचा लेते हैं ॥९॥

तानप्यबूबुधत्तत्वं तत्वज्ञः सोऽयमादरात् ।
भव्यो वा स्यान्न वा श्रोता परार्थ्यं हि सतां मनः॥१०॥

अन्वयार्थः—(तत्वज्ञः) तत्वोंके स्वरूपको जाननेवाले (सः अयं) इन जीवंधरस्वामीने (आदरात्) आदर पूर्वक (तान अपि) उन तपस्वियोंको भी (तत्व अबूबुधत्) सत्यार्थ तत्वका बोध कराया । अत्र नीति (हि) निश्चयसे (श्रोता भव्यो वा स्यान् न वा) सुननेवाला भव्य हो अथवा अभव्य हो किंतु (सतां मनः) सज्जन पुरुषोंका मन (परार्थ्यं एव प्रवर्तते) दूसरोंका उपकार करनेकी ओर ही प्रवर्तित होता है ॥ १० ॥

न हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यस्मिन्प्रवचने सति ।
तपध्वं किं बुधा यूयं हिंसामात्रफलं तपः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ.—(हे बुधाः !) हे पण्डितो ! “ (न हिंस्यात् सर्व भूतानि) किसी भी प्राणीकी हिंसा मत करो ” (इति प्रवचने सति) ऐसे वेद वाक्यके रहनेपर (यूयं) तुम लोग (हिंसामात्र फलं) हिंसा ही है फल जिसका ऐसे (तपः) तपको (किं तपध्वं) क्यों तपते हो ॥ ११ ॥

जलावगाहने लग्नाञ्जटायां काष्ठगानपि ।
नश्यतः पश्यतां जन्तून्पश्यताग्नौ पुनश्च्युतान् ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जलावगाहने) जलमें स्नान करते समय (जटायां लग्नान्) जटाओंमें लगे हुये (काष्ठगानपि) और लक-

ड़ियोंमें प्रविष्ट हुये भी (पुनः) फिर पचाग्नि तप करते हुए (अग्नौ च्युतान्) अग्निमें गिरे हुए (पश्यतां पुरतः) देखनेवालोंके प्रत्यक्ष (नश्यतः) प्राणरहित होते हुए (जन्तून्) प्राणियोंको (यूय पश्यत) तुम लोग देखो ॥ १२ ॥

पञ्चाग्निमध्यमस्थानं ततो नैवोचितं तप ।
जन्तुमारणहेतुत्वादाजवञ्जवकारणम् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ.—(तत.) इसलिये (पंचाग्नि मध्यमस्थान) पंचाग्निके मध्यमें है स्थिति जिसकी (एतादृशं तपः) ऐसा तप (नैव उचित) करना उचित नहीं है क्योंकि यह तप (जंतुमारण हेतुत्वात्) प्राणियोंके मरणका हेतु होनेसे (आजवजवकारणम्) उल्टा संसारका ही कारण है अर्थात्—मोक्षका हेतु नहीं है ॥ १३॥

तत्तपो यत्र जन्तूनां संतापो नैव जातुचित् ।
तच्चारम्भनिवृत्तौ स्यान्न ह्यारम्भो विहिंसनः ॥१४॥

अन्वयार्थः—(यत्र) जिसमे (जन्तूनां) जीवोको (जातुचित्) कभी भी (सताप·) संताप (नैव जायते) नहीं होता है (तत् तपः) वह ही सच्चा तप है । (तच्च) और वह तप (आरम्भ-निवृत्तौ स्यात्) आरम्भकी सर्वथा निवृत्ति होने पर होता है और (हि) निश्चयसे (आरम्भः) आरम्भ (हिसात्मकक्रिया) (विहिसन. न स्यात्) हिसारहित नहीं होती है । १४ ॥

आरम्भविनिवृत्तिश्च निर्ग्रन्थेष्वेव जायते ।
न हि कार्यपराचीनैर्मृग्यते भुवि कारणम् ॥ १५ ॥

अन्ववार्थ —और (आरंभविनिवृत्तिश्च) आरंभकी निवृत्ति (त्याग) (निग्रन्थेषु एव जायते) निग्रंथ पदधारी मुनियोंमे ही

होती है। अत्र नीति. (हि) निश्चयसे (भुवि) संसारमें (कार्यपराचीनैः) कार्यसे पराङ्मुख पुरुष (कारणं न मृग्यते) कारणकी खोज नहीं करते ॥

अर्थात्—जिन्हें कोई सासारिक कार्य करना ही नहीं है वे उनके हेतु आरभादिक कार्य क्यो करेंगे ॥ १५ ॥

नैर्ग्रन्थ्यं हि तपोऽन्यत्तु संसारस्यैव साधनम् ।
मुमुक्षूणां हि कायोऽपि हेयः किमपरं पुनः ॥ १६ ॥

अन्वायार्थः—(हि) निश्चयसे (नैर्ग्रन्थ्य तप.) बाह्याभ्यतर परिग्रह रहित मुनिवृत्ति ही वास्तविक तप है (अन्यत्) इसके अतिरिक्त तप (तु) तो (ससारस्यैव साधनम्) जन्म मरणरूप संसारका ही साधक है । अत्र नीति. (हि) निश्चयसे (मुमूक्षुणां) मोक्षके चाहनेवाले पुरुषोंको (काय. अपि) शरीर भी (हेय.) छोडने योग्य है (अपरं पुनः कि वक्तव्यं) और विषयका तो फिर कहना ही क्या है ॥ १६ ॥

ग्रन्थानुबन्धी संसारस्तेनैव न परिक्षयी ।
रक्तेन दूषितं वस्त्रं न हि रक्तेन शुध्यति ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(ग्रन्थानुबन्धी संसारः) रागद्वेषादि परिग्रह कारण ही संसार है (तेन एव न परिक्षयी भवति) इसलिये उस परिग्रह ही से उसका नाश नहीं हो सकता अर्थात् परिग्रहसे संसारकी ही वृद्धि होती, मोक्षकी प्राप्ति कदापि नही हो सकती। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (रक्तेन) रुधिरसे (दूषित वस्त्र) मैला वस्त्र (रक्तेन न शुध्यति) रुधिरसे ही शुद्ध नहीं हो सकता ॥ १७॥

तत्त्वज्ञानविहीनानां नैर्ग्रन्थ्यमपि निष्फलम्।
न हि स्थाल्यादिभिः साध्यमन्नमन्यैरतण्डुलैः॥१८॥

अन्वयार्थः—(तत्वज्ञानविहीनानां) यथार्थ तत्वज्ञानसे रहित जीवोंके (नैग्रन्थ्यं अपि) मुनिधर्म भी (निष्फलं) है। अत्रनीतिः! (हि निश्चयसे (अतण्डुलैः) चावलादिकोंके विना (अन्यैः स्थाल्यादिभिः) अन्य बटलोई, जल, अग्नि आदिकके द्वारा (अन्नं साध्यं न भवति) अन्नपाक नहीं हो सकता॥ १८॥

अर्थात्—उपादान कारणके विना केवल निमित्त कारणसे कदापि कार्य निष्पादन नहीं हो सकता॥ १८॥

तत्त्वज्ञानं च जीवादितत्त्वयाथात्म्यनिश्चयः।
अन्यथा धीस्तु लोकेऽस्मिन्मिथ्याज्ञानं हि कथ्यते।१९।

अन्वयार्थः—(जीवादितत्वयाथात्म्यनिश्चयः) जीवादिक (जीव[1], अजीव[2], आस्रव[3], बंध[4], संवर[5], निर्जरा[6], मोक्ष[7]) इन सात तत्वोंके असाधारण स्वरूपका संशय[1] विपर्यय[2] और अनध्यवसाय[3] रहित निश्चय करना ही (तत्वज्ञान च भवति) सम्यग्ज्ञान कहलाता है। (तु पुनः) और (अस्मिन् लोके) इस लोकमें (अन्यथा धीः) उपर्युक्त तत्वोंका विपरीत ज्ञान ही (मिथ्या ज्ञानं कथ्यते) मिथ्या ज्ञान कहलाता है॥ १९॥

आप्तागमपदार्थाख्यतत्त्ववेदनतद्रुची।
वृत्तं च तद्द्वयस्यात्मन्यस्खलद्वृत्तिधारणम्॥ २०॥

अन्वयार्थः—(आप्तागमपदार्थाख्यतत्ववेदनतद्रुची) आप्त, आगम, पदार्थ इन तीनोंके यथार्थ ज्ञानको ही सम्यग्ज्ञान कहते हैं और इनमें रुचि व श्रद्धान होनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं (च) और

(तद्द्वयस्य आत्मनि) इन दोनोंका आत्मामें (अस्खलद्वृत्ति धारणम्) स्थिर वृत्तिसे धारण करनेको (वृत्तं कथ्यते) सम्यग्चारित्र कहते हैं ॥ २० ॥

इति त्रयी तु मार्गः स्यादपवर्गस्य नापरम् ।
बाह्यमन्यत्तपः सर्वं तत्त्रयस्यैव साधनम् ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(तु) और (इति त्रयी) यह त्रयी अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका समुदाय ही (अपवर्गस्य) मोक्षकी (मार्गः) प्राप्तिका उपाय (स्यात्) है, (अपरं न) इनसे भिन्न और दूसरा कोई मोक्षका मार्ग नहीं है। (अन्यत्सर्वं) इनसे भिन्न और सब (बाह्यं तपः) बाह्य तप (तत्त्रयस्य एव साधनम्) इन्हीं तीनोंके साधक हैं ॥ २१ ॥

न च बाह्यतपोहीनमभ्यन्तरतपो भवेत् ।
तण्डुलस्यैव विक्लित्तिर्न हि वह्न्यादिकं विना ॥२२॥

अन्वयार्थः—(बाह्यतपोहीन) बाह्य तपके विना (अभ्यंतर तपः) अभ्यंतर तप (न च भवेत्) नहीं हो सकता। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (यथा वह्न्यादिक विना) जैसे अग्निके विना (तण्डुलस्य विक्लित्तिः न) चावलोंका पाक नहीं हो सकता ॥२२॥

तत्त्रयं च न मोक्षार्थमाप्ताभासादिगोचरम् ।
ध्यातो गरुडबोधेन न हि हन्ति विषं बकः ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(च) और (आत्माभासादि गोचरम्) झूठे आप्त, आगम पदार्थ ये हैं विषय जिनके ऐसे (तत्त्रयं) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, और मिथ्याचारित्र ये (मोक्षाथ न भवंति) मोक्षके साधन नहीं हैं। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे) गरुड़ बोधेन ध्यातः

वकः) ये गरुड है इस बुद्धिमे ध्यान किया हुआ बगुला (विषं न हन्ति) विषको दूर नही कर सकता ॥ २३ ॥

सर्वदोषविनिर्मुक्तं सर्वज्ञोपज्ञमञ्जसा ।
तप्यध्वं तत्तपो यूयं किं मुधा तुषखण्डनैः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(यत्तप.) जो तप (सर्वदोषविनिर्मुक्तं) सम्पूर्ण दोषोंसे रहित (सर्वज्ञोपज्ञं) सर्वज्ञका कहा हुआ हो (यूयं) तुम लोग (तत्तप) उस तपको (अञ्जसा तप्यध्वं) भले प्रकार तपो (मुधा तुषखण्डनै किं) वृथा भूसेके कूटनेसे क्या ॥ २४ ॥

रागादिदोषसंयुक्तः प्राणिनां नैव तारकः ।
पतन्तः स्वयमन्येषां न हि हस्तावलम्बनम् ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(रागादिदोषसयुक्त देवः) रागादि दोषोंसे सहित देव (प्राणिनां तारकः नैव) प्राणियोंको संसार समुद्रसे पार नहीं कर सकता । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (स्वय पतन्त) आप ही डूबनेवाला (अन्येषां) दूसरोंको (हस्तावलम्बनं न भवति) अपने हाथका सहारा देनेवाला नही हो सकता ॥ २५ ॥

न च क्रीडा विभोस्तस्य बालिशेष्वेव दर्शनात् ।
अतृप्तश्च भवेत्तृप्तिं क्रीडया कर्तुमुद्यतः ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ—(तस्य विभोः) और उस ईश्वरके (क्रीडा न च) क्रीड़ा नही हो सकती क्योंकि क्रीडा तो (बालिशेषु एव दर्शनात्) बालकोमें ही देखी जाती है। (च) और अथवा (अतृप्तः) जो अतृप्त पुरुष है (क्रीड़ाया तृप्ति कर्तुं) वह क्रीडसे तृप्ति करनेके लिये (उद्यतः भवेत्) उद्यत होता है ॥ २६ ॥

स्वैराचारस्वभावोऽपि नैश्वरस्यैश्यहानितः ।
अप्यस्मदादिभिर्द्वेष्यं सर्वोत्कर्षवतः कुतः ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ—और (ऐश्यहानितः) ईश्वरपनेकी हानि होनेसे (ईश्वरस्य ईश्वरके (स्वैराचारस्वभावः अपि न) स्वेच्छाचार स्वभाव भी नही है। (अपि च) क्योकि (सर्वोत्कर्षवतः) सर्वोत्कर्ष वान उस ईश्वरके (अस्मदादिभिः सह) हम लोगोंके साथ (कुतः द्वेष्यं) द्वेषपना कैसे हो सकता है ॥ २७ ॥

अदोषश्चेदकृत्यं च कृतिनः किमु कृत्यतः ।
स्वैराचारविधिर्दृष्टो मत्त एव न चोत्तमे ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ —(चेत्) यदि वह ईश्वर (अदोष) निर्दोष (च) और (अकृत्य) कृत्य रहित है तो फिर (कृतिन) कृतकृत्य उस ईश्वरको (कृत्यतः किं) जगतरूप कार्य करनेसे क्या फल और (स्वैराचारविधिः) स्वेच्छाचार प्रवृत्ति भी (मत्त एव दृष्टः) उनमत्त पुरुषोमें ही देखी जाती है (उत्तमे न) उत्तम पुरुषोमें नहीं॥२८॥

इति प्रबोधिताः केचिद्बभूवुस्तेषु धार्मिकाः ।
मृत्स्ना ह्यार्द्रत्वमायाति नोपलं जलसेचनात् ॥२९॥

अन्वयार्थः—(इति प्रबोधिताः) इस प्रकार धर्मसे संबोधित (तेषु) उनमेंसे (केचित् धार्मिका बभूवुः) कईएक धर्मात्मा पुरुष बन गये अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (जलसेचनात्) जलके सींचनेसे (मृत्स्ना) अच्छी मिट्टी ही (आर्द्रत्व आयाति) गीली हो जाती है (उपलं न) पत्थर कभी गीला नहीं होता ॥२९॥

ठीक ही है—उपदेश पात्रोंमें ही फलित होता है कुपात्रों-कोउपदेश देनेसे कुछ फल नहीं होता ॥ २९ ॥

धर्माश्रितान्समालोक्य तापसान्मुमुदे कृती ।
प्रीतये हि सतां लोके स्वोदयाच्च परोदयः ॥३०॥

अन्वयार्थः—(कृती) विद्वान् जीवंधर (धर्माश्रितान् तापसान् समालोक्य) धर्मयुक्त उन तपस्वियोंको देखकर (मुमुदे) अत्यंत आनंदित हुए अत्र नीतिः (हि) निश्चनसे (लोके) इसलोकमें (सतां) सज्जन पुरुषोंको (सोदयात्) अपने उदयकी अपेक्षा (परोदयः) दूसरेका अभ्युदय ही (प्रीतये भवति) प्रीतिके लिये होता है ॥ ३० ॥

बोधिलाभात्परा पुंसां भूतिः का वा जगत्त्रये ।
किंपाकफलसंकाशैः किं परैरुदयच्छलैः ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(जगत्रये) तीनोंलोकोंमें (पुंसां) पुरुषोंको (बोधिलाभात्) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्रकी प्राप्तिसे (परा) उत्कृष्ट (का वा भूतिः) और कौनसा ऐश्वर्य है । (किंपाक फल सकाशैः उदयच्छलैः) विष वृक्षके फलके समान प्राप्ति कालमें छलने वाले (परैः किं) धन सम्पत्यादिक इन्द्रिय विषयादिकोंसे क्या फल ॥ ३१ ॥

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य देशे दक्षिणनामके ।
सहस्रकूटमाश्रित्य श्रीविमानं नुनाव सः ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (सः) उन जीवंधर स्वामीने (तस्मात्) उस तापसाश्रमसे (विनिर्गत्य) निकल कर (दक्षिण नामके देशे) दक्षिण नामके देशमें (सहस्रकूटं) सहस्रकूट नामके (श्री विमान) जिनालयको (आश्रित्य) प्राप्त होकर (नुनाव) स्तुति प्रारंभ की ॥ ३२ ॥

भगवन्दुर्णयध्वान्तैराकीर्णे पथि मे सति ।
सज्ज्ञानदीपिका भूयात्संसारावधिवर्धनी ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थः—(हे भगवन्) हे भगवन् ! (दुर्णयध्वान्तैः) दुर्नय रूपी अंधकारसे (आकीर्णे) व्याप्त (मे पथि सति) मेरे मार्गके होने पर (संसारावधिवर्धनी) मोक्षको देनेवाला (सज्ज्ञानदीपिका भूयात्) सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक आपके प्रसादसे प्राप्त होवे ॥३३॥

जन्मजीर्णाटवीमध्ये जनुषान्धस्य मे सती ।
सन्मार्गे भगवन्भक्तिर्भवतान्मुक्तिदायिनी ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(हे भगवन् !) हे भगवन् ! (जन्मजीर्णाटवीमध्ये) जन्म मरण रूप संसार रूपी अत्यन्त पुराने वनमें (जनुषान्धस्य) जन्मसे अन्धे (मे) मेरे (मुक्तिदायनी) मुक्तिकी देनेवाली (सन्मार्गे सती) सन्मार्गमे समीचीन अर्थात् प्रवृत्ति करनेवाली (ते भक्तिः भवतात्) आपकी भक्ति होवे ॥ ३४ ॥

स्वान्तशान्तिं ममैकान्तामनेकान्तैकनायकः ।
शान्तिनाथो जिनः कुर्यात्संसृतिक्लेशशान्तये ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—(अनेकान्तैकनायक) स्याद्वाद मतके अद्वितीय नायक शान्तिनाथ जिनः) शान्तिनाथ जिनेन्द्र (संसृतिक्लेशशान्तये) संसारके दुःखोंकी शांतिके लिये (एकान्ता) हमेशा स्थिर रहनेवाली (मम स्वान्त शान्तिं) मेरे हृदयकी शान्तिको (कुर्यात्) करे ॥३५॥

इति स्तोत्रेण तच्चासीदुद्घाटितकवाटकम् ।
सुचिद्वारकवाटस्य भेदना किं न सिध्यते ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(इति स्तोत्रेण) इस प्रकार स्तुति करनेसे (तत् उद्घाटितकवाटकम् आसीत्) वह जिनमंदिर खुले हुए किवाडों-वाला हो गया अर्थात् उस जिनमंदिरके किवाड़ खुल गये । ठीक

ही है ! मुक्तिद्वारकवाटस्य भेदिना) मोक्ष रूपी द्वारके किवाड़ोंको भेदन करनेवाले स्तवनसे (किं न भिद्यते) क्या भेदन नहीं हो सकता ॥ ३६ ॥

अर्थात्—मोक्षका देनेवाला स्तवन सब कुछ करनेमें समर्थ है ॥ ३६ ॥

अन्याश[illegible]यमि[illegible] मान्यो वितन्वन्न विसिष्मिये ।
लोकमालोकसात्कुर्वन्नहि विस्मयते रविः ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थः—(मान्यः) माननीय जीवंधरने (अन्याशक्यमिदं वितन्वन्) दूसरोंके लिये अशक्य इस कार्यको करते हुए (न विसिष्मिये) कुछ भी आश्चर्य नहीं किया अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (रविः) सूर्य (लोक) ससारको (आलोकसात् कुर्वन्) प्रकाश मय करता हुआ स्वयं कुछ भी (न विस्मयते) आश्चर्य युक्त नहीं होता है ॥३७॥

तावता तं समासाद्य प्रणतः कोऽपि पिप्रिये ।
स्वमनीषितनिष्पत्तौ किं न तुष्यन्ति जन्तवः ॥३८॥

अन्वयार्थः—(तावता) उसी समय (प्रणतः कः अपि) विनयी कोई पुरुष (तं समासाद्य) जीवंधर स्वामीके पास आकर (पिप्रिये) अत्यन्त प्रसन्न हुआ । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (स्वमनीषित-निष्पत्तौ) अपने इच्छित कार्यकी सफलता हो जाने पर (जन्तवः) प्राणी (किं न तुष्यति) क्या संतोषित नहीं होते हैं (किन्तु संतुष्यंति एव) किन्तु संतुष्ट होते ही हैं ॥३८॥

स्वामी तु तं समालोक्य कस्त्वमार्येति पृष्टवान् ।
प्रभूणां प्राभवं नाम प्रणतेष्वेकरूपता ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थः—(तु) फिर (स्वामी) जीवंधर स्वामीने (तं समालोक्य) उसको देखकर (आर्य !) हे आर्य ! (त्वं कः) तुम कौन हो (इति पृष्टवान्) इस प्रकार पूछा । अत्र नीति (हि) निश्चयसे (प्रणतेषु एकरूपता) विनयी (नम्र) पुरुषोंमें एक रूपता अर्थात् उनको अपने समान समझना ही (प्रभूणा) प्रभुओंकी अर्थात् बड़े पुरुषोंकी (प्राभवं नाम) प्रभुता अर्थात् बड़प्पन है ॥ ३९ ॥

पृष्टः सोऽप्युत्तरं वक्तुमुपादत्त कृतत्वरः ।
समीहितेऽपि साहाय्ये प्रयत्नो हि प्रकृष्यते ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ —(पृष्ट सः अपि) पूछे हुए उसने भी (कृतत्वर) शीघ्रता पूर्वक (उत्तरं वक्तुं उपादत्त) उत्तर देना प्रारंभ किया । अत्रनीति । (हि) निश्चयसे (समीहिते साहाय्ये) इच्छित सहायताके (सत्यपि) होने पर ही (प्रयत्नः प्रकृष्यते) प्रयत्न अच्छा फलवान होता है ॥ ४० ॥

इह क्षेमपुरी नाम राजधानी विराजते ।
नरपतिस्तु देवान्तो राजा तत्पुरनायकः ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थः—(इह) यहां (क्षेमपुरी नाम) क्षेमपुरी नामकी (राजधानी) राजाकी प्रधान नगरी (विराजते) सुशोभित है । (तु) और (तत्पुरनायकः) इस नगरीका स्वामी (देवान्तनरपति राजा अस्ति) नरपति देव नामका राजा है ॥ ४१ ॥

तस्य श्रेष्ठिपदप्राप्तः सुभद्रस्तस्य गेहिनी ।
नाम्ना तु निर्वृतिः पुत्री क्षेमश्रीरित्यभूत्तयोः ॥४२॥

अन्वयार्थः—(तस्य श्रेष्ठिपदप्राप्तः सुभद्रः) उस राजाके श्रेष्ठि पद पर नियत सुभद्र नामका सेठ है । (तु) और (निर्वृत्तिः

नाम्ना गेहिनी अस्ति) निर्वृत्ति नामकी उसकी स्त्री है । (तयोः क्षेमश्री इति नाम्ना पुत्री अभूत) और उन दोंनोंके क्षेमश्री नामकी पुत्री है ॥ ४२ ॥

जन्मलग्ने च दैवज्ञास्तत्पतिं तमजीगणन् ।
स्वयंविघटितद्वारो येनायं स्याज्जिनालयः ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(दैवज्ञाः) ज्योतिषियोंने (जन्मलग्ने) इस कन्याके जन्म लग्नमें " (येन) जिस पुरुषके निमित्तसे (अयं जिनालयः) यह जिन मन्दिर (स्वयविघटितद्वारः स्यात्) स्वयं खुले हुए द्वारवाला हो जावेगा (तं तत्पति) वही उसका पति होगा " (इति अजीगणन्) ऐसा निश्चय किया है ॥ ४३ ॥

तत्परीक्षाकृतेऽत्रैव गुणभद्रसमाह्वयः ।
प्रेष्योऽहं प्रेरितस्तिष्ठन्भवन्तं दृष्टवानिति ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थः—(तत्परीक्षा कृते) उस पुरुषकी परीक्षा करनेके लिये (प्रे रतः) भेजा हुआ (गुणभद्रसमाह्वयः प्रेष्यः अहं) गुणभद्र नामके किंकर मैंने (अत्रैवतिष्ठन्) यहांपर ठहरे हुए (भवन्तं) आपको (दृष्टवान्) देखा । (इति) ऐसा जीवधर स्वामीको उसने उत्तर दिया ॥ ४४ ॥

इत्युक्त्वा स पुनर्नत्वा गत्वा सत्वरमात्मनः ।
स्वामिने स्वामिवृत्तान्तममन्दप्रीतिरब्रवीत् ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थ—(सः) उस गुणभद्रने (इति उक्त्वा) यह कह करके और (पुनः नत्वा) नमस्कार कर (आत्मनः स्वामिने) अपने मालिकके पास (सत्वरं गत्वा) शीघ्र जाकर (अमन्द प्रीतिः) अत्यन्त प्रीति पूर्वक (स्वामिवृत्तान्तं अब्रवीत्) स्वामीका वृत्तांत कहा ॥ ४५ ॥

भद्रवार्तां ततः शृण्वन् सुभद्रोऽपि समागतः।
तत्क्षणे च तमद्राक्षीज्जिनपूजाकृतक्षणम् ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (सुभद्रः अपि) सुभद्र सेठ भी (भद्रवार्ता शृण्वन्) इस उत्तम बातको सुनकर (समागतः) उसी समय वहां आया (च) और (तत्क्षणे) उस समय (जिनपूजाकृतक्षणम्) जिनेन्द्र पूजा करनेमें किया है उत्सव जिसने ऐसे (तं अद्राक्षीत्) उन जीवंधर स्वामीको देखा ॥ ४६ ॥

न गात्रमात्रमद्राक्षीद्विभवं चास्य वैश्यराट्।
सौगन्धिकस्य सौगन्ध्यं शपथात्किं प्रतीयते ॥४७॥

अन्वयार्थ.—(वैश्यराट्) वैश्यपति सुभद्रने (अस्य गात्र मात्रं न अद्राक्षीत्) इनके शरीरमात्रको ही नही देखा (किंतु विभव च अद्राक्षीत्) किन्तु उनके वैभवको भी देख लिया। अत्र नीतिः ! (कि सौगन्धिकस्य सौगन्ध्यं) क्या कस्तूरीकी सुगन्धि (शपथात् प्रतीयते) शपथ खानेसे ही प्रतीत होती है ? नहीं। उसकी सुगन्ध तो स्वयं ही मालूम हो जाती है ॥ ४७ ॥

अर्थात्—उसने बिना किसीके कहे हुए ही स्वामीका वैभव जान लिया ॥ ४७ ॥

इज्यान्तेऽभूद्यथायोग्यमुपचारः परस्परम्।
सतां हि प्रह्वता शास्ति शालीनामिव पक्वताम् ॥४८॥

अन्वयार्थः—(इज्याते) पूजाके अन्तमें (तयोः परस्परं) उन दोंका परस्पर (यथायोग्य) यथायोग्य (उपचारः अभूत्) विनय शुश्रुषाका व्यवहार हुआ। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (शालीनां इव) धान्योंके सदृश (सतां प्रह्वता) सज्जन पुरुषोंकी

नम्रता (पक्वतां शास्ति) उनकी पक्वता अर्थात् योग्यता और बड़प्पनको प्रगट करती है ॥ ४८ ॥

तद्वेश्म तस्य निर्बन्धादथ बन्धुप्रियो गतः ।
सख्यं साप्तपदीनं हि लोके संभाव्यते सताम् ॥४९॥

अन्वयार्थः—(अथ इसके अनंतर (बंधुप्रियः) बंधुओंका प्यारा जीवधर (तस्य निर्बन्धात्) उस सेठके आग्रह करनेसे (तद्वेश्मगतः) उनके घर गये । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (लोके) संसारमें (सतां सख्य) सज्जन पुरुषोंकी मित्रता (साप्तपदीनं संभाव्यते) दूसरोंके साथ सात पदोंके उच्चारण करनेसे ही हो जाती है ॥४९॥

आश्रयन्तीं श्रियं को वा पादेन भुवि ताडयेत् ।
कन्यायाः करपीडां च तद्दैन्यादन्वमन्यत ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ.—(भुवि संसारमें (को वा) कौन पुरुष आश्रयंतीं श्रियं) अपने आश्रयको प्राप्त होनेवाली लक्ष्मीको (पादेन ताडयेत्) चरणोंसे ताडन करता है अर्थात् लात मारता है (च) और (तद्दैन्यात्) उस सेठकी दीनता पूर्वक प्रार्थनासे (कन्यायाः) कन्याके (करपीडां) विवाहको (अन्वमन्यत) अपने साथ करना स्वीकार किया ॥५०॥

अथ भद्रतरे लग्ने सुभद्रेण समर्पिताम् ।
क्षेमश्रियं पवित्रोऽयमुपयेमे यथाविधि ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (अयं पवित्र) इन पवित्र जीवंधर स्वामीने (भद्रतरेलग्ने) शुभ लग्नमे (सुभद्रेण समर्पिताम्) सुभद्रसेठसे दी हुई (क्षेमश्रिय) क्षेमश्री नामकी कन्याको (यथाविधि उपयेमे) विधि पूर्वक व्याहा ॥ ५१ ॥

इति श्रीमद्वादीभसिंह सूरि विरचिते क्षत्रचूडामणौ सान्वयार्थो क्षेमश्री लम्भो नाम षष्ठो लम्ब. ॥

ॐ

अथ सप्तमो लम्बः ।

अथ वध्वा तया साकमनुबोभूय भूयसीम् ।
सुखतातिं ततो यातुं वितताम मतिं कृती ॥ १ ॥

अन्वयार्थ.—(अथ) क्षेमश्रीके विवाहानन्तर (कृती) पुण्यशाली जीवधरने (तया वध्वा साकं) उस स्त्रीके साथ (भूयसीम् सुखतातिं) बहुत सुख परपराको (अनुबोभूय) अनुभवन करके (ततः यातुं) वहासे जानेके लिये (मति वितताम) बुद्धि की ॥ १ ॥

अकथयन्नथ स्वामी गणरात्रात्यये गतः ।
न हि मुग्धाः सतां वाक्यं विश्वसन्ति कदाचन ॥२॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनन्तर (स्वामी) जीवधर स्वामी (गणरात्रात्यये) बहुतसी रात्रियोंके बीत जाने पर (अकथयन्) बिना कहे हुए ही वहांसे (गतः) चले गये । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मुग्धाः) भोले मनुष्य (सतां वाक्यं) सज्जन पुरुषोंके वाक्योंका (कदाचन) कभी भी (न विश्वसन्ति) विश्वास नहीं करते है ॥ २ ॥

तद्वियोगादभूत्पत्नी दग्धरज्जुसमद्युतिः ।
प्राणाः पाणिगृहीतीनां प्राणनाथो हि नापरम् ॥३॥

अन्वयार्थ.—(पत्नी) जीवंधर स्वामीकी क्षेमश्री नामकी स्त्री (तद्वियोगात्) उनके वियोगसे (दग्धरज्जुसमद्युतिः) जली हुई रस्सीके समान कान्तिहीन (अभूत) हो गई । अत्र नीति. । (हि)

निश्चयसे (पाणिगृहीतीनां) विवाहता स्त्रियोंके (प्राणाः) प्राण (प्राणनाथः) उनके पति ही हैं (अपरं न) और कोई नहीं ॥ ३ ॥

सुभद्रोऽपि पवित्रं तमन्विष्याधिमयोऽभवत् ।
बहुयत्नोपलब्धस्य प्रच्यवो हि दुरुत्सहः ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(सुभद्रः अपि) सुभद्र नामके सेठ भी (तं पवित्रं) उन पवित्र जीवधर स्वामीको (अन्विष्य) ढूंढकर उनके न मिलने पर (आधिमयः अभवत्) मनमे अत्यन्त दुखी हुए। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (बहु यत्नोपलब्धस्य) बहुत यत्नसे प्राप्त वस्तुका (प्रच्यवः) हाथसे निकल जाना (दुरुत्सह) अतीव दुःखकर होता है॥ ४ ॥

स्वामी स्वाभरणत्यागमैच्छद्गच्छन्नतुच्छधीः ।
विवेकभूषितानां हि भूषा दोषाय कल्पते ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(अतुच्छधीः स्वामी) श्रेष्ट बुद्धिवाले जीवधर स्वामीने (गच्छन्) जाते समय (स्वाभरण त्याग ऐच्छत्) अपने आभूषणोंके देनेकी इच्छा की। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (विवेक भूषितानां) विवेक बुद्धिसे भूषित पुरुषोके (भूषा) भूषणा भरणादि (दोषाय) दोषके लिये ही (कल्पते) होते हैं। ५।

धार्मिकाय तदाकल्पं दातुं च समकल्पयत् ।
स्थाने हि बीजवद्दत्तमेकं चापि सहस्रधा ॥ ६ ॥

अन्वायर्थः—(तदा) उसी समय (सः) उन जीवधर स्वामीने (धार्मिकाय) धार्मिक पुरुषके लिये (आकल्प) भूषणोंको (दातुं) देनेके लिये (समकल्पयत्) संकल्प किया। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (स्थाने) योग्य स्थानमें (बीजवत्) बीजके सदृश (दत्तं

एकं चापि) दी हुई एक वस्तु भी (सहस्रधा फलति) हजार गुनी फलती है ॥ ६ ॥

तावता संन्यधात्कोऽपि सन्निधेस्तस्य संनिधौ ।
भागधेय विधेया हि प्राणिनां तु प्रवृत्तयः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(तावता) इतने ही में (कः अपि) कोई पुरुष (सन्निधेः तस्य) सज्जनोंके उपकारक उन जीवंधर स्वामीके (सनिधौ) पास (सन्यधात्) आया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (प्राणिनां प्रवृत्तयः) प्राणियोंकी सारी प्रवृत्तियां (भागधेय विधेया भवन्ति) उनके भाग्यके अनुकूल हुआ करती हैं ॥ ७ ॥

आगच्छन्तमपृच्छच्च पामरं पार्श्वमात्मनः ।
कुतः कुत्र प्रयासि त्वं स्वास्थ्यं चास्ति न वेति च ॥८॥

अन्वयार्थ—(जीवंधरः) जीवंधर स्वामीने (आत्मनः पार्श्वं) अपने समीपमे (आगच्छन्तं) आये हुए (पामरं) उस ग्रामीण पुरुषसे (अपृच्छत्) पूछा । (त्वं) तुम (कुतः आगतः) कहांसे आये हो (च) और (कुत्र प्रयासि) कहाको जाओगे (ते स्वास्थ्यं अस्ति न वा) तुम्हारे कुशल है अथवा नहीं (इति) इस प्रकार पूछा ॥ ८ ॥

प्रीतः प्रत्यब्रवीत्सोऽपि प्रश्रयेण समाश्रितः ।
सुखदानं हि मुख्यानां लघूनामभिषेचनम् ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(सः अपि) उसने भी (प्रीतः सन्) प्रसन्न होकर (प्रश्रयेण समाश्रितः) विनय पूर्वक (प्रत्यब्रवीत्) उनको उत्तर दिया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मुख्यानां) बड़े मनुष्योंका (सुखदानं) छोटे आदमियोंसे प्रीति पूर्वक बोलना (लघुनां अभिषेच-

नम् भवति) छोटे आदमियोंके लिये राज्याभिषेकके समान होता है ॥ ९ ॥

इतस्ततो मया मह्य गम्यते कार्यकाम्यया ।
स्वास्थ्यं स्वास्थ्यतमं भूयात्कार्येऽप्यार्यदृशो मम ॥१०॥

अन्वयार्थः—(हे मह्य !)हे पूज्य ! (मया) मै (कार्यकाम्यया) कार्यकी ईच्छासे (इतस्तत·) इधरउधर (गम्यते) जारहा हूं । मम कार्ये)मेरे कार्यमें (आर्यदृशः) आपके दर्शनसे (स्वास्थ्यं) सुख (स्वास्थ्य तमं भूयात्) और भी अधिक सुख देनेवाला होवे ॥१०॥

इत्युक्तेन कुमारेण प्रत्युक्तो वृषलः पुनः ।
स्वास्थ्यं नाम न कृष्यादि जायमानं कृषीवल ॥११॥

अन्वयार्थः—(इत्युक्तेन कुमारेण) इस प्रकार कहे हुए कुमारने (पुनः वृषलः प्रत्युक्तः) फिर उस शूद्र पुरुषसे कहा । कृषीवल !) हे किसान (कृष्यादि जायमानं) खेती आदि कर्मोंसे उत्पन्न सुख (न स्वास्थ्यं न.म) सच्चा सुख नहीं है ॥ ११ ॥

षट्कर्मोपस्थितं स्वास्थ्यं तृष्णाबीजं विनश्वरम् ।
पापहेतुः परापेक्षि दुरन्तं दुःखमिश्रितम् ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(षट् कर्मोपस्थितं स्वास्थ्यं) असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या इन छह कर्मोंसे उत्पन्न सुख (तृष्णाबीजं) तृष्णाका कारण, (विनश्व·म्) नाशशील, (पापहेतुः) पापका कारण (परापेक्षी) दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाला, (दुरन्तं) अन्तमें दु ख देनेवाला, (दुःखमिश्रितम्) और दु·खसे मिश्रित है ॥ १२ ॥

आत्मोत्थमात्मना साध्यमव्याबाधमनुत्तरम् ।
अनन्तं स्वास्थ्यमानन्दमतृष्णमपवर्गजम् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(आत्मोत्थ स्वास्थ्यं) अपनी आत्मामें उत्पन्न हुआ सुख (आत्मना साध्यं) आत्माके द्वारा साध्य, (अव्याबाधं) बाधा रहित, (अनुत्तर) सर्वोत्कृष्ट, (अनन्तं) अनन्त, (आनन्दं) आनन्द मय, (अतृष्णम्) तृष्णा रहित और (अपवर्गजम्) मोक्ष स्वरूप है ॥ १३ ॥

तदपि स्वपरज्ञाने याथात्म्यरुचिमात्रके ।
परित्यागे च पूर्णे स्यात्परमं पदमात्मनः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(तदपि) और यह (आत्मनः परमं पदं) आत्माका परम सुख (याथात्म्यरुचिमात्रके) यथार्थ रुचिरूप सम्यग्दर्शन, (स्वपरज्ञाने) स्व और परका भेद विज्ञान रूप सम्यग्ज्ञान, (च) और (पूर्णेपरित्यागे) परिपूर्ण सम्यक्चारित्रके होने पर ही (स्यात्) होता है ॥ १४ ॥

स्वमपि ज्ञानदृक्सौख्यसामर्थ्यादिगुणात्मकम् ।
परं पुत्रकलत्रादि विद्धि गात्रमलं परैः ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(त्वं) और तू (स्वं) आत्माको (ज्ञानदृक्सौख्य-सामर्थ्यादि गुणात्मकम्) अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यादिगुणात्मक (विद्धि) जान । और (पुत्र-कलत्रादि पर विद्धि) पुत्र स्त्री आदिकको पर जान । (परैः अलं) और तो क्या (गात्रमपि पर विद्धि) अपने शरीरको भी पर जान ॥ १५ ॥

एवं भिन्नस्वभावोऽयं देही स्वत्वेन देहकम् ।
बुध्यते पुनरज्ञानादतो देहेन बध्यते ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(एवं भिन्नस्वभावः) इस प्रकार भिन्न स्वभावको धारण करने वाला (अय देही) यह आत्मा (अज्ञानात्) अज्ञानतासे (देहकम्) शरीरको (स्वत्वेन बुध्यते) निजत्व बुद्धिसे जानता है। (अतः) इस लिये (पुनः) फिर (देहेन) देहसे (बध्यते) बंधता है ॥ १६ ॥

अज्ञानात्कायहेतुः स्यात्कर्माज्ञानमिहात्मनाम् ।
प्रतीके स्यात्प्रबन्धोऽयमनादिः सैव संसृतिः ॥१७॥

अन्वयार्थः—(इह) इस ससारमें (आत्मनाम्) आत्माओंके (अज्ञानात्) अज्ञानसे (कायहेतुः) शरीरका कारण भूत (कर्म; स्यात्) कर्म बंधता है (प्रतीके) और फिर शरीरके होनेपर (अज्ञानं स्यात्) अज्ञान होता है। (अय प्रबंधः) यह अज्ञान और शरीरकी परम्परा (अनादिः) अनादि कालसे है। (सा एव संसृतिः) और इसीको ससार कहते हैं ॥ १७ ॥

स्वं स्वत्वेन ततः पश्यन्परत्वेन च तत्परम् ।
परत्यागे मतिं कुर्याः कार्यैरन्यैः किमस्थिरैः ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसलिये (स्व स्वत्वेन पश्यन्) आत्माको आत्मपनेसे और (तत्परं) आत्मासे भिन्न शरीरको (परत्वेन पश्यन्) भिन्न पनेसे देखता हुआ (पर त्यागे) परवस्तुके त्यागमें (मतिं कुर्याः) बुद्धिको कर (च) और (अन्यैः अस्थिरैः कार्यैः किं) दूसरे नष्ट होनेवाले कार्योंसे क्या लाभ? ॥ १८ ॥

परत्यागकृतो ज्ञेयाः सानगारा अगारिणः ।
गात्रमात्रधनाः पूर्वे सर्वसावद्यवर्जिताः ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(परित्यागकृतः) परवस्तुके त्याग करनेवाले (सानगाराः) अनगार (मुनि) सहित (अगारिणः) गृहस्थी श्रावक (ज्ञेयाः) जानने चाहिये । अर्थात् त्यागी दो प्रकारके होते हैं १ यति २ श्रावक । (पूर्वे) पूर्वके त्यागी मुनि (सर्वसावद्यवर्जितः) सम्पूर्ण पापोंसे रहित (गात्रमात्रधनाः सन्ति) शरीर मात्र परिग्रह रखनेवाले होते है अर्थात् शरीरको छोडकर दूसरा कोई उनके परिग्रह नही होता ॥ १९ ॥

मूलोत्तरादिकान्वोढुं त्वं न शक्तो हि तद्गुणान् ।
न हि वारणपर्याणं भर्तुं शक्तो वनायुजः ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (त्वं) तू (मुलोत्तरादि कान् तद्गुणान्) मूल गुण और उत्तर गुण रूप उनके व्रतोंको (वोढु) धारण करनेके लिये (न शक्त) समर्थ नहीं है । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (वनायुजः) पारसी देशका सवारीका श्वेत घोडा (वारण पर्याण) हाथीके पलानको (भर्तु) धारण करनेके लिये (न शक्तः) समर्थ नही है ॥ २० ॥

अतस्त्वमधुना धर्मं गृहाण गृहमेधिनाम् ।
न ह्यारोढुमधिश्रेणिं यौगपद्येन पार्यते ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(अतः) इस लिये (अधुना) इस समय (त्वं) तू (गृहमेधिनाम्) गृहस्थोंके (धर्म) धर्मको (गृहाण) स्वीकार कर। अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (यौगपद्येन) एक ही साथ (अधिश्रेणि) ऊंची नसैनीको (आरोढुं) आरोहण करनेके लिये (न पार्यते) कोई भी समर्थ नहीं है ॥ २१ ॥

त्रिचतुःपञ्चभिर्युक्ता गुणशिक्षाणुभिर्व्रतैः ।
तत्त्वधीरुचिसंपन्नाः सावद्या गृहमेधिनः ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(त्रिचतुःपञ्चभि.) क्रमसे तीन, चार, पांच, (गुणशिक्षाणुभिःव्रतैः) गुणव्रत, शिक्षाव्रत और अणुव्रतोंसे (युक्ताः) सहित (तत्वधीरुचिसंपन्नाः) सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन सपन्न (सावद्या) कुछ दोष सहित (गृहमेधिनः संति) गृहस्थ पुरुष होते है ॥ १२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं स्वस्त्रीमितवसुग्रहौ ।
मद्यमांसमधुत्यागैस्तेषां मूलगुणाष्टकम् ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(तेषा) उन गृहस्थ पुरुषोंके (मद्यमास मधुत्यागैः सह) मद्यत्याग, मांसत्याग और मधुत्याग सहित (अहिसा) हिंसा न करना, (सत्यं) सच बोलना, (अस्तेयं) चोरो न करना, (स्वस्त्रीमितवसु ग्रहौ) स्वस्त्री संतोष और परमित-वस्तुका संग्रह (इति मूलगुणाष्टकम्) यह आठ मूलगुण कहलाते हैं ॥ २३ ॥

भोगोपभोगसंहारोऽनर्थदण्डव्रतान्वितः ।
गुणानुबृंहणाद्‌ज्ञेयो दिग्व्रतेन गुणव्रतम् ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(गुणानुबृंहणात्) मूल गुणोंकी वृद्धि करनेसे (अनर्थदण्डव्रतान्वितः) अनर्थदण्ड व्रत युक्त, (भोगोपभोगसंहारः) भोगोपभोग परिमाण, (दिग्व्रतेन) दिग्व्रत सहित यह तीन (गुणव्रतम् ज्ञेयम्) गुणव्रत जानने चाहिये ॥ २४ ॥

सप्रोषधोपवासेन व्रतं सामायिकेन च ।
देशावकाशिकेन स्याद्वैयावृत्यं तु शिक्षकम् ॥२५॥

अन्वयार्थः—(वैयावृत्य) वैयावृत्यै (सप्रोषधोपवासेन) प्रोषधोपवास सहित (सामायिकेन) सामायिक (च) और (देशावकाशिकेन) देशावकाशिक व्रतके साथ (शिक्षकम् व्रत स्यात्) यह चार शिक्षाव्रत कहलाते है ।। २९ ।।

परिच्छिन्नदिशि प्राप्तिं त्यागं निष्फलदुष्कृतेः ।
मितान्नस्त्र्यादिकत्वं च कृत्यं विद्धि गुणव्रते ॥२६॥

अन्वयार्थः—(गुणव्रते) गुणव्रतमें (परिच्छिन्नदिशि प्राप्ति) मर्यादित दिशाओंमे जाना (निष्फलदुष्कृते) और निष्प्रयोजन पापोंका (त्यागं) त्याग (च) और (मितान्नस्त्रयादिकत्वं) परमित अन्न स्त्री आदि भोगोपभोग पदार्थोंका सेवन (इतिकृत्य) यह तीन कार्य (विद्धि) जानो ॥ २६ ॥

सञ्चारस्यावधिर्नित्यं सचिह्वा चात्मभावना ।
दानाद्यैरुपवासश्च पर्वादिष्वन्यतः कृती ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(अन्यतः) शिक्षाव्रतमें (सञ्चारस्य नित्य अवधिः) गमनकी नित्य मर्यादा करना, (सचिन्हा आत्मभावना) सब जीवोमें समतादि भावों सहित आत्माका चितवन करना (च) और (दानाद्यैः) मुनि दानादि सहित (पर्वादिषु उपवासः) अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वके दिनोंमें उपवास करना ही (कृती) कृत्य जानो ॥२७॥

अणुव्रती व्रतैरेतैः क्वचिद्देशे क्वचित्क्षणे ।
महाव्रती भवेत्तस्माद्ग्राह्यं धर्ममगारिणाम् ॥२८॥

अन्वयार्थः—(अणुव्रती) अणुव्रती श्रावक (एतैः व्रतैः) इन बारह व्रतोंमे (क्वचिद्देशे) किसी देश (क्वचित्क्षणे) व किसी

समयमें (महाव्रती भवेत्) उपचारसे महाव्रती हो जाता है (तस्मात्) इस लिये (अगारिणां धर्मग्राह्य) गृहस्थोंके धर्मको धारण करना चाहिये ॥ २८ ॥

इत्युक्तः प्रत्यगृह्णाच्च स धर्मं गृहमेधिनाम् ।
कः कदा कीदृशो न स्याद्भाग्ये सति पचेलिमे ॥२९॥

अन्वयार्थः—(इत्युक्तः सः) इस प्रकार उपदेशित उस किसानने (गृहमेधिनाम् धर्म प्रत्यगृह्णाच्च) गृहस्थोंके धर्मको स्वीकार किया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (भाग्ये पचेलिमे सति) उत्तम भाग्यके उदय होनेपर (कः) कौन (कदा) किस समय (कीदृश. न स्यात्) कैसा नही हो जाता है ॥ २९ ॥

अत्यादरान्निजाहार्यममुष्मै दानविद्ददौ ।
नादाने किंतु दाने हि सतां तुष्यति मानसम् ॥३०॥

अन्वयार्थः—(दानवित्) दान देनेके जानने वाले उन जीवंधर कुमारने (अति आदरात्) अत्यत आदरसे (अमुष्मै) इसके लिये (निजाहार्यं ददौ) अपने आभूषणोंको दे दिया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (सतां मानसम्) सज्जन पुरुषोंका हृदय (दाने तुष्यति) दूसरोंको दान देनेमें ही संतोषित होता है (किन्तु आदाने न) दूसरेसे दान लेनेमें संतोषित नही होता है।३०।

अनर्घ्याकल्पलाभाच्च धर्मलाभाच्च पिप्रिये ।
तादात्विकसुखप्रीतिः संसृतौ हि विशेषतः ॥३१॥

अन्वयार्थः—(सः) वह किसान (अनर्घ्याकल्पलाभात्) बहु मूल्य आभूषणोंके लाभसे (च) और (धर्म लाभात्) धर्मके

लाभसे (विप्रिये) अत्यन्त प्रसन्न हुआ । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (संसृतौ) ससारमे जीवोंको (तादात्विकसुख प्रीतिः) तात्कालिक विषय सुखोंकी प्रीति (विशेषतः भवति) विशेष रीतिसे होती है ॥ ३१ ॥

भावार्थः—संसारमे जीवोंको विषय सुख मिलने पर उस समय बहुत आनन्द होता है ॥ ३१ ॥

तं विसृज्य ततः स्वामी तस्य स्मृत्वैव निर्ययौ ।
प्रत्यक्षे च परोक्षे च सन्तो हि समवृत्तिकाः ॥३२॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनतर (स्वामी) जीवंधर स्वामी (तं विसृज्य) उसको छोड़कर (तस्य स्मृत्वा एव) उसका स्मरण करते हुए ही वहांसे (निर्ययौ) चल पडे । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (सन्तः) सज्जन पुरुष (प्रत्यक्षे) सम्मुख (च) और (परोक्षे) पीठ पीछे दोनों अवस्थाओंमें (समवृत्तिकाः भवंति) एकसा व्यवहार करनेवाले होते है ॥ ३२ ॥

अथारण्ये क्वचिच्छ्रान्तो निषण्णो निरुपद्रवः ।
शरण्यं सर्वजीवानां पुण्यमेव हि नापरम् ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (श्रान्तः) थके हुए (क्वचिद् अरण्ये) किसी वनमें (निरुपद्रवः) उपद्रव रहित (निषण्णः) होकर बैठ गये । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (पुण्य एव सर्व जीवानां) पुण्य ही सब जीवोंका (शरण्यं) रक्षक है (अपरं न) और कोई नहीं ॥ ३३ ॥

तत्र चैकाकिनीं रामां पश्यन्नासीत्पराङ्मुखः ।
अपदोषानुषङ्गा हि करुणा कृतिसंभवा ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थः—(तत्र च) और उस वनमें जीवंधर कुमारने (एकाकिनीं रामां) अकेली एक स्त्रीको (पश्यन्) देख कर (पराङ्मुखः आसीत्) उधरसे मुंह फेर लिया। अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (कृतिसंभवा) विद्वानोंसे उत्पन्न (करुणा) दया (अपदोषानुषङ्गा) दोषोके संबंधसे रहित होती है।

भावार्थ—जिसमें किसी भी दोषकी आशङ्का न हो ऐसी दया विद्वान् लोग किया करते हैं ॥ ३४ ॥

सा तु जाता वृषस्यन्ती वृषस्कन्धस्य वीक्षणात् ।
अप्राप्ते हि रुचिः स्त्रीणां न तु प्राप्ते कदाचन ॥३५॥

अन्वयार्थः—(सा तु) और वह भी (वृषस्कंधस्य) बैलके समान श्रेष्ठ कंधेवाले पराक्रमी स्वामीके (वीक्षणात्) देखनेसे (वृषस्यन्ती जाता) कामसे पीड़ित हुई।

अर्थात्—उनसे विषय भोग करनेकी इच्छा करने लगी। अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (स्त्रीणां रुचिः) स्त्रियोंकी प्रीति (अप्राप्ते स्यात्) अप्राप्त पुरुषमें ही होती है (प्राप्ते) प्राप्त पुरुषमें (कदाचन न) कभी भी नहीं होती ॥ ३५ ॥

अश्वस्यन्तीं विभाव्यैनामाकूतज्ञो व्यरज्यत ।
अनुरागकृतज्ञानां वशिनां हि विरक्तये ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थः—(आकूतज्ञ.) परके अभिप्रायको जाननेवाले जीवंधर कुमारने (एनां अश्वस्यन्तीं) इसको पर पुरुषाभिलाषिणी

(विभाव्य) जानकर (व्यरज्यत) उससे विरक्त होगये । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अज्ञानां) मूर्ख पुरुषोंके (अनुरागकृत् वस्तु) अनुरागके करनेवाली वस्तु (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषोंके (विरक्तये) विरागके लिये (भवति) होती है ॥ ३६ ॥

पृथक्चेदङ्गनिर्माणं चर्ममांसमलादिकम् ।
सजुगुप्सेऽत्र तत्पुञ्जे मूढात्मा हन्त मुह्यति ॥३७॥

अन्वयार्थः—(चेत्) यदि (अङ्गनिर्माणं पृथक् स्यात्) शरीरकी रचना पृथक् पृथक् होवे तो फिर (चर्ममांसमलादिकम्) चमड़ा, मांस और मलादिकको (विहाय) छोडकर (अन्यत्) और कुछ भी (अवशिष्टं न भवेत्) शेष न रहे । (हन्त !) बडे खेदकी बात है कि तो भी (मूढात्मा) मूर्ख अज्ञानी पुरुष (सजुगुप्से) घृणा सहित (तत्पुञ्जे अत्र) चमडा और मांसादिकके ढेर रूप इस शरीरमें (मुह्यति) मोहित होते है ॥ ३७ ॥

दुर्गन्धमलमांसादिव्यतिरिक्तं विवेचने ।
नेक्षते जातु देहेऽस्मिन्मोहे को हेतुरात्मनाम् ॥३८॥

अन्वयार्थः—(विवेचने सति) भली भांति विचार करने पर (अस्मिन् देहे) इस शरीरमें (दुर्गन्धमलमांसादिव्यतिरिक्त) दुर्गन्ध मल मांसादिकके सिवाय (जातु न ईक्षते) और कुछ कभी भी दिखाई नहीं देता (तथापि) तो भी (आत्मनाम्) जीवोंका (अस्मिन् मोहे) इसके अंदर मोह है इसमे (कः हेतुः) क्या हेतु है ॥ ३८ ॥

अज्ञानमशुचेर्बीजं ज्ञात्वा स्थूलं च देहकम् ।
आत्मानं सस्पृहो वक्ति कर्माधीनत्वमात्मनः ॥३९॥

अन्वयार्थः—(अज्ञानम्) अज्ञान स्वरूप (अशुचेः बीजं) अपवित्र मल मूत्रादिकका कारण (व्यूहं) तर्कना रहित विचार शून्य (देहकम्) शरीरको (ज्ञात्वा अपि) जानकरके भी (अत्र सस्पृहः) इसमें इच्छा सहित (आत्मा) आत्मा (आत्मनः कर्माधीनत्वं वक्ति) अपने कर्माधीन पनेको कथन करता है ॥ ३९ ॥

मदीयं मांसलं मांसममीमांसेयमङ्गना ।
पश्यन्ती पारवश्यान्धा ततो याम्यात्मनेऽथवा ॥४०॥

अन्वयार्थः—(अमीमांसा) विचारशून्य (इयं अङ्गना) यह स्त्री (मांसलं मदीयं मांसं) बलवान् पुष्ट मेरे मांस (शरीर) को (पश्यन्ती) देखकर (पारवश्यान्धा) कामकी पराधीनतासे अन्ध (जाता) होगई । (ततः) इसलिये (अथवा) अथवा (आत्मने) अपनी आत्माके हितके लिये (अयामि) मैं जाता हूं ॥ ४० ॥

अङ्गारसदृशी नारी नवनीतसमा नराः ।
तत्तत्सांनिध्यमात्रेण द्रवेत्पुंसां हि मानसम् ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थः—(नारी) स्त्री (अङ्गार सदृशी) जलते हुए कोयलेके समान है और (नराः) मनुष्य (नवनीत समाः) नैनू अर्थात् तुरत निकले हुए घीके समान होते हैं (तत्तस्मात्) इसलिये (हि) निश्चयसे (तत् सांनिध्यमात्रेण) स्त्रियोंकी समीपता मात्रसे ही (पुंसां) पुरुषोंका (मानसम्) हृदय (द्रवेत्) पिघल जाता है॥ ४१ ॥

संलापवासहासादि तद्वर्ज्यं पापभीरुणा ।
बालया-वृद्धया मात्रा दुहित्रा वा व्रतस्थया ॥४२॥

अन्वयार्थः—(तत्तस्मात्) इसलिये (पापभीरुणा) पापसे डरनेवाले पुरुषोंको (बालया) जवान कन्यासे (वृद्धया) वृद्ध स्त्रीसे (मात्रा) मातासे (वा) अथवा (दुहित्रा) पुत्रीसे और (व्रतस्थया) व्रत पालन करनेवाली श्राविकासे (संलापवासहासादि) बोलना, साथमें रहना, और हंसी आदिक करना (वर्ज्यं) छोड़ देना चाहिये ॥ ४२ ॥

इति वैराग्यतर्केण ततो यातुं प्रचक्रमे ।
भेतव्यं खलु भेतव्यं प्राज्ञैरज्ञोचितात्परम् ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(इति वैराग्यतर्केण) इस प्रकार वैराग्योत्पादक विचारसे जीवधर स्वामी (ततः) वहांसे (यातुं) जानेके लिये (प्रचक्रमे) तैयार हुए । अत्र नीतिः ! (खलु) निश्चयसे (प्राज्ञैः) बुद्धिमान पुरुषोंको (अज्ञोचितात्) मूर्ख पुरुषोंके करने योग्य कार्योंसे (परम्) अत्यन्त (भेतव्य भेतव्य) डरना चाहिये ॥४३॥

विरक्तमेव रक्ता सा निश्चिकाय विपश्चितम् ।
निसर्गादिङ्गितज्ञानमङ्गनासु हि जायते ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थः—(रक्ता सा) आसक्त उस स्त्रीने (विपश्चितम्) पंडित जीवधरकुमारको अपनेमें (विरक्त एव) अत्यन्त विरक्त (निश्चिकाय) निश्चय किया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अङ्गनासु) स्त्रियोंमें (इङ्गित ज्ञानं) शरीरकी चेष्टासे मनके भावोंको जान लेनेका ज्ञान (निसर्गात् एव जायते) स्वभावसे ही उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥

**तस्य स्वान्तं वशीकर्तुं स्वोदन्तमियमूचिषी ।
प्रतारणविधौ स्त्रीणां बहुद्वारा हि दुर्मतिः ॥ ४५ ॥**

अन्वयार्थः—(इयं) इस स्त्रीने (तस्य) उसके (स्वान्तं) हृदयको (वशी कर्तु) वशमें करनेके लिये (स्वोदन्तं) अपना घृत्तान्त (ऊचिषी) कहा । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (स्त्रीणां) स्त्रियोंकी (दुर्मतिः) खोटी बुद्धि दूसरोंको (प्रतारण विधौ) ठगनेमें (बहुद्वारा भवति) अनेक द्वार वाली होती है ॥ ४५ ॥

**विद्धि दीनां महाभाग मां विद्याधरकन्यकाम् ।
स्यालेनात्र बलान्नीतां त्यक्तामात्मप्रियाभयात् ॥४६॥**

अन्वयार्थः—(महाभाग !) हे महाभाग ! (स्यालेन) मेरे भाईके सालेसे (बलात्) जबर्दस्तीसे (नीतां) लाई हुई (आत्मप्रिया भयात्) अपनी स्त्रीके भयसे (अत्र) यहां इस वनमे (त्यक्तां) छोड़ी हुई (मां) मुझ (दीनां) गरीबनीको (विद्याधर कन्यकां) विद्याधरकी कन्या (त्वं) तुम (विद्धि) समझो ॥ ४६ ॥

**अनङ्गतिलकां नाम्ना पुंसां तिलक रक्ष माम् ।
अशरण्यशरण्यत्वं वरेण्ये वर्ततामिति ॥ ४७ ॥**

अन्वयार्थः—(पुंसां तिलक) हे पुरुषोंके भूषण स्वरूप (नाम्ना अनङ्ग तिलकां माम्) अनङ्गतिलका नामकी मुझको (रक्ष) रक्षा करो । (अशरण्य शरण्यत्वं) जिनका कोई शरण नहीं है उनका शरण पना (वरेण्ये) पुरुषोंमें श्रेष्ठ आपमें (वर्ततां) होवे ? । (इति) ऐसा उस स्त्रीने कहा ॥ ४७ ॥

तावदार्तस्वरः कोऽपि शुश्रुवे श्रुतशालिना।
क प्रयाता प्रिये प्राणा मम यान्तीति दुःसहः ॥४८॥

अन्वयार्थः—(तावद्) इतने ही में (श्रुत शालिना) शास्त्रमें प्रवीण उन जीवंधरकुमारने (हे प्रिये) हे प्यारी (क) कहां (प्रयाता) चली गई (मम) मेरे (प्राणाः) प्राण (यान्ति) निकले जाते हैं " (इति) इस प्रकार (कः अपि) कोई (दुःसहः) दुःसह (आर्त-स्वरः) दुखी पुरुषका शब्द (शुश्रुवे) सुना ॥ ४८ ॥

योषाप्येषा मिषेणास्मान्निमेषादिव निर्ययौ ।
मायामयी हि नारीणां मनोवृत्तिर्निसर्गतः ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थः—(एषा) यह (योषा) स्त्री (अपि) भी (मिषेण) किसी बहानेसे (अस्मात्) इन जीवंधरकुमारके पाससे (निमे-षात् इव) क्षण मात्रमें ही (निर्ययौ) चली गई । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (नारीणां) स्त्रियोंकी (मनोवृत्तिः) चित्तवृत्ति (निसर्गतः) स्वभावसे ही (मायामयी) छलकपट करनेवाली (भवति) होती है ॥ ४९ ॥

आर्त्तस्वरकरोऽप्याह दैन्यं मान्यस्य वीक्षणात् ।
शोच्याः कथं न राशांधा ये तु वाच्यान्न बिभ्यति॥५०॥

अन्वयार्थ —(आर्तस्वरकरः अपि) दुःखित शब्दको करने-वालेने भी (मान्यस्य) माननीय जीवंधरके (वीक्षणात्) देखनेसे (दैन्य) दीनतापूर्वक (आह) कहा । (ये तु) जो पुरुष (वाच्यात्) अपवादसे व निंदासे (न) नहीं (बिभ्यति) डरते हैं (ते)

वे (रागान्धाः) रागसे अन्धे पुरुष (कथं) कैसे (न शोच्याः) शोचनीय नहीं होते । अर्थात् शोचनीय होते ही हैं ॥ ९० ॥

उदन्योपद्रुतामत्र मान्य भार्यां पतिव्रताम् ।
पानीयार्थमवस्थाप्य नाद्राक्षं प्रस्थितागतः ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थः—(मान्य !) हे माननीय ! (अहं) मैं (उदन्योपद्रुतां) प्याससे व्याकुल (पतिव्रताम् भार्यां) पतिव्रता अपनी स्त्रीको (अत्र) यहां पर (अवस्थाप्य) विठला कर (पानीयार्थं) पानीके लिये (प्रस्थितागतः) जाकर आया हुवा (न अद्राक्षम्) नहीं देखता हूं ॥ ९१ ॥

विद्याप्यविद्यमानैव मम विद्याधरोचिता ।
मर्त्योत्तम भवानत्र कर्तव्यं कथयेदिति ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थः—(मर्त्योत्तम !) हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! (मम) मेरी (विद्याधरोचिता) विद्याधरोंके लिये उचित (विद्या अपि) बुद्धि भी (अविद्यमाना इव) अविद्यमानके सदृश हो गई । अर्थात् स्त्रीके वियोगसे मैं अपनी सब विद्याएँ भूल गया । (भवान्) आप (अत्र) इस विषयमें (कर्तव्यं) करने योग्य उपायको (कथयेत्) कहिये ॥ (इति) ऐसा उस विद्याधरने कहा ॥ ९२ ॥

पुरन्ध्रीष्वतिसंधानादभैषीदभयंकरः ।
वचनीयाद्धि भीरुत्वं महतां महनीयता ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थः—(अभयंकरः) भय नहीं करनेवाले जीवंधर कुमार (पुरन्ध्रीषु) स्त्रियोंमें (अति संधानात्) अत्यन्त प्रेम करनेसे (अभैषीत्) डर गये । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे

(वचनीयात् भीरुत्वं) निंद्यनीक, बुरी बातोंसे डरफोकपना (महतां) बड़े पुरुषोंका (महनीयता) बड़प्पन है ॥ ९३ ॥

नभश्चरं पुनश्चैनं सविपश्चिदबोधयत् ।
अपश्चिमफलं वक्तुं निश्चितं हि हितार्थिनः ॥९४॥

अन्वयार्थः—(पुनः) फिर (सः विपश्चिद्) उन पण्डित जीवंधरने (एनं नभश्चर) इस विद्याधरको (अबोधयत्) समझाया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (हितार्थिनः) दूसरोंका हित करनेवाले पुरुष (निश्चितम्) निश्चयसे (अपश्चिम फल) सर्वोत्तम है फल जिसका ऐसी बातको (वक्तु) कहनेके लिये (इच्छंति) इच्छा करते हैं ॥ ९४ ॥

भवदत्त मुधार्तोऽसि विद्यवित्तो भवन्नपि ।
न विद्यते हि विद्यायामगम्यं रम्यवस्तुषु ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थः—(भवदत्त) हे भवदत्त ! (त्वं) तू (विद्यावित्तः) विद्यारूपी धनवाला (भवन् अपि, होता हुआ भी क्यों (मुधा) व्यर्थ (आर्तः असि) दुःखी हो रहा है। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (विद्यायां सत्यां) विद्याके होने पर (रम्य वस्तुषु) सुन्दर पदार्थोंमें (अगम्यं) दुष्प्राप्य (न विद्यते) कुछ भी नहीं है ॥९५॥

नभश्चर न कश्चित्स्याद्विपश्चिदविपश्चितोः ।
विनिश्चलशुचोर्भेदो यतश्चन कुतश्चन ॥ ९६ ॥

अन्वयार्थः—(नभश्चर !) हे विद्याधर (यतश्च कुतश्चन) इधर उधरसे (विपत्तौ सत्यां) विपत्ति आजाने पर (विनिश्चल शुचोः) निश्चल रहना और शोक करना इसके सिवाय (विपश्चिद्

अविपश्चितोः) विद्वान् और मूर्खमें (कश्चित् भेदः न) और कुछ भी भेद नहीं है ॥ ९६ ॥

परं सहस्रधीभाजि स्त्रीवर्गे का पतिव्रता ।
पातिव्रत्यं हि नारीणां गत्यभावे तु कुत्रचित् ॥९७॥

अन्वयार्थः—(पर) केवल (सहस्रधीभाजिस्त्रीवर्गे) हजारों प्रकारकी बुद्धिको करनेवाली स्त्री समूहमें (का पतिव्रता) पातिवृत्य धर्म कहांसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता (हि) निश्चयसे (कुत्रचित्) कहीं पर (गत्यभावे तु) जाने आनेके अभावमें ही (नारीणां पातिवृत्यं भवेत्) स्त्रियोंका पातिवृत्यपना रह सक्ता है ॥ ९७ ॥

मदमात्सर्यमायेर्ष्यारागरोषादिभूषिताः ।
असत्याशुद्धिकौटिल्यशाठ्यमौढ्यधनाः स्त्रियः ॥९८॥

अन्वयार्थः—(स्त्रियः) स्त्रियां (मदमात्सर्यमायेर्ष्यारागदोषादि भूषिताः) घमंड, डाह, छल कपट, प्रीति, विरोध और क्रोध इनसे भूषित और (असत्याशुद्धिकौटिल्यशाठ्यमौढ्यधनाः) झूठ, अपवित्रता, कुटिलता, शठता और मूर्खता ये हैं धन जिसके ऐसी होती हैं ॥ ९८ ॥

निर्घृणे निर्द्रवे क्रूरे निर्व्यवस्थे निरङ्कुशे ।
पापे पापनिमित्ते च कलत्रे ते कुतः स्पृहा ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थः—(निर्घृणे) घृणा रहित, (निर्द्रवे) दया हीन, (क्रूरे) दुष्ट (निर्व्यवस्थे) अव्यवस्थित, (निरङ्कुशे) स्वतन्त्र, (पापे) पाप रूप (च) और (पाप निमित्ते) पापकी कारणी भूत (कलत्रे) स्त्रीमें (ते स्पृहा) तेरी इच्छा (कुतः भवेत्) कैसे होती है ॥९९॥

इत्युपादिष्टमेतस्य हृदये नासजत्तराम् ।
जठरे सारमेयस्य सर्पिषो न हि सञ्जनम् ॥ ६० ॥

अन्वयार्थः—(इति उपादिष्टं) इस प्रकार यह उपदेश (एत-स्य हृदये) इस विद्याधरके मनमें (न असजेत्तराम्) नहीं लगा। अर्थात् उसके हृदयमे जीवंधर स्वामीके उपदेशने कुछ भी असर नहीं किया । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (सारमेयस्यजठरे) कुत्तेके पेटमे (सर्पिषो सञ्जनं न भवति) घीका ठहरना नहीं होता है। ॥ ६० ॥

स्वामी तु तस्य मौर्ख्येन सुतरामन्वकम्पत ।
उत्पथस्थे प्रबुद्धानामनुकम्पा हि युज्यते ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थः— (तु) किन्तु (स्वामी) जीवंधर स्वामी (तस्य) उसकी (मौर्ख्येन) मूर्खता पर (सुतरा) स्वयं (अन्वकम्पत) अत्यंत दयायुक्त हुए । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (उत्पथस्थे) खोटे मार्गमे चलने वाले मनुष्यों पर (प्रबुद्धानां) बुद्धिमान पुरुषोंका (अनुकम्पा) दया करना ही (युज्यते) युक्त है ॥ ६१ ॥

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य कमप्यारामसाश्रयत् ।
अदृष्टपूर्वदृष्टौ हि प्रायेणोत्कण्ठते मनः ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनतर (तस्मात्) उस स्थानसे (विनिर्गत्य) निकलकरके जीवंधर स्वामीने (कमपि) किसी (आरामं) बगीचेको (आश्रयत्) प्राप्त किया। अर्थात्—वे किसी बगीचेमें पहुचे । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (अदृष्टपूर्वदृष्टौ) पहले नहीं देखी हुई वस्तुके देखनेमें (प्रायेण) बहुत करके (मन. उत्कंठते) मन उत्कंठित हुआ करता है ॥ ६२ ॥

तत्राम्रफलमाक्रष्टुं धनुषा कोऽपि नाशकत् ।
अशक्तैः कर्तुमारब्धं सुकरं किं न दुष्करम् ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थः—(तत्र) उस बगीचेमें (कः अपि) उस देशके राज कुमारोंमेंसे कोई भी राजकुमार (धनुषा) धनुषसे (आम्रफलं) किसी भी आम्र फलको आक्रष्टुं) गिरानेके लिये (न अशकत्) समर्थ नहीं हुआ। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (अशक्तैः) असमर्थ पुरुषोंसे (कर्तुं आरब्धं) करनेके लिये आरंभ किया हुआ (सुकरं) सरल काम भी (कि दुष्करम् न) क्या दुःसाध्य नहीं होता है किन्तु दुःसाध्य होता ही है ॥ ६३ ॥

स्वामी तु तत्फलं विद्धमादत्त सशिलीमुखम् ।
तत्तन्मात्रकृतोत्साहैः साध्यते हि समीहितम् ॥६४॥

अन्वयार्थः—(तु) परन्तु (स्वामी) जीवधर स्वामीने (विद्धं-तत्फल) बाणसे छेदित उस फलको (सशिलीमुखम्) बाण सहित (आदत्त) ग्रहण कर लिया। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (तत्तन्मात्र कृतोत्साहैः) प्रत्येक कार्यमें उत्साह व निपुणता युक्त पुरुष ही (समीहितम्) इच्छित कार्यको (साध्यते) सफल कर लिया करते हैं ॥ ६४ ॥

अपराद्धपृषत्कोऽपि दृष्ट्वा व्यस्मेष्ट तत्कृतिम् ।
अपदानमशक्तानामद्भुताय हि जायते ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थः—(अपराद्धपृषत्कोऽपि) लक्ष्यसे च्युत है बाण जिसका ऐसा कोई राजकुमार भी (तत्कृतिम् दृष्ट्वा) जीवंधर स्वामीकी बाण निपुणताको देखकर (व्यस्मेष्ट) अत्यंत आश्चर्य युक्त

नहीं हुआ। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (अपदान) स्वयं जिसको न कर सके ऐसा उत्तम कार्य दूसरेसे कर देने पर (अशक्तानां) अशक्त पुरुषोंको (अद्भुताय) आश्चर्यके लिये (जायते) होता है ॥६५॥

स्वामिनोऽयं स्ववृत्तांतं सकातर्यं समभ्यधात् ।
संनिधाने समर्थानां वराको हि परो जनः ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थः—(अयं) जिसका बाण खाली गया उस राजकुमारने (स्वामिनः) जीवंधर स्वामीसे (सकातर्यं) दीनतापूर्वक डरते हुए (स्ववृत्तान्तं) अपना वृत्तान्त (समभ्यधात्) कहा। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (समर्थानां) समर्थ बड़े पुरुषोंके (संनिधाने) अगाडी (परो जनः) असमर्थ दूसरा मनुष्य (वराकः भवति) तुच्छ दीन हो जाता है ॥ ६६ ॥

कर्तव्यं वा न वा प्रोक्तं मया कार्मुककोविद ।
कर्णकट्वपि मद्वाक्यमाकर्णयितुमर्हसि ॥ ६७ ॥

अन्वयार्थः—(हे कार्मुककोविद !) हे धनुष विद्यामें प्रवीण ! (मया प्रोक्तं) मेरेसे कहा हुआ (कर्तव्य) करने योग्य है (वा न वा) अथवा नही (किन्तु कर्णकटु अपि) किन्तु कानोंको अप्रिय भी (मद्वाक्यं) मेरे वचन (आकर्णयितुं अर्हसि) आप सुने ॥ ६७ ॥

एतन्मध्यमदेशस्था हेमाभा स्यादियं पुरी ।
क्षत्रियो दृढमित्रः स्यात्तत्प्रिया नलिनाह्वया ॥६८॥

अन्वयार्थः—(एतन्मध्यमदेशस्था) इस मध्य देशमें स्थित (इयं) यह (हेमाभा) हेमाभा नामकी (पुरी) पुरी (स्यात्)

है उसका राजा (दृढमित्रः क्षत्रियः) दृढमित्र नामका क्षत्रि है (तत्प्रिया नलिनाह्वयः स्यात्) और उसकी स्त्रीका नाम नलिना है ॥ ६८ ॥

सुमित्राद्यास्तयोः पुत्रास्तेष्वप्यन्यतमोऽस्म्यहम् ।
वयसैव वयं पक्का विश्वेऽपि न तु विद्यया ॥ ६९ ॥

अन्वयार्थः—और (तयो) उन दोनोंके (सुमित्राद्याः पुत्राः अभूवन्) सुमित्र आदि कई पुत्र हैं। (तेषु) उनमेंसे (अहं) मै भी (अन्यतमः अस्मि) एक हूं (वयं विश्वेऽपि) हम सब (वयसा एव पक्का) उम्रसे ही बड़े हो गये (तु) परन्तु (न विद्यया) विद्यासे बड़े नहीं हैं ॥ ६९ ॥

तातपादोऽयमस्माकं चापविद्याविशारदम् ।
विचिनोति न चेद्दोष एषोऽप्यालोक्यतामिति ॥७०॥

अन्वयार्थः—(अस्माकं) हमारे (अयम् तातपादः) यह पूज्य पिता (चापविद्याविशारदम्) धनुर्विद्यामें पण्डित पुरुषको (विचिनोति) खोज रहे हैं। (चेत्) यदि (दोषः न) आप कुछ दोष न समझें तो (एषः अपि) इनको भी (आलोक्यतां) देखें अर्थात् उनसे मिलें ॥ (इति) ऐसा कुमारने कहा ॥ ७० ॥

तद्व्याहारे विसंवादो विदुषोऽप्यस्य नाजनि ।
विधिर्घटयतीष्टार्थैः स्वयमेव हि देहिनः ॥ ७१ ॥

अन्वयार्थः—(तद्व्याहारे) उस कुमारके कथनमें (अस्य विदुषः अपि) इन विद्वान् जीवंधरको भी (विसंवादः) कुछ भी विरोध (न अजनि) नहीं हुआ। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे

(विधिः) कर्म (देहिनः) देहधारी मनुष्योंको (स्वयमेव) अपने आप ही (इष्टार्थैः) इष्ट पदार्थोंसे (घटयति) सम्बन्ध करा देता है ॥ ७१ ॥

पार्थिवं च ततः पश्यंस्तद्वश्योऽभूच्च संमतेः ।
अनुसारप्रियो न स्यात्को वा लोके सचेतनः ॥७२॥

अन्वयार्थः—(ततः) तदनंतर जीवंधर कुमार (पार्थिवं पश्यन्) राजाको देखकर (संमतेः) उनके आदर सन्मान करनेसे (तद्वश्यः) उनके वशीभूत (अभूत्) हो गये । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (लोके) लोकमें (को वा) कौन (सचेतनः) सचेतन प्राणी (अनुसारप्रियः न स्यात्) अपने अनुकूल मनुष्यमें प्रेम करनेवाला नही होता है ॥ ७२ ॥

महीक्षिता क्षणात्तस्य माहात्म्यमपि वीक्षितम् ।
वपुर्वक्ति हि सुव्यक्तमनुभावमनक्षरम् ॥ ७३ ॥

अन्वयार्थः—(महीक्षिता अपि) राजाने भी (क्षणात्) क्षण मात्रमें (तस्य माहात्म्य) उसका माहात्म्य अर्थात् बड़प्पन (वीक्षितम्) देख लिया अत्रनीतिः । (हि) निश्चयसे (वपुः) शरीर (अनुभावं) मनुष्यके प्रभावको (अनक्षरम्) विना शब्द कहे हुए ही (सुव्यक्तं) स्पष्ट (वक्ति) कथन कर देता है ॥ ७३ ॥

सुतविद्यार्थमत्यर्थं पार्थिवस्तमयाचत ।
आराधनैकसंपाद्या विद्या न ह्यन्यसाधना ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थः—(पार्थिवः) राजाने (सुतविद्यार्थं) अपने पुत्रोंको विद्या सिखानेके लिये (तं) उनसे (अत्यर्थं) अत्यन्त (अयाचत)

प्रार्थना की । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (विद्या) विद्या (आराधनैक संपाद्या) गुरूकी आराधना (सेवाशुश्रूषा) से ही प्राप्त होती है (अन्यसाधना न) और दूसरे साधनोंसे नहीं ॥ ७४ ॥

अभ्यर्थनबलात्तस्य कुमारोऽप्यभ्युपागमत् ।
स्वयं देया सती विद्या प्रार्थनायां तु किं पुनः ॥७५॥

अन्वयार्थः—(तस्य अभ्यर्थनबलात्) उस राजाके बार २ प्रार्थना करनेसे (कुमारः अपि) जीवंधर कुमारने भी (अभ्युपागमत्) उन राज कुमारोंको विद्या पढ़ाना स्वीकार किया । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (सती विद्या) समीचन निर्दोष विद्या जब (स्वयं देया) अपने आप ही देने योग्य है । (प्रार्थनायां तु) प्रार्थना करने पर तो (पुनः) फिर (कि वक्तव्यं) कहना ही क्या है ॥ ७५ ॥

पवित्रोऽपि सुतान्विद्यां स प्रापयदवञ्चितम् ।
कृतार्थानां हि पारार्थ्यमैहिकार्थपराङ्मुखम् ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थः—(सः पवित्रः अपि) पवित्र उन जीवंधर कुमारने भी (सुतान्) उन राजाके कुमारोंको (अवञ्चितं विद्यां प्रापयत्) सच्चे हृदयसे विद्या सिखाई । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (कृतार्थानां) कृतकृत्य पुण्यवान् पुरुषोंका (पारार्थ्य) परोपकार करना ही (ऐहिकाथ पराङ्मुखम्) इस लोक संबंधी प्रयोजनसे रहित होता है ॥ ७६ ॥

प्रश्रयेण बभूवुस्ते प्रत्यक्षाचार्यरूपकाः ।
विनयः खलु विद्यानां दोग्ध्री सुरभिरञ्जसा ॥७७॥

अन्वयार्थः—(ते) वे राजकुमार (प्रश्रयेण) जीवंधर गुरुकी विनय करनेसे (प्रत्यक्षाचार्य रूपकाः बभूवुः) धनुष विद्यामें साक्षात् जीवंधर स्वामीके समान होगये । अत्र नीतिः । (खलु) निश्चयसे (अञ्जसा विनयः) यथार्थ गुरुका विनय (विद्यानां) विद्याओंको (दोग्ध्री) देनेवाली (सुरभिः) सच्ची कामधेनु है ॥ ७७ ॥

वीक्ष्य तानतृपद्भूपो विद्यानां पारदृश्वनः
पुत्रमात्रं मुदे पित्रोर्विद्यापात्रं तु किं पुनः ॥ ७८ ॥

अन्वयार्थः—(भूपः) राजा (विद्याना पारदृश्वनः) विद्यामें पारगामी (तान्) उन पुत्रोंको (वीक्ष्य) देखकर (अतृपत्) अत्यन्त प्रसन्न हुए । अत्र नीतिः । ठीक ही है (पित्रोः) माता पिताको (पुत्र मात्रं) पुत्र मात्र ही (मुदे) हर्षके लिये होता है फिर यदि वह (विद्यापात्र) विद्याका पात्र हो तो (किं पुनः वक्तव्यं) फिर कहना ही क्या है ॥ ७८ ॥

अतिमात्रं पवित्रं च धात्रिपः समभावयत् ।
असंभावयितुर्दोषो विदुषां चेदसंमतिः ॥ ७९ ॥

अन्वयार्थः—फिर (धात्रिपः) राजाने (पवित्रं) पवित्र जीवंधर स्वामीका (अतिमात्रं) अत्यंत (समभावयत्) सन्मान किया (चेत्) यदि (विदुषां) विद्वानोका (असंमतिः न स्यात्) सन्मान न होवे तो (असंभावयितुः) इसमें सन्मान नहीं करनेवालेका ही (दोषः) दोष है ॥ ७९ ॥

महोपकारिणः किं वा कुर्यामित्यप्यतर्कयत् ।
विद्याप्रदायिनां लोके का वा स्यात्प्रत्युपक्रिया ॥८०॥

अन्वयार्थः—(महोपकारिणः) महान् उपकारी (अस्य) इसका (अहं किं वा कुर्याम्) मैं क्या उपकार करूं (इति सः अतर्कयत्) इस प्रकार उसने बिचार किया । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (लोके) इस संसारमें (विद्याप्रदायिनां) विद्यादान करने वालोंका (कावा) क्या (प्रत्युपक्रिया) प्रत्युपकार (स्यात्) हो सकता है ॥८०॥

कन्याविश्राणनं तस्मै करणीयमजीगणत् ।
शक्यमेव हि दातव्यं सादरैरपि दातृभिः ॥८१॥

अन्वयार्थः—फिर (सः) उस राजाने (तस्मै) उन जीवंधर कुमारके लिये (कन्याविश्राणन) अपनी कन्याका दे देना (करणीय) कर्तव्य (अजीगणत्) निश्चय किया । अत्रनीति. । (हि) निश्चयसे (सादरैः) आदर सहित (दातृभिः) दाताओंको (अपि) भी (शक्य-मेव) अपने लिये शक्य ही (दातव्यं) दान करना चाहिये ॥८१॥

अभ्युपाजीगमत्पुत्रीं परिणेतुममुं पुनः ।
उदाराः खलु मन्यन्ते तृणायेदं जगत्त्रयम् ॥८२॥

अन्वयार्थः—(पुनः) फिर वह राजा (पुत्रीं परिणेतुं) पुत्रीको व्याह देनेके लिये (अमुम्) जीवंधर स्वामीके पास (अभ्युपाजी-गमत्) आया । अत्र नीतिः । (खलु) निश्चयसे (उदाराः) उदार पुरुष (इदं जगत्त्रयम्) इस जगत्त्रयको (तृणाय) तृणके समान (मन्यन्ते) मानते हैं ॥ ८२ ॥

ततः कनकमालाख्यां कन्यां राज्ञा समर्पिताम् ।
पर्यणैषीत्पवित्रोऽयं पवित्रामग्निसाक्षिकम् ॥ ८३ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (अयं पवित्रः) इन पवित्र जीवंधर स्वामीने (राज्ञा समर्पिताम्) राजासे प्रदान की हुई (पवित्रां) पवित्र (कनकमालाख्यां) कनकमाला नामकी (कन्यां) कन्याको (अग्निसाक्षिकम्) अग्निकी साक्षी पूर्वक (पर्यणैषीत्) ब्याहा ॥ ८३ ॥

इति श्रीमद्वादीभसिंह सूरि विरचिते क्षत्रचूडामणौ सान्वयार्थः कनकमाला लम्भो नाम सप्तमो लम्ब ॥

ॐ

अथ अष्टमो लम्बः ।

अथ तत्करपीडान्तेऽसक्तस्वान्तोऽभवत्सुधीः ।
तीरस्थाः खलु जीवन्ति न हि रागाब्धिगाहिनः ॥१॥

अन्वयार्थः—(अथ) फिर (तत्करपीडान्ते) कनकमालाके विवाहके अनंतर (सुधीः) बुद्धिमान् जीवंधर स्वामी (असक्तस्वान्तः) उसमें अतिशय अनुराग युक्त नहीं (अभवत्) हुए । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (तीरस्थाः) रागसमुद्रके तट परस्थित पुरुष ही (जीवन्ति) जीते हैं किन्तु (खलु रागाब्धिगाहिनः) विषय रूपी रागसमुद्रमें अवगाहन करनेवाले (न जीवति) नहीं जीते हैं अर्थात् संसारमें वही पुरुष सुखी है जो विषय भोगोंकी तृष्णासे अलग रहते हैं, उनमें फंसे हुए नहीं रहते ॥ १ ॥

स्यालानां तत्र वात्सल्यादवात्सीत्सुचिरं सुधीः ।
वत्सलेषु च मोहः स्याद्वात्सल्यं हि मनोहरम् ॥२॥

अन्वयार्थः—(तत्र) उस हेमाभा नगरीमें (सुधीः) बुद्धिमान जीवंधर कुमार (स्यालानां) अपने सालोंके (वात्सल्यात्) प्रेमसे (सुचिर) चिरकाल तक (अवात्सीत्) स्थित रहे । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे वत्सलेषु) प्रेमियोंमें (मोहः स्यात्) मोह हो ही जाता है क्योंकि (वात्सल्यं) प्रेमभाव (मनोहरम्) मनको हरनेवाला (भवति) होता है ॥ २ ॥

यापितोऽपि महाकालस्तस्य नोद्वेगमातनोत् ।
वत्सलैः सह संवासे वत्सरो हि क्षणायते ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(यापितः अपि) बीते हुए भी (महाकालः) बहुत समयने (तस्य) उस जीवंधर कुमारके (उद्वेग.) कुछ भी खेद भाव (न आतनोत्) नहीं किया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (वत्सलैः सह) प्रेमियोंके साथ (संवासे) रहनेमें (वत्सरः अपि) एक वर्ष भी (क्षणायते) क्षणके समान बीत जाता है ॥ ३ ॥

कदाचित्कापि तत्प्रान्तं समन्दस्मितमासदत् ।
नैसर्गिकं हि नारीणां चेतः संमोहि चेष्टितम् ॥४॥

अन्वयार्थः—(कदाचित्) एक दिन (कापि) कोई स्त्री (तत्प्रान्तं) उनके समीप (समन्दस्मितम्) कुछ हंसती हुई (आसदत्) पहुँची (अत्र नीतिः) ! (हि) निश्चयसे (नारीणां) स्त्रियोंकी (चेष्टितम्) चेष्टाए (नैसर्गिकम्) स्वभावसे ही (चेतः संमोहि) चित्तको मोहित करनेवाली होती हैं ॥ ४ ॥

अप्राक्षीत्तां च साकूतां किमायातेति सादरः ।
विवक्षालिङ्गितं हि स्यात्प्रष्टुः प्रश्नकुतूहलम् ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(सादरः कुमार·) आदर सहित कुमारने "(किम्·आयाता) तुम यहां क्यों आई" (इति) इस प्रकार (साकूतां ता) किसी मतलबसे आई हुई उस स्त्रीसे (अप्राक्षीत्) पूछा। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (प्रष्टुः) पूछनेवालेका (प्रश्नकुतूहलम्) प्रश्नमें कुतूहल (विवक्षालिङ्गितम्) कुछ कहनेकी इच्छासे युक्त (स्यात्) होता है ॥ ५ ॥

अत्र चायुधशालायां चैकदैवाविशेषतः ।
स्वामिन्स्वामिनमद्राक्षमित्यसौ प्रत्यभाषत ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(असौ) उस स्त्रीने "(स्वामिन् !) हे स्वामी ! (अत्र) यहां पर (च) और (आयुधशालायां) आयुधशालामें (एकदा एव) एक ही समयमें (स्वामिनं) आपको (अविशेषतः) एक रूपसे (अद्राक्षम्) देखा है" (इति) इस प्रकार (प्रत्यभाषत) प्रत्युत्तर दिया ॥ ६ ॥

अतिमात्रं पवित्रोऽयमचित्रीयत तच्छ्रुतेः ।
अयुक्तं खलु दृष्टं वा श्रुतं वा विस्मयावहम् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(अयं पवित्रः) पवित्र जीवंधर कुमार (तच्छ्रुतेः) उसकी बात सुननेसे (अतिमात्रं) अत्यन्त (अचित्रीयत) आश्चर्य युक्त हुए । अत्र नीतिः (खलु) निश्चयसे (दृष्टं) देखी हुई (वा) अथवा (श्रुतं वा) सुनी हुई (अयुक्तं) अनहोनी बात (विस्मयावहम्) आश्चर्य करनेवाली होती है ॥ ७ ॥

नन्दाढ्यः किमिहायात इत्ययं पुनरौहत ।
संसारविषये सद्यः स्वतो हि मनसो गतिः ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(पुनः) फिर (अयं) इन जीवंधर कुमारने "(किम्) क्या (इह) यहां (नंदाढ्यः) मेरा छोटा भाई नंदाढ्य (आयात) आ गया है" (इति) इस प्रकार (औहत) विचार किया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (संसारविषये) संसारके विषयोंमें (मनसो गतिः) मनकी प्रवृत्ति (सद्यः) शीघ्र ही (स्वतः) अपने आप (स्यात्) हो जाती है ॥ ८ ॥

प्रागेव तन्मनोवृत्तेः प्रययौ तत्र तद्वपुः ।
आस्थायां हि विना यत्नमस्ति वाक्कायचेष्टितम् ॥९॥

अन्वयार्थः—(तत्र) उस आयुध शालामें (तद् वपुः) उन जीवंधरस्वामीका शरीर (तन्मनोवृत्तेः) उनके मनके व्यापारसे प्राग् एव) पहले ही (प्रययौ) नंदाढ्यके प्रेमके कारण पहुंच गया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (आस्थायां सत्यां) किसी वस्तुकी आस्था रहने पर (यत्नं विना) विना यत्नके भी (वाक्कायचेष्टितम्) बचन और शरीरकी चेष्टा (अस्ति) हो जाती है ॥ ९ ॥

गत्वा तत्र च नन्दाढ्यं पश्यन्संमदसादभूत् ।
भ्रातुर्विलोकनं प्रीत्यै विप्रयुक्तस्य किं पुनः ॥ १० ॥

अन्वयार्थ —(तत्र च गत्वा) और वहां जाकर जीवधर स्वामी (नदाढ्य) नंदाढ्यको (पश्य) देख (संमदसात् अभूत) अत्यन्त प्रसन्न हुए। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (भ्रातुः) भाईका (विलोकनं) देखना ही (प्रीत्यै) प्रीतिके लिये (भवति) होता है (विप्रयुक्तस्य) विछुड़े हुएका तो (कि पुनः वक्तव्यं) फिर कहना ही क्या है। अर्थात् विछुडे हुए भाईका मिलना अत्यन्त हर्षका करनेवाला होता है ॥ १० ॥

अनुजोऽपि तमालोक्य मुमुचे दुःखसागरात् ।
विस्मृतं हि चिरं भुक्तं दुःखं स्यात्सुखलाभतः ॥११॥

अन्वयार्थः—(अनुजः अपि) छोटा भाई भी (तं) उन जीवंधर अपने बडे भाईको (आलोक्य) देखकर (दुःखसागरात्) दुःख रूपी समुद्रसे (मुमुचे) पार होगया। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (चिरभुक्तं) चिरकाल तक भोग किये हुए (दुःखं) दुःखका (सुखलाभतः) सुख मिलनेके अनंतर (विस्मृतं) विस्मरण (स्यात्) होजाता है ॥ ११ ॥

कथमाया इति ज्यायानन्वयुङ्क्त मिथोऽनुजम् ।
वञ्चनं चावमानं च न हि प्राज्ञैः प्रकाश्यते ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(ज्यायान्) बड़े भाई जीवंधर कुमारने (अनुजम्) छोटे भाईसे (मिथः) एकांतमें "(त्वं) तुम यहां (कथं) कैसे (आयाः) आये" (इति) इस प्रकार (अन्वयुङ्क्त) पूछा । अत्र नीति ! (हि) निश्चयसे (प्राज्ञैः) बुद्धिमान पुरुष (वञ्चनं) अपने ठगाये जानेको (च) और (अवमानं च) अपने निरादरको (न प्रकाश्यते) प्रकाशित नहीं करते हैं ॥ १२ ॥

सखेदं ध्यातदुःखोऽयमाचख्यौ वृत्तिमात्मनः ।
ध्यातेऽपि हि पुरा दुःखे भृशं दुःखायते जनः ॥१३॥

अन्वयार्थः—(ध्यातदुःखः) ध्यान किया है पहले दुःखका जिसने ऐसे (अयं) इस नंदाढ्यने (आत्मन) अपना (वृत्तिं) सारा वृत्तांत (सखेदं) खेद सहित (आचख्यौः) कह दिया। अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (पुरा) पहले (दुःखे ध्याते अपि) दुःखका ध्यान करने पर भी (जनः) मनुष्य (भृशं) अत्यन्त (दुःखायते) दुःखी होता है ॥ १३ ॥

पूज्यपाद तदास्माकं पापाद्भवति निर्गते ।
मृतकल्पोऽप्यहं मर्तुं सर्वथा समकल्पयम् ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(पूज्यपाद !) हे पूज्यपाद ! (तदा) उस समय (अस्माकं) हमारे (पापात्) पापके उदयसे (भवति) आपके (निर्गते सति) यहां चले आने पर (मृतकल्पः अपि) मरे हुएके समान भी (अहं) मैंने (सर्वथा मर्तुं) सर्व प्रकारसे मरनेके लिये (समकल्पयत) संकल्प कर लिया ॥ १४ ॥

विद्याविदितवृत्तान्ता कथंवृत्ता प्रजावती ।
इत्यालोच्यैव संस्थाने बोधो मे समजायत ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(विद्याविदितवृत्तान्ता) फिर विद्याके बलसे सब वृत्तान्तको जाननेवाली (प्रजावती) मेरी भावज (आपकी गन्धर्वदत्ता)का (कथंवृत्ता) क्या समाचार है (इति) इस प्रकार विचार करके (संस्थाने) योग्य समयमें (मे बोधः) मुझे ज्ञान (समजायत) उत्पन्न हो गया ॥ १५ ॥

एवं भाविभवद्दृष्टिशंभरत्वादहं पुनः ।
प्रजावतीगृहं प्राप्य सविषादमवास्थिषम् ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ.—(पुनः) फिर (एवं) इस प्रकार (भाविभवद्दृष्टि शंभरत्वात्) भाविमें आपके दर्शन रूपी सुखकी आशासे (अहं) मैं (प्रजावतीगृहं प्राप्य) मै गन्धर्वदत्ताके घर जाकर वहां (सविषादम्) खेद करता हुआ (अवास्थिषम्) बैठगया ॥ १६ ॥

स्वामिनि स्वामिहीनानां कुतः स्त्रीणां सुखासिका ।
इति वक्तुमुपक्रान्ते हृदयज्ञा तु साभ्यधात् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ.—(हे स्वामिनि !) हे स्वामिनि ! (स्वामिहीनानां) अपने स्वामी (निजपति) के विना (स्त्रीणां) स्त्रियोंकी (सुखासिका) सुखपूर्वक स्थिति (कुतः) कैसे (स्यात्) हो सकती है (इति) इस प्रकार (वक्तुं) कहनेके लिये (उपक्रान्ते) मै प्रारम्भ करनेवाला ही था (तु) कि (हृदयज्ञा) हृदयकी बात जाननेवाली उस गन्धर्वदत्ताने (अभ्यधात) कहा ॥ १७ ॥

अङ्ग किं खिद्यसे ज्यायाननुपद्रव एव ते ।
वयमेव महापापा मध्येदुःखाब्धि पातिताः ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(हे अङ्ग !) हे वत्स ! (त्वं) तू (किं) क्यों (खिद्यसे) खेद करता है (ते) तेरे (ज्यायान्) बड़े भाई जीवंधर स्वामी (अनुपद्रव एव) सब प्रकारके कष्टोंसे रहित हैं। (मध्ये दुःखाब्धिः) किन्तु दुःखरूपी समुद्रके मध्यमें (पातिताः) पडे हुए (वयम्) हम सब (महापापाः) महा पापी हैं ॥१८॥

प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रतिगृह्यैव मह्यते ।
विपच्च संपदे हि स्याद्भाग्यं यदि पचेलिमम् ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—उनकी तो (प्रतिदेशं) प्रत्येक देशमें और (प्रतिग्रामं) प्रत्येक ग्राममें (प्रतिगृह्य एव) आदर पूर्वक ग्रहण करके ही (मह्यते) पूजा होती है । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (यदि) अगर (भाग्यं) भाग्य (पचेलिमम्) अच्छा है तो (विपच्च) विपत्ति भी (संपदे) संपत्तिके लिये (स्यात्) हो जाती है ॥ १९ ॥

द्रष्टुमिच्छासि चेद्वत्स तं जनं तव पूर्वजम् ।
किं नु ताम्यसि गम्येत कनु पापा हि भामिनी ॥२०॥

अन्वयार्थः—(हे वत्स !) हे वत्स ! (चेत्) यदि (त्वं) तुम (तव) अपने (तं पूर्वजम् जनम्) अपने बड़े भाई उन जीवंधर स्वामीको (द्रष्टुं) देखनेके लिए (इच्छसि) इच्छा करते हो तो (कि नु) क्यों (ताम्यसि) दुःखी होते हो (गम्येत) जाओ ! अर्थात् मैं तुम्हें विद्याके प्रभावसे उनके समीप पहुंचा देती हूं

(पापा भामिनी) मैं पापिनी स्त्री (क्वनुगम्येत) विना पतिकी आज्ञाके कहां जा सकती हूं ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा शाययित्वा च शय्यायां साभिमन्त्रितम् ।
मामत्रभवती चात्र सपत्रं प्राहिणोदिति ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(इति) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (अत्र भवती) पूज्य भावजने (आपकी स्त्रीने) (मां) मुझको (शय्याया) सेज पर (साभिमन्त्रितम्) मन्त्रपूर्वक (शाययित्वा) सुलाकर (च) और (सपत्रं) पत्रसहित (अत्र) यहां (प्राहिणोत्) भेज दिया । (इति) ऐसा नंदाढ्यने जीवधर स्वामी अपने बड़े भाईसे कहा ॥ २१ ॥

अखिद्यत ततः स्वामी सदयैरनुजोदितैः ।
स्नेहपाशो हि जीवानामासंसारं न मुञ्चति ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसलिये (स्वामी) जीवंधर स्वामी (सदयैः) दयाजनक (अनुजोदितैः) छोटे भाई नंदाढ्यके कहें हुए वचनोंसे (अखिद्यत) अत्यंत दुखी हुए। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (आसंसारं) जब तक संसार है तब तक (जीवानां) प्राणियोंका (स्नेहपाशः) स्नेहरूपी बन्धन (न) नहीं (मुञ्चति) नहीं छूटता है ॥ २२ ॥

गुणमालाव्यथाशंसि पत्रं चायमवाचयत् ।
चतुराणां स्वकार्योक्तिः स्वमुखान्न हि वर्तते ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(अयं) फिर जीवंधर स्वामीने (गुणमाला व्यथाशंसि) गुणमालाकी विरह पीडाका सूचक (पत्रं च) गन्धर्वदत्ताका भेजा हुआ पत्र (अवाचयत्) पढा । अत्र नीतिः

(हि) निश्चयसे (चतुराणां) चतुर पुरुषोंका (स्वमुखात) निज मुखसे (स्वकार्योक्तिः) अपने कार्यके लिये कहना (न वर्तते) नहीं होता है ॥ २३ ॥

अन्यापदेशसंदेशात्खेचर्यां खेदवानभूत् ।
विद्वेषः पक्षपातश्च प्रतिपात्रं च भिद्यते ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(जीवंधरः) जीवंधर कुमार (अन्यापदेशसंदेशात्) गुणमालाके व्याजसे पत्रमें लिखित संदेशसे (खेचर्यां) विद्याधरी गन्धर्वदत्ताके लिये ही (खेदवान्) खेदित (अभूत्) हुए । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (विद्वेषः) द्वेषभाव (च) और (पक्षपातः) पक्षपात अर्थात् प्रेमविशेष (प्रतिपात्रं) प्रत्येक वस्तुकी अपेक्षासे (भिद्यते) भेद रूप हुआ करता है ॥ २४ ॥

प्रियाशोकश्रुतेर्जातः शोकोऽप्येतस्य नास्फुरत् ।
न हि प्रसादखेदाभ्यां विक्रियन्ते विवेकिनः ॥२५॥

अन्वयार्थः—(प्रियाशोकश्रुतेः) अपनी प्रिया गन्धर्वदत्ताके शोक सुननेसे (एतस्य) इस कुमारके (जातः) उत्पन्न (शोकः अपि) शोक भी (न अस्फुरत्) बाहर प्रगट नहीं हुआ । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (विवेकिनः) विवेकी पुरुष (प्रसादखेदाभ्यां) खुशीसे और दुखसे (न विक्रियन्ते) विकार भावको प्राप्त नहीं होते हैं ॥ २५ ॥

वैवाहिकगृहस्थाश्च ह्यातस्थुरनुजं भृशम् ।
बन्धोर्बन्धौ च बन्धो हि बन्धुता चेदवञ्चिता ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(च) फिर (वैवाहिकगृहस्थाः) राजा दृढ़मित्र अपने (जीवंधरके) श्वसुरके घरमें रहनेवाले पुरुषोंने (अनुजम्)

कुमारके छोटे भाई नंदाढ्यको (भृशम् आतस्थुः) आकर चारों तरफसे घेर लिया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (चेत्) यदि (अवञ्चिता) अकृत्रिम निष्कपट (बन्धुता स्यात्) सच्ची बंधुता होवे तो (बन्धोः) बंधुके भी (बंधौ) बंधुमें (बंधः स्यात्) प्रेम हो जाता है ॥ २६ ॥

अवस्कन्दाद्गवां गोपा अथाक्रोशन्नृपाङ्गणे ।
पीडायां तु भृशं जीवा अपेक्षन्ते हि रक्षकान् ॥२७॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (गोपाः) बहुतसे ग्वालिये (गवां अवस्कंदात्) गौओंके पकड़े जानेसे (नृपाङ्गणे) राजाके अङ्गणमें (आगत्य) आकर (अक्रोशन्) रोने चिल्लाने लगे । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (भृशम्) अत्यन्त (पीडायां) पीड़ा होने पर (जीवाः) प्राणी (रक्षकान्) अपनी रक्षा करनेवालोंकी (अपेक्षते) अपेक्षा आशा किया करते हैं ॥ २७ ॥

सानुक्रोशं तदाक्रोशं क्षमाधीशो न चक्षमे ।
पातापायान्न चेत्पायात्कुतो लोकव्यवस्थितिः ॥२८॥

अन्वयार्थः—(क्षमाधीशः) राजा (सानुक्रोशं) करुणाको पैदा करनेवाला (तदाक्रोश) उनका रोना (न चक्षमे) सहन नहीं कर सका (चेत्) यदि (पातापायात्) पतन रूपी विनाशसे (न पायात्) प्रजाकी रक्षा न की जाय तो (लोकव्यवस्थितिः कुतः स्यात्) फिर संसारमे राज्य और प्रजा की व्यवस्था कैसे रह सकती है ॥ २८ ॥

स्वामी श्वशुररुद्धोऽपि गोमोचनकृते ययौ ।
पराभवो न सोढव्योऽशक्तैः शक्तैस्तु किं पुनः ॥२९॥

अन्वयार्थः—(श्वशुर रूद्धः अपि) सुसुरके रोकने पर भी (स्वामी) जीवंधर स्वामी (गोमोचनकृते) गौओंके छुड़ानेके लिये (ययौ) चले गये । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे जब (अशक्तैः) असमर्थ पुरुषोंसे भी (पराभवः) तिरस्कार (नसोढव्यः) सहन नहीं होता है । (शक्तैः) समर्थ पुरुषोंका तो (किं पुनः वक्तव्यं) फिर कहना ही क्या है अर्थात् वह तिरस्कार कैसे सहन कर सकते हैं कभी भी नहीं ॥ २९ ॥

दस्यवोऽपि गवां तत्र मित्राण्येवाभवन्विभोः ।
एधोगवेषिभिर्भाग्ये रत्नं चापि हि लभ्यते ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—(तत्र) वहां (गवां दस्यवः अपि) गौओंके पकड़नेवाले भी (विभोः) जीवंधर स्वामीके (मित्राणि एव) मित्र ही (अभवन्) बन गये । अत्रनीतिः । (हि) निश्चयसे (भाग्ये सति) भाग्यके उदय होने पर (एधोगवेषिभि· अपि) लकडी ढूंढनेवालोंको भी (रत्नं च) रत्न (लभ्यते) मिल जाता है ॥ ३० ॥

समोऽभूत्स्वामिमित्रेषु स्नेहश्चान्योन्यवीक्षणात् ।
एककोटिगतस्नेहो जडानां खलु चेष्टितम् ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(अन्योन्यवीक्षणात्) परस्पर एक दूसरेको देखनेसे (स्वामिमित्रेषु) जीवंधर स्वामी और स्वामीके इन मित्रोंमें (समः) एक सरीखा (स्नेहः) प्रेम (अभूत्) उत्पन्न हो गया । अत्र नीतिः । (खलु) निश्चयसे (एककोटिगतस्नेहः) एक कोटिको प्राप्त स्नेह अर्थात् एकङ्गी प्रीति (जड़ानां) मूर्खोंकी

(चेष्टितम्) चेष्टा है । बुद्धिमानोंकी प्रीति इस प्रकार नहीं होती है ॥ ३१ ॥

जामातरि चमत्कारो राज्ञोऽभून्मित्रवीक्षणात् ।
कृतिनोऽपि न गण्या हि वीतस्फीतपरिच्छदाः ॥३२॥

अन्वयार्थः—(मित्रवीक्षणात्) स्वामीके मित्रोंको देखनेसे (राज्ञः) राजा दृढ मित्रको (जामातरि) अपने दामाद जीवंधर स्वामीके विषयमें (चमत्कारः अभूत्) अत्यन्त आश्चर्य हुआ । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (वीतस्फीतपरिच्छिदाः अपि) विना समृद्धसेनादिक सामग्रीके भी (कृतिनः) पुण्यात्मा पुरुष (न गण्याः) नहीं समझने चाहिये ॥ ३२ ॥ अर्थात् उनको बहुत सामग्री युक्त समझना चाहिये ।

समित्रावरजोऽहृष्यदतिमात्रमसौ कृती ।
एकेच्छानामतुच्छानां न ह्यन्यत्संगमात्सुखम् ॥३३॥

अन्वयार्थः—(समित्रावरजः) छोटे भाई और मित्रो सहित (असौ कृति) विद्वान् जीवंधर कुमार (अतिमात्रं) अत्यंत (अहृष्यत्) हर्षित हुए । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (अतुच्छानां) श्रेष्ट पुरुषोंके (एकेच्छानां) एकसी इच्छा रखनेवालोंके (संगमात्) समागमसे (अन्यत्सुखं) और कोई दूसरा सुख (न भवति) नहीं है ॥ ३३ ॥

अयथापुरसंमानात्समशेत सखीनसौ ।
विशेते हि विशेषज्ञो विशेषाकारवीक्षणात् ॥३४॥

अन्वयार्थः—(असौ) इन जीवंधर कुमारने (अयथापुरसंमानात्) पूर्वमें कभी नहीं किये हुए मित्रोंके द्वारा अपना

विलक्षण सन्मान होते देखनेसे (सखीन्) मित्रों पर अत्यन्त (समशेत) संदेह किया। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (विशेषज्ञः) विशेषताका पहचाननेवाला बुद्धिमान् (विशेषाकारवीक्षणात्) विशेष आकृतियोंके देखनेसे (विशेते) संदेह करने लगता है ॥३४॥

रहस्येव वयस्येषु तन्निदानमचोदयत् ।
एककण्ठेषु जाता हि बन्धुता ह्यवतिष्ठते ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थः—(रहसि) एकान्तमें जीवंधर स्वामीने (वयस्येषु) मित्रोंसे (तन्निदानं) इसका कारण (अचोदयत्) पूछा। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (एककण्ठेषु) एकसे अभिप्राय वाले बन्धुओमें (जाता) उत्पन्न हुई (बन्धुता) मित्रता ही (अवतिष्ठते) स्थिर रहती है ॥ ३५ ॥

मुख्यं सख्यं गतस्तेषामाचख्यौ पङ्कजाननः ।
सज्जनानां हि शैलीयं सक्रमारम्भशालिता ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थः—(तेषां) उनमेसे (मुख्यं सख्यं) प्रधान मित्रताको (गतः) प्राप्त (पङ्कजाननः) पद्मास्य नामका मित्र (आचख्यौः) बोला। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (सक्रमारम्भशालिता) क्रम पूर्वक किसी कार्यका आरभ करना (इय) यह (सज्जनानां शैली) सज्जन पुरुषोंकी पद्धति है ॥ ३६ ॥

स्वामिन्स्वामिवियोगेऽपि युक्ता दग्धासुभिर्वयम् ।
अस्तोकभाविभाग्येन हस्तग्राहं ग्रहादिव ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थः—(हे स्वामिन्!) हे स्वामी! (स्वामिवियोगे) आपके वियोग होने पर (दग्धासुभिः वयम्) जले हुए प्राणोंसे युक्त भी हम लोग (अस्तोकभावि भाग्येन) भाविमें उदय होने-

वाले महान भाग्यके उदयसे (हस्तग्राहं गृहात् इव) हस्तावलम्बन देकर गृहण किये हुएके सदृश (अजीवन्) जीवित रहे ॥ ३७ ॥

साश्वासाश्च ततो देव्या दत्तहस्तावलम्बनाः ।
प्रास्थिष्महि धुरं प्राप्ता वयमश्वीयपाणिनाम् ॥३८॥

अन्वयार्थः—(ततः) फिर (देव्या) देवी गन्धर्वदत्ताने (दत्त-हस्तावलम्बनाः) अपने हाथोंका सहारा देकर (साश्वासाश्च) आश्वासन दिया । तब (वयं) हम लोग (अश्वीयपाणिनाम्) घोडोंके बेचनेवालोंके (धुरं प्राप्ता) मुखिया होकर (प्रास्थिष्महि) वहांसे चल दिये ॥ ३८ ॥

अतिलङ्घ्य ततोऽध्वानमध्वश्रमविहानये ।
दण्डकारण्यविख्यातं तापसाश्रममाश्रिताः ॥३९॥

अन्वयार्थ—(ततः) इसके अनंतर (अध्वानं अतिलङ्घ्य) बहुतसा मार्ग तै करके (अध्वश्रमविहानये) मार्गकी थकावट दूर करनेके लिये (दण्डकारण्यविख्यातं) दण्डकारण्यमें प्रसिद्ध (तापसाश्रमम्) तपस्वियोंके आश्रममें (आश्रिताः) पहुंचे ॥३९॥

दर्शंदर्शं ततो दृश्यं विहरन्तोऽत्र विश्वतः ।
अपश्याम क्वचित्कांचित्पुण्यतः पुण्यमातरम् ॥४०॥

अन्वयार्थः—(अत्र) यहां (विश्वतः) चारों ओर (दृश्यं) मनोहर वस्तुओंको (दर्शं दर्शं) देख देख कर (विहरन्तः) विहार करते हुए (वयं) हम लोगोंने (क्वचित) किसी स्थानमें (पुण्यतः) पुण्योदयसे (कांचित) किसी (पुण्यमातरम्) पवित्र माताको अर्थात् आपकी माताको (अपश्याम) देखा ॥ ४० ॥

तन्मात्रा दृष्टमात्रेण कुत्रत्या इति चोदिताः ।
वयमप्युत्तरं वक्तुमुपक्रम्य यथाक्रमम् ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थः—(तन्मात्रा) उस माताने (दृष्टमात्रेण) हम लोगोंको देखते ही (कुत्रत्या) तुम कहांके रहनेवाले हो (इति) इस प्रकार (चोदिताः) पूछा तब (वयं अपि) हम लोगोंने भी (यथाक्रमम्) यथा क्रमसे (उत्तरं वक्तु) माताके प्रश्नका उत्तर देनेके लिये (उपक्रम्य) प्रारम्भ करके (इति अवोचाम) ऐसा कहा । क्या ? ॥४१॥

अस्ति राजपुरे कश्चिद्विबुधानामपश्चिमः ।
विशां च जीवकाख्योऽयमेतं जीवातुका वयम् ॥४२॥

अन्वयार्थः—(राजपुरे) राजपुर नगरमें (विबुधानां) पण्डितोंका (च) और (विशां) वैश्योंका (अपश्चिमः) शिरोभूषण (कश्चित्) कोई (अय) यह (जीवकाख्यः) जीवंक (जीवधर नामका) पुरुष है और (वयं) हम लोग (एतं जीवातुका) उनके अनुजीवी (नौकर चाकर) हैं ॥ ४२ ॥

काष्टाङ्गाराह्वयः कोऽपि कोपादेनमनेनसम् ।
हन्तुं किलेत्यवोचाम मूर्च्छिता सा च पेतुषी ॥४३॥

अन्वयार्थः—(तत्र) उस नगरमे (कोऽपि) कोई (काष्टाङ्गाराह्वयः) काष्टाङ्गार नामका राजा (कोपात्) क्रोधसे (अनेनसम्) निर्दोष (एनं) इन जीवधरको (हन्तुं) मारनेके लिये" (किल) बस (इति अवोचाम) इतना कहा ही था कि (सा) वह माता (मूर्च्छिता) मूर्छित होकर (पेतुषी) गिर पडी ॥ ४३ ॥

हन्त हन्त हतो नायमम्बेत्यभिहिता मया ।
पिहिताशुप्रयाणा सा प्राप्तलब्धचेतना ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थः—"(हन्त! हन्त!) हाय! हाय! (हे अम्ब!) हे माता! (अयं) यह जीवंधर (न हतः) मारे नहीं गये" जब (मया) मैंने (इति) इस प्रकार (अभिहिता) कहा तब (पिहिता सुप्रयाणा) रुक गया है प्राणोंका निकलना जिसका ऐसी (लब्धचेतना) सचेत होकर (सा) वह माता (प्रालपत्) प्रलाप करने लगी॥ ४४॥

अम्भोदालीव दम्भोलीममृतं च मुमोच सा।
देवी समं प्रलापेन देवोदन्तमिदन्तया॥ ४५॥

अन्वयार्थः—(अम्भोदाली) मेघोंकी पङ्क्ति (इव) जिस प्रकार (दम्भोली) वज्रपात (च) और (अमृतं) जलको (मुमोच) वर्षाती है उसी प्रकार (सा देवी) उस माताने (प्रलापेन समम्) प्रलापके साथ (देवोदन्तं) आपके वृत्तान्तको (इदतया) इस रीतिसे (अकथयत्) कहा। अर्थात्—आपकी उत्पत्ति आदिककी वीती हुई सब कथा उसने खेदके साथ हम लोगोंको सुनाई॥ ४५॥

तन्मुखात्खादिवोत्पन्नां रत्नवृष्टिं तवोन्नतिम्।
उपलभ्य वयं लब्धाममन्यामहि तन्महीम्॥ ४६॥

अन्वयार्थः—(तन्मुखात्) उसके मुखसे (तव उन्नतिम्) आपकी उन्नतिको (खात्) आकाशसे (उत्पन्नां) बरसती हुई (रत्नवृष्टि) रत्नोंकी वर्षाके (इव) समान (उपलभ्य) सुनकर (वय) हमलोग (तन्महीं) उस पृथ्वीको (लब्धां) हाथमे आई हुई (अमन्यामहि) मानते भये॥ ४६॥

देववैभवसंकीर्त्या ततो देवीं पुनः पुनः।
आश्वास्यापृच्छ्य तद्देशादिमं देशं गता इति॥४७॥

अन्वयार्थः—(ततः) तदनंतर (देववैभवसंकीर्त्या) आपके वैभवकी महिमाके वर्णनसे (देवीं) माताको (पुनः पुनः) बार बार (आश्वास्य) धीरज बंधा कर (च) और (आपृच्छ्य) पूछकर (तद्देशात्) उस स्थानसे (इमं देशं) इस देशको (गताः) आये हैं (इति) ऐसा पद्मास्यने कहा ॥ ४७ ॥

मातुर्जीवन्मृतिज्ञानात्तत्त्वज्ञः सोऽप्यखिद्यत ।
जीवानां जननीस्नेहो न ह्यन्यैः प्रतिहन्यते ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थः—(सतत्वज्ञः) तत्वोंका स्वरूप जाननेवाले उन जीवंधरने (मातुः) माताको (जीवन्) जीती हुईको भी (मृतिज्ञानात्) मरी हुई जाननेसे (अखिद्यत) अत्यन्त खेद किया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (जीवानां) प्राणियोंका (जननी स्नेहः) मातृप्रेम (अन्यैः) दूसरे कारणोंसे (न प्रतिहन्यते) नष्ट नहीं होता है ॥ ४८ ॥

अत्वरिष्ट च तां द्रष्टुं कौरवो गुरुगौरवः ।
अम्बामदृष्टपूर्वां च द्रष्टुं को नाम नेच्छति ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थः—(गुरुगौरवः) माता और पितामें है पूज्य बुद्धि जिनकी ऐसे (कौरवः) कुरुवशी जीवधर कुमारने (तां द्रष्टुं) अपनी उस माताको देखनेके लिये (अत्वरिष्ट) शीघ्रता की । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (को नाम) कौनु पुरुष (अदृष्टपूर्वां) नहीं देखा है पूर्वमें जिसको ऐसी (अम्बां) माताको (द्रष्टुं) देखनेके लिये (न इच्छति) इच्छा नहीं करता है ? करता ही है ॥४९॥

व्यस्मारि मातरि स्नेहान्मान्येनान्यदशेषतः ।
रागद्वेषादि तेनैव बलिष्ठेन हि बाध्यते ॥ ५० ॥

अन्वयार्थः—(मान्येन) माननीय जीवंधर कुमार (मातरिस्नेहात्) अपनी माताके स्नेहसे (अन्यत्) अन्य सबको (अशेषतः) सर्वथा (व्यस्मारि) भूल गये । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (तेननैव बलिष्टेन) उस बलवान स्नेहके द्वारा ही (रागद्वेषादि) रागद्वेष आदि विकार भाव (बाध्यते) नष्ट कर दिये जाते है ॥ ९० ॥

अन्वजिज्ञपदात्मीयां गतिं भार्यां परानपि ।
आवश्यकेऽपि बन्धूनां प्रातिकूल्यं हि शल्यकृत् ॥९१॥

अन्वयार्थः—उन जीवंधर कुमारने (भार्यां) अपनी स्त्री और (परानपि) अन्य पुरुषोंसे भी (आत्मीयां गतिं) अपने जानेकी बात (अन्वजिज्ञपत्) प्रगट कर दी । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (आवश्यके अपि) आवश्यक कार्यमें भी (बन्धूनां) बन्धुओंकी (प्रातिकूल्यं) प्रतिकूलता (शल्यकृत्) दुख देनेवाली होती हैं ॥९१॥

अनुनीयानुगान्बन्धून्प्रसभं प्रययौ ततः ।
अनुनयो हि माहात्म्यं महतामुपबृंहयेत् ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थः—(सः जीवंधरः) वे जीवंधर कुमार (अनुगान्) साथ चलनेवाले (बन्धून्) अपने सालोंको (अनुनीय) समझा बुझा करके (ततः) वहांसे (प्रसभं) शीघ्र (प्रययौ) चल दिये । अत्र-नीतिः । (हि) निश्चयसे (अनुनयः) दूसरोको समझाने बुझाने ही से (महता) बड़े पुरुषोंका (माहात्म्यं) बड़प्पन (उपबृंहयेत्) बढ़ता है ॥ ९२ ॥

प्रसवित्रीं ततः प्रेक्ष्य प्रेमान्धोऽभूदवन्ध्यधीः ।
तत्त्वज्ञानतिरोभावे रागादि हि निरङ्कुशम् ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (तत्र) उस दण्डक अरण्यमें (अवन्ध्यधीः) निष्फल नहीं है किसी कार्यमें बुद्धि जिनकी ऐसे जीवंधर कुमार (प्रसवित्रीं) अपनी माताको (वीक्ष्य) देख कर (प्रेमान्धः अभूत्) मातृप्रेमसें अन्धे हो गये। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (तत्वज्ञानतिरोभावे) तत्वज्ञान रूपी विचारके छिप जाने पर (रागादि) रागादिक भाव (निरंकुशम्) बिना रुकावटके प्रबलतासे (प्रवर्तते) ही प्रवर्तित हो जाते हैं ॥ ९३ ॥

जातजातक्षणत्यागाज्जातं दुर्जातमक्षिणोत् ।
सुतवीक्षणतो माता सुतप्राणा हि मातरः ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थ—(माता) जीवंधर स्वामीकी माताने (जातजातक्षणत्यागात) पुत्रको जन्म समयमें ही त्याग देनेसे (जातं) उत्पन्न (दुर्जातं) दुःखको (सुतवीक्षणतः) पुत्रके देखनेसे ही (अक्षिणोत) नष्ट कर दिया अर्थात् भूल गई। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (सुतप्राणामातरः सन्ति) पुत्र ही हैं प्राण जिनके ऐसी माताएं होती हैं ॥ ९४ ॥

सूनोर्वीक्षणतस्तप्ता क्षोणीशं तमियेष सा ।
लाभे लाभमभीच्छा स्यान्न हि तृप्तिः कदाचन ॥९५॥

अन्वयार्थः—(सूनोः) पुत्रके (वीक्षणतः) देख लेनेसे (तप्ता) तप्तायमान (सा) वह माता (तं) पुत्रको (क्षोणीशं) राजा होनेकी (इयेष) इच्छा करती भई। अर्थात्—यह कब राजा होगा ऐसी उनकी माताने इच्छा की। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (लाभे लाभं अभि) एक वस्तुकी प्राप्ति हो जानेपर मनुष्यकी दूसरी वस्तुकी

प्राप्तिके लिये (इच्छा स्यात्) इच्छा हुआ करती है परन्तु (तृप्तिः) इच्छाकी पूर्ति अर्थात् संतोष (कदाचन न) कभी भी नहीं (भवति) होता है ॥ ९५ ॥

कच्चित्पितुः पदं ते स्यादङ्ग पुत्रेत्यचोदयत् ।
सामग्रीविकलं कार्यं न हि लोके विलोकितम् ॥९६॥

अन्वयार्थः—" (अङ्गपुत्र) हे पुत्र ! (कच्चित्) कोई (ते) तुम्हारे (पितुः) पिताका (पदं स्यात्) स्थान है " (इति) इस प्रकार जीवंधर स्वामीसे उनकी माताने (अचोदयत्) कहा । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (लोके) संसारमें (सामग्रीविकलं) उत्पादक सामग्रीके बिना (कार्यं) कार्य (नविलोकितम्) नहीं देखा गया है ॥ ९६ ॥

अम्ब किं बत खेदेन बाढं स्यादिति सोऽभ्यधात् ।
मुग्धेष्वतिविदग्धानां युक्तं हि बलकीर्तनम् ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थः—पुत्रने कहा (बाढं स्यात्) हा है (हे अम्ब !) हे माता ! (बत खेदेन किं) व्यर्थ खेदसे क्या लाभ (इति) इस प्रकार (सः अभ्यधात्) उसने कहा । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (अतिविदग्धाना) चतुर पुरुषोंका (मुग्धेषु) मूढ जनोमें (बलकीर्तनम्) अपने बलका कथन करना (युक्तं स्यात्) युक्त ही होता है ॥ ९७ ॥

पुत्रवाक्येन हस्तस्थां मेने माता च मेदिनीम् ।
मुग्धाः श्रुतविनिश्चेया न हि युक्तिवितर्किणः ॥९८॥

अन्वयार्थः—(माता) माताने (पुत्रवाक्येन) पुत्रके इस

प्रकार वचन सुनकर (मेदिनीम्) पृथ्वीको (हस्तस्थां) हाथमें आई हुई (मेने) समझी । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मुग्धाः) मूढ पुरुष (श्रुतविनिश्चेया) किसीकी बात सुनने हीसे निश्चय कर लिया करते हैं किंतु (युक्तवितर्किणः) युक्ति द्वारा किसी कार्यको विचार करनेमें तत्पर (न भवंति) नहीं होते हैं ॥ ५८ ॥

अपायस्थानमस्तोकं दूरक्षं व्याहरद्विभोः ।
अमित्रो हि कलत्रं च क्षत्रियाणां किमन्यतः ॥५९॥

अन्वयार्थः—(माता) माताने (विभोः) जीवंधर स्वामीको (दूरक्षं) कष्टसे रक्षा होनेके योग्य (अस्तोकं) एक बडे भारी (अपायस्थानं) नाशके स्थानको (व्याहरत) कहा अर्थात्–राज्यकी बात कह कर जीवंधर स्वामीको युद्धके लिये तैयार कर दिया । अत्र-नीतिः (हि) निश्चयसे (क्षत्रियाणां) क्षत्रियोंकी (कलत्र) स्त्रिया भी (अमित्र.) शत्रु (भवति) हो जाती है (अन्यतः कि और-का तो फिर कहना ही क्या है ॥ ५९ ॥

कर्तव्यं च ततो मात्रा मन्त्रितं तेन मन्त्रिणा ।
विचार्यैवेतरैः कार्यं कार्यं स्यात्कार्यवेदिभिः ॥ ६० ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (तेन मन्त्रिणा) विचार करनेवाले उन जीवंधर स्वामीने (मात्रा) माताके साथ (कर्तव्यं) करने योग्य कार्यका (मन्त्रितं) विचार किया । अत्र नीति. ! निश्चयसे (कार्यवेदिभि.) कार्य करनेमें चतुर पुरुष (इतरैः सह) दूसरोंके साथ (कार्य) कार्यको (विचार्य एव) विचार करके ही (कार्य स्यात) कार्य किया करते हैं ॥ ६० ॥

प्राहिणोत्प्रसवित्रीं तां मातुलोपान्तिके कृती ।
न हि मातुः सजीवेन सोढव्या स्याद्दुरासिका ॥६१॥

अन्वयार्थः—फिर (कृती) विद्वान् जीवंधरने (तां प्रसवित्रीं) अपनी उस माताको (मातुलोपान्तिके) अपने मामाके समीप (प्राहिणोत्) भेजदिया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मातुः दुरासिका) अपनी माताकी दुःख अवस्था (सजीवेन) किसी भी जीवधारी पुरुषसे (न सोढव्या) सहन नहीं की जासकती है ॥६१॥

ततः सपरितोषोऽयं परिव्राजकपार्श्वतः ।
निकषा स्वपुरं प्राप्य तदारामे निषण्णवान् ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) तदनन्तर (सपरितोषः अयं) संतुष्ट यह जीवंधर कुमार (परिव्राजकपार्श्वतः) दण्डक वनके तपस्वियोंके पाससे (स्वपुरं) अपने नगरके (निकषा) समीप (प्राप्य) पहुंच कर (तदारामे) वहांके बगीचेमें (निषण्णवान्) ठहर गये ॥६२॥

तत्र मित्राण्यवस्थाप्य व्यहरत्परितः पुरीम् ।
विशृङ्खला न हि क्वापि तिष्ठन्तीन्द्रियदन्तिनः ॥६३॥

अन्वयार्थः—(तत्र) वहां पर जीवंधर स्वामीने (मित्राणि) मित्रोंको (अवस्थाप्य) बिठला कर (पुरीं परितः) नगरीके चारों ओर (व्यहरत्) विहार किया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (विशृङ्खला) बन्धन रहित (इन्द्रिय दन्तिनः) इन्द्रिय रूपी हाथी (क्वापि) कहीं एक जगह पर (न तिष्ठन्ति) स्थिर नहीं रहते हैं ॥ ६३ ॥

ततो राजपुरीं वीक्ष्य सुतरामतृपत्सुधीः ।
ममत्वधीःकृतो मोहः सविशेषो हि देहिनाम् ॥६४॥

अन्वयार्थः—(ततः) फिर (सुधीः) बुद्धिमान जीवंधर कुमार (राजपुरीं) राजपुरी नगरीको (वीक्ष्य) देखकर (सुतरां) स्वयमेव (अतृपत्) अत्यन्त सन्तुष्ट हुए । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (देहिनाम्) प्राणधारियोंके (ममत्वधीः कृतः) ममत्व बुद्धिसे किया हुआ (मोहः) मोह (स विशेषो भवति) बहुत अधिक होता है ।

अर्थात्—जहां पर "यह मेरी वस्तु है" वहां पर प्रेम विशेष रीतिसे हुआ करता है ॥ ६४ ॥

क्रीडन्ती कापि हर्म्याग्रात्पातयामास कन्दुकम् ।
संपदामापदां चाप्तिर्व्याजेनैव हि केनचित् ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थः—(तत्र) उस नगरीमें (क्रीड़न्ती) क्रीड़ा करती हुई (कापि) किसी जवान कन्याने (हर्म्याग्रात्) अपने महलके ऊपरसे (कन्दुकम्) गेंद (पातयामास) फेंकी । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (संपदां) सम्पत्ति (च) और (आपदां) आपत्तिकी (आप्तिः) प्राप्ति (केनचित्) किसी (व्याजेन एव भवति) बहानेसे ही होती है ॥ ६५ ॥

उद्वक्त्रस्तद्धर्तीं सूत्यां दृष्ट्वामुह्यदबाह्यधीः ।
वशिनां हि मनोवृत्तिः स्थान एव हि जायते ॥६६॥

अन्वयार्थः—(अबाह्यधीः) बाह्य पदार्थोंमें नहीं हैं बुद्धि जिनकी ऐसे जीवंधर स्वामी (उद्वक्त्रः) ऊपरको मुख किये हुए

ही (तद्वर्तीं) गेंदसे खेलती हुई (सूत्यां) उस जवान कन्याको (वीक्ष्य) देखकर (अमुह्यत) उस पर मोहित हो गये । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषोंके (मनोवृत्तिः) मनके भाव (स्थाने एव) युक्त स्थानमें ही (जायते) प्रवृत्त होते हैं ॥ ६६ ॥

तन्मोहादयमध्यास्त तत्सौधाग्रवितर्दिकाम् ।
अञ्जसा कृतपुण्यानां न हि वाञ्छापि वञ्चिता ॥६७॥

अन्वयार्थः—(अयं) यह जीवंधर कुमार (तन्मोहात्) उस कन्याके प्रेमसे (तत्सौधाग्रवितर्दिकाम्) उसके मकानके अगाडीकी चौकी पर (अध्यास्त) बैठ गये । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (अञ्जसा कृत पुण्यानां) किया है अच्छी तरहसे पुण्य जिन्होंने ऐसे पुरुषोंकी (वाञ्छा अपि) इच्छा भी (वञ्चिता न भवति) निष्फल नहीं होती है ॥ ६७ ॥

वैश्येशः कोऽपि तं पश्यन्व्याजह्रे विकसन्मुखः ।
चिरकाङ्क्षितसंप्राप्त्या प्रसीदन्ति हि देहिनः ॥६८॥

अन्वयार्थः—इसके अनन्तर (विकसन् मुखः) प्रसन्न है मुख जिसका ऐसा (कः अपि) कोई (वैश्येशः) सेठ (तं) उसको (पश्यन्) देख कर (व्याजह्रे) बोला । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (देहिनः) प्राणी (चिरकाङ्क्षितसंप्राप्त्या) बहुत कालसे चाही हुई वस्तुके मिल जाने पर (प्रसीदन्ति) प्रसन्न होते हैं ॥ ६८ ॥

भद्र सागरदत्तोऽहं भवत्येष ममालयः ।
विमला कमलोद्भूता सुता सूत्या च साभवत् ॥६९॥

अन्वयार्थः—(हे भद्र !) हे भद्र ! (अहं) मैं (सागरदत्तः) सागरदत्त नामका वैश्य हूं और (एषः) यह (ममालयः) मेरा घर (भवति) है और (कमलोद्भूता) कमला नामकी मेरी स्त्रीसे उत्पन्न (विमला) विमला नामकी मेरी (सुता) पुत्री है (साच) और वह पुत्री भी (सुत्या अभवत्) जवान हो गई है ॥ ६९ ॥

रत्नजालमविक्रीतं विक्रीयेत यदागमे ।
भाविज्ञास्तं पतिं तस्याः समुत्पत्तावजीगणन् ॥७०॥

अन्वयार्थः—(भाविज्ञाः) ज्योतिष शास्त्रोंके जाननेवालोंने (तस्याः) उसका (समुत्पत्तौ) उत्पत्तिके समयमें "(यदागमे) जिसके आने पर (अविक्रीतं) नहीं विका हुआ (रत्नजालं) रत्नोंका समूह (विक्रीयेत) विक जायगा" (तं) उसको (पतिं) इसका पति (अजीगणन्) गणना की ॥ ७० ॥

भवत्यत्र पविष्टे च दृष्टमेतदलं परैः ।
भाग्याधिक भवानेव योग्यः परिणयेदिति ॥७१॥

अन्वयार्थः—और (भवति) आपके (अत्र पविष्टे) यहां प्रवेश करने पर (एतद् दृष्टं च) यह सब देखा गया है । (परैः अलं) और ज्यादा कहनेसे क्या ? अतएव (हे भाग्याधिक !) हे महाभाग्य (योग्यः) योग्य (भवान्) आप ही (परिणयेत्) इस कन्याके साथ व्याह करें । (इति) इस प्रकार उसने कहा ॥ ७१ ॥

तन्निर्बन्धादयं चाभूदनुमन्ता तथाविधौ ।
वाञ्छितार्थेऽपि कातर्यं वशिनां न हि दृश्यते ॥७२॥

अन्वयार्थः—(अयं) इन जीवधर कुमारने (तन्निर्बधात्)

उसके अत्यन्त आग्रह करनेपर (तथाविधौ) इस विषयमें (अनुमन्ता अभूत्) अपनी अनुमति दी। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (वाञ्छितार्थेऽपि) इच्छित पदार्थमे भी (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषोंके (कातर्य) अधीरता (न दृश्यते) नहीं देखी जाती है ॥७२॥

अथ सागरदत्तेन दत्तां सत्यंधरात्मजः ।
व्यवहद्विमलां कन्यां हव्यवाहसमक्षकम् ॥ ७३ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (सत्यंधरात्मज.) सत्यंधर राजाके पुत्र जीवंधर स्वामीने (सागरदत्तेन) सागरदत्तसे (दत्तां) दी हुई (विमला) विमला नामकी (कन्यां) कन्याको (हव्यवाह समक्षकम्) अग्निकी साक्षी पूर्वक (व्यवहृत्) व्याहा ॥७३॥

इति श्रीमद्वादिभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ सान्वयार्थो विमलालम्भो नाम अष्टमो लम्बः ॥

ॐ

नवमो लम्बः

अथ व्यूढामतिस्निग्धां गाढस्नेहोऽन्वभूदिमाम् ।
वाञ्छिता यदि वाञ्छेयुः ससारैव हि संसृतिः ॥१॥

अन्वयार्थः—(अथ) विमलाको व्याहनेके अनंतर (गाढ़स्नेह.) अत्यंत स्नेही जीवंधर स्वामीने (व्यूढां) नई व्याही हुई (इमां) इस विमला नामकी अपनी स्त्रीको (अतिस्निग्धां) बहुत प्यारी (अन्वभूत) अनुभवन की । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (वांछिता) जिनको हम चाहते हैं (यदि) अगर वे भी (वांछेयुः) हमें चाहें तो (संसृतिः) संसार भी (ससारा एव) सार रूप ही है ॥ १ ॥

ततोऽनुनीय तां हित्वा स मित्रैः समगच्छत ।
अन्यरोधि न हि क्वापि वर्तते वशिनां मनः ॥२॥

अन्वयार्थः—(ततः) फिर (सः) वे जीवंधर स्वामी (तां) उस अपनी स्त्रीको (अनुनीय) समझा कर और (हित्वा) वहीं छोड़कर (मित्रैः) अपने मित्रोंसे (समगच्छत) आन मिले । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (वशिनां) जितेन्द्रिय पुरुषोंका (मनः) मन (क्वापि) कहीं पर भी (अन्यरोधि) दूसरोंसे रुकनेवाला (न वर्तते) नहीं होता है ॥ २ ॥

चरचिह्नं तमालोक्य बहमन्यन्त बान्धवाः ।
ऐहिकातिशयप्रीतिरतिमात्रा हि देहिनाम् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—(बांधवाः) जीवधर स्वामीके मित्रोंने (वरचिह्नं) वरके चिन्हसे युक्त (तं) उन जीवधर स्वामीको (आलोक्य) देखकर (बहु अमन्यत) अत्यंत आदरसत्कार किया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (देहिनाम्) प्राणियोंको (ऐहिकातिशयप्रीतिः) इस लोक संमधी अतिशय अर्थात् किसीकी सांसारिक बढतीमें प्रेम (अतिमात्राः भवति) अत्यन्त होता है ॥ ३ ॥

अब्रवीदस्य सोत्प्रासं बुद्धिषेणो विदूषकः ।
बहुद्वारा हि जीवानां पराराधनदीनता ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—फिर (बुद्धिषेण) बुद्धिषेण नामके (अस्य, इन जीवंधर स्वामीके (विदूषकः) विदूषकने (सोत्प्रासम्) हंसकर (अब्रवीत्) कहा। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (पराराधन-दीनता) दूसरोंकी सेवा करनेकी चतुराई (जीवानां) प्राणियोंके (बहुद्वारा) नाना प्रकारकी (भवति) होती है ॥ ४ ॥

सुलभाः खलु दौर्भाग्यादन्योपेक्षितकन्यकाः ।
व्यूढायां सुरमञ्जर्यां पौरोभाग्यं भवेदिति ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ.—" (दौर्भाग्यात्) दुर्भाग्यके कारण (अन्योपेक्षित-कन्यकाः) दूसरोसे उपेक्षा की हुई कन्याए (सुलभाः खलु) तो जिसचाहेको मिल सकती है, किन्तु (सुरमञ्जर्यां व्यूढायां) सुरम-ञ्जरीके साथ व्याह करनेपर ही (पौरोभाग्यं) आप महाभाग्यशाली (भवेत्) कहलाएगे। (इति) इस प्रकार विदूषकने जीवंधर स्वामीसे कहा ॥ ५ ॥

तद्वाक्यादयमुद्वोढुमवाञ्छीतां च मानिनीम् ।
हेतुच्छलोपलम्भेन जृम्भते हि दुराग्रहः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(अयं) इन जीवंधरकुमारने (तद्वाक्यात्) उस बुद्धिषेण विदूषकके तानरूप बचनोंसे (मानिनीम् तां) मान करने वाली उस सुरमञ्जरीको (उद्वोढुं) व्याहनेके लिये (अवाञ्छीत्) इच्छा की । अत्र निति: ! (हि) निश्चयसे (हेतुच्छलोपलम्भेन) किसी वहानेके मिलजानेसे (दुराग्रहः) मनुष्योंका दुराग्रह (जृम्भते) बढ ही जाता है ॥ ६ ॥

तत्राप्यौपयिकं भूयो यक्षमन्त्रं व्यचीचरत् ।
अनपायादुपायाद्धि वाञ्छिताप्तिर्मनीषिणाम् ॥७॥

अन्वयार्थः—(भूयः) फिर (अयं) इन जीवंधर कुमारने (तत्त्रापि) इस विषयमें (औपायिकं) उपाय भूत (यक्षमन्त्रं) यक्षके द्वारा दिये हुए मन्त्रको (व्यचीचरत) स्मरण किया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मनीषिणाम्) विद्वानोंके (वाञ्छिताप्तिः) इच्छित वस्तुकी प्राप्ति (अनपायात उपायात्) नाश नहीं होनेवाले स्थिर उपायसे ही (भवति) होती है ॥ ७ ॥

वार्धकं तत्र चोपायमुपायज्ञोऽयमौहत ।
करुणामात्रपात्रं हि बाला वृद्धाश्च देहिनाम् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(उपायज्ञः) उपायके जाननेवाले (अयं) इन जीवंधर कुमारने (तत्र) उस विषयमें "(वार्धकम उपायं) बूढेका रूप धारण करना" अच्छा उपाय (औहत) सोचा। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (देहिनाम्) लोगोंके (बाला वृद्धाश्च) बालक और वृद्ध (करुणामात्र पात्रं) अपराध हो जाने पर भी करुणाके पात्र होते हैं ॥ ८ ॥

वार्धकं तत्क्षणे चास्य मनुमाहात्म्यतोऽभवत् ।
अनवद्या सती विद्या फलमूकापि किं भवेत् ॥९॥

अन्वयार्थः—(मनुमाहात्म्यतः) मन्त्रकी महिमासे (अस्य) इस जीवंधर कुमारका (तत्क्षणे) उसी समय (वार्धकम्) बूढ़ेका रूप (अभवत्) हो गया। अत्र नीतिः (हि, निश्चयसे (अनवद्या) निर्दोष (सती ; समीचीन (विद्या) विद्या (अपि किं) क्या कभी (फलमूका) फल रहित (भवेत्) होती है (किंतु न भवेत्) किन्तु नहीं होती है ॥ ९ ॥

विजहार पुनश्चायं वर्षीयान्परितः पुरीम् ।
अन्यैरशङ्कनीया हि वृत्तिर्नीतिज्ञगोचरा: ॥ १० ॥

अन्वयार्थ —(पुनश्च) और फिर (अयं वर्षीयान्) यह बूढ़ा (पुरी परितः) उस नगरीके चारों ओर (विजहार) विहार करने लगा। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (नीतिज्ञगोचरा) नीतिज्ञ पुरुष विषयक (वृत्तिः) चाल (अन्यैः) दूसरोंसे (अशङ्कनीया भवति) शङ्का करने योग्य नहीं होती है ॥ १० ॥

प्रवयोविप्रवेषं तं वीक्षमाणा विवेकिनः ।
विषयेषु व्यरज्यन्त वार्धकं हि विरक्तये ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(प्रवयोविप्रवेषं) बूढ़े ब्राह्मणके वेषधारी (तं) उसको (वीक्षमाणाः) देखनेवाले (विवेकिनः) विवेकी पुरुष (विषयेषु) इन्द्रियोंके विषयोंमें (व्यरज्यन्त) विरक्त हुए। अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (वार्धकं) बुढ़ापा (विरक्तये भवति) विरक्तिके लिये ही होता है ॥ ११ ॥

मक्षिकापक्षतोऽप्यच्छे मांसाच्छादनचर्मणि ।
लावण्यं भ्रांतिरित्येतन्मूढेभ्यो वक्ति वार्धकम् ॥१

अन्वयार्थः—(वार्धकम्) बुढ़ापा (मूढेभ्यः) मूढ़ मनुष्यों (मक्षिकापक्षतः) मक्खियोंके पंखोंसे भी (अच्छे) पतले (मांस च्छादन चर्मणि) शरीरके मांसको ढकनेवाले चमड़ेमें (लावण भ्रांतिः) सुन्दरता मानना सर्वथा भ्रम है (इति) (एतद्) इस बातव (वक्ति) कहता है ॥ १२ ॥

प्रतिक्षणविनाशीदमायुः कायमहो जडाः ।
नैव बुध्यामहे किंतु कालमेव क्षयात्मकम् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(हे जडाः) हे मूर्खो (इदम्) यह (आयु कायं) आयु और शरीर (प्रतिक्षणविनाशि) क्षणक्षणमें नाश होनेवाला है किंतु (अहो !) खेद है ! (वयं) हम सब (नैव बुध्या महे) नहीं जानते है (किंतु कालं एव) किंतु समयको (क्षयात्मकम् बुध्यामहे) नष्ट होनेवाला समझते हैं ॥ १३ ॥

हन्त लोको वयस्यन्ते किमन्यैरपि मातरम् ।
मन्यते न तृणायापि मृतिः श्लाघ्या हि वार्धकात्॥१४

अन्वयार्थः—(हन्तः) शोक है ! (लोकः) मनुष्य (अन्ते वयसि) बुढापेकी अवस्थामें (मातरं अपि) जीवन देनेवाली माताको भी (तृणाय अपि न मन्यते) तृणके समान भी नहीं समझते हैं (अन्यै कि) औरका तो फिर कहना ही क्या है (हि यत.) इसलिये (मृतिः) मरना ही (वार्धकात्) बुढापेसे (श्लाघ्या) अच्छा है ॥ १४ ॥

इत्याद्यूहं च हास्यं च जनयन्प्राज्ञबालयोः ।
अगारं सुरमञ्जर्या वर्षीयान्पुनरासदत् ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(प्राज्ञबालयोः) बुद्धिमान और बालकोंके (इत्यादि) इस प्रकार (ऊहं) विचार (च) और (हास्यं) हास्यको (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (वर्षीयान्) यह बूढा (पुनः) फिर (सुरमञ्जर्या अगारं) सुरमञ्जरीके घर (आसदत्) पहुंचा ॥ १९ ॥

पृष्टो दौवारिकस्त्रीभिराचष्ट फलमागतेः ।
कुमारीतीर्थमात्मार्थं न ह्यसत्यं सतां वचः ॥१६॥

अन्वयार्थः—(दौवारिकस्त्रीभिः) द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंसे (पृष्टः) पूछे हुए इस बूढेने (आगतेः फलम्) अपने आनेके कारणको (आत्मार्थं) आत्माके कल्याणके लिये (कुमारी तीर्थं) कुमारी तीर्थमें स्नान करनेके लिये आया हूं " (इति) इस प्रकार (आचष्ट) कहा । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (सतां वचः) सज्जन पुरुषोंका वचन (असत्य न भवति) झूठा नही होता है ॥ १६॥

अहसन्नथ तद्वाक्यादङ्गना अप्यसंगतात् ।
अविवेकिजनानां हि सतां वाक्यमसंगतम् ॥१७॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (अङ्गनाः) द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियां (अपि) भी (असंगतात्) असवद्ध वेतुकी (तद्वाक्यात्) उसकी वातोंसे (अहसन्) हंस पड़ीं । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (अविवेकिजनानां) अविवेकी पुरुषोंको (सतां वाक्यं) सज्जन पुरुषोंका वचन (असंगतम्) असंबद्ध (भाषते) मालूम दिया करता है ॥ १७ ॥

अरुद्धः कृपया ताभिरगाहिष्ट च तद्गृहम् ।
सर्वथा दग्धबीजाभाः कुतो जीवन्ति निर्घृणाः॥१८॥

अन्वयार्थः—(ताभिः) उन स्त्रियोसे (कृपया) कृपा करके (अरुद्धः) नही रोका हुआ वह बूढ़ा (तद्गृहम्) सुरमञ्जरीके घरमें (अगाहिष्ट) चला गया। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (दग्धबीजाभाः) जले हुए बीजकी तरह आभावाले (सर्वथा निर्घृणाः) सर्वथा दया रहित जीव (कुतः) कैसे (जींवंति) जी सकते हैं ॥१८॥

अभ्यधुः सुरमञ्जर्याः सुन्दर्यः सभया इदम् ।
सभयस्नेहसामर्थ्याः स्वाम्यधीना हि किंकराः ॥१९॥

अन्वयार्थः—फिर (सुन्दर्यः) द्वार रक्षक सुन्दरियोंने (सभया) भय सहित (सुरमञ्जर्याः) सुरमञ्जरीसे (इदं अभ्यधुः) यह सब बात कह दी। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (स्वाम्यधीनाः) स्वामीके आधीन रहनेवाले (किंकराः) नौकर लोग (सभयस्नेहसामर्थ्या) भय और स्नेहकी सामर्थ्यवाले होते हैं॥ १९॥

पुरुषद्वेषिणी सापि वर्षीयांसं न्यशामयत् ।
भवितव्यानुकूलं हि सकलं कर्मदेहिनाम् ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(पुरुषद्वेपिणी सापि) पुरुषोंसे द्वेष करनेवाली उस सुरमञ्जरीने भी (वर्षीयांसं) उस बूढ़ेको (न्यशामयत्) देख कर बैठा लिया। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (देहिनाम्) जीवोंके (सकलं कर्म) सम्पूर्ण काम (भवितव्यानुकूलं भवंति) होनहारके अनुसार ही हुआ करते हैं॥ २०॥

बुभुक्षितं तमालक्ष्य भोजयामास सा सती ।
अन्तस्तत्त्वस्य याथात्म्ये न हि वेषो नियामकः॥२१॥

अन्वयार्थः—(सा सती) उस श्रेष्ठ कन्याने (तं बुभुक्षितं आलक्ष्य) उस बूढेको भूखा समझकर (भोजयाभास) भोजन कराया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (वेषः) बाहरी वेश (अन्तस्तत्त्वस्य) भीतरी अन्तर स्वरूपकी (याथात्म्ये) यथार्थताका (नियामकः न भवति) जतलानेवाला नहीं होता है ॥ २१ ॥

भुक्त्वाथ वार्धकेनेव सुष्वाप तल्पिमे कृती ।
योग्यकालप्रतीक्षा हि प्रेक्षापूर्वविधायिनः ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (कृती) वह बुद्धिमान बूढ़ा (भुक्त्वा) भोजन करके (वार्धकेन एव) बुढापेकी थकावटसे ही मानो (तल्पे) किसी शय्या पर (सुष्वाप) आराम करनेके लिये पड़ गया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (प्रेक्षापूर्वविधायिनः) विचारपूर्वक कार्य करनेवाले मनुष्य (योग्यकालप्रतीक्षा भवंति) योग्य उत्तम समयकी बाट जोहा करते है ॥ २२ ॥

भुवनमोहनं गानमगासीदथ गानवित् ।
परस्परातिशायी हि मोहः पञ्चेन्द्रियोद्भवः ॥२३॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनतर (गानवित्) गान विद्याके जाननेवाले उस बुड्ढेने (भुवनमोहन) जगतको मोहित करनेवाला (गानं) गाना (अगासीत्) गाया। अत्र नीतिः। (हि) निश्चयसे (पंचेन्द्रियोद्भवः) पांचों इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुआ (मोहः) मोह (विषयोंमे प्रीति) (परस्परातिशायी) एक दूसरेसे अधिकाधिक होती है ॥ २३ ॥

गानकौशलतः सैनं शक्तिमन्तममन्यत ।
विशेषज्ञा हि बुध्यन्ते सदसन्तौ कुतश्चन ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(सा) उस सुरमञ्जरीने (गानकौशलतः) गानेकी कुशलतासे (एनं) इस बुड्ढेको (शक्तिमन्तं) और कार्य करनेमें भी शक्तिवाला (अमन्यत) समझा । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (विशेषज्ञाः) विशेष बातको जाननेवाले मनुष्य (कुतश्चन) किसी न किसी कारणसे (सदसन्तौ) सद असत् बातका (बुध्यन्ते) निश्चय कर लिया करते हैं ॥ २४ ॥

ततः स्वकार्यमप्यस्मात्सादराभूत्परीक्षितुम् ।
स्वकार्येषु हि तात्पर्यं स्वभावादेव देहिनाम् ॥२५॥

अन्वयार्थः–(ततः) इस लिये (सा) वह सुरमञ्जरी (अस्मात्) उस बूढे ब्राह्मणसे (स्व कार्यं अपि) अपने कार्यको भी (परीक्षितुं) परीक्षा करनेके लिये (सादरा अभूत्) आदरयुक्त हुई । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (देहिनाम्) देह धारियोंको (स्वभावात्) स्वभावसे ही (स्वकार्येषु) अपने कार्योंमें (तात्पर्यं भवति) तत्परता हुआ करती है ॥ २५ ॥

गानवच्छक्तिरन्यत्र किमस्तीत्यन्वयुङ्क्त सा ।
याञ्चायां फलमूकायां न हि जीवन्ति मानिनः ॥२६॥

अन्वयार्थः—(सा) उस सुरमञ्जरीने “ (गानवत्) गानेके सदृश (अन्यत्रापि) दूसरे कार्योंमें भी (किं) क्या तुम्हारी (शक्तिः अस्ति) शक्ति है ” (इति) इस प्रकार (अन्वयुङ्क्त) पूछा अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (याञ्चायां) याचनाके (फल-

मूकायां) निष्फल होनेपर (मानिनः) मानी पुरुष (न जीवन्ति) नहीं जीते हैं ॥ २६ ॥

बाढमस्ति समस्तेपीत्यब्रवीत्प्रौढनैपुणः ।
उक्तिचातुर्यतो दार्ढ्यमुक्तार्थे हि विशेषतः ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(प्रौढनैपुणः) अत्यन्त चतुर उस बुड्ढेने (बाढं) हां (ममशक्तिः) मेरी शक्ति (समस्तेऽपि) सम्पूर्ण विषयोंमें (अस्ति) है " (इति) इस प्रकार (अब्रवीत्) कहा (उत्तर दिया) अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (उक्तार्थे) कहे हुए पदार्थके विषयमें (उक्तिचातुर्यतः) कहनेकी चतुरतासे ही (विशेषतः) बहुत (दार्ढ्यं) दृढता (भवति) होती है ॥ २७ ॥

अभीप्सितवरप्राप्तावुपायं साप्ययाचत ।
रागान्धे हि न जागर्ति याञ्चादैन्यवितर्कणम् ॥२८॥

अन्वयार्थः—तब (सापि) उस सुरमञ्जरीने भी (अभीप्सितवरप्राप्तौ) अपने चाहे हुए वरकी प्राप्ति विषयक (उपायं अयाचत) उपायकी याचना की । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (रागान्धे) प्रेमसे अन्धे पुरुषोंमें (याञ्चादैन्यवितर्कणम्) याचना संबंधी दीनताका विचार (न जागर्ति) नहीं होता है ॥ २८ ॥

कामं कामप्रदं सोऽयं कामदेवमुपादिशत् ।
मनीषितानुकूलं हि प्रीणयेत्प्राणिनां मनः ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—फिर (सः अयं) उस बुड्ढेने (कामं) अतिशय रीतिसे (कामप्रदं) सब मनोरथोंको सफल करनेवाला (कामदेवं) कामदेवकी मूर्तिकी पूजाका (उपादिशत्) उपदेश दिया। अत्र नीतिः

(हि) निश्चयसे (मनीषितानुकूलं) इष्ट मनोरथके अनुकूल कहना ही (प्राणिनां मनः) जीवोंके मनको (प्रीणयेत्) प्रसन्न करता है ॥

मनीषितं च हस्तस्थं मेने सा सुरमञ्जरी ।
मनोरथेन तृप्तानां मूललब्धौ तु किं पुनः ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—तब फिर (सा सुरमञ्जरी) उस सुरमञ्जरीने (मनीषितम्) अपने मनोरथको (हस्तस्थं) अपने हाथमें आया हुआ (मेने) समझा । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (मनोरथेन तृप्तानां) मनोरथसे संतुष्ट हो जानेवाले पुरुषोंको (मूललब्धौ) यदि मूल पदार्थ मिल जाय (तु) तो (पुनः) फिर (किं वक्तव्यं) कहना ही क्या है ॥ ३० ॥

अनैषीत्तामसौ पश्चात्कामकोष्ठं यथेप्सितम् ।
विचाररूढकृत्यानां व्यभिचारः कुतो भवेत् ॥३१॥

अन्वयार्थः—(पश्चात्) फिर (असौ) यह बूढा ब्राह्मण (यथेप्सितम्) निश्चित किये हुए (कामकोष्ठं) कामदेवके मन्दिरमें (तां) उसको (अनैषीत्) ले गया । अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (विचार रूढ़ कृत्यानां) बिचारपूर्वक कार्य करनेवाले पुरुषोंके (व्यभिचारः) कार्यमें हानि (कुतः) कैसे (भवेत्) हो सकती है ॥ ३१ ॥

कामं सा प्रार्थयामास जीवकस्वामिकाम्यया ।
जन्मान्तरानुबन्धौ हि रागद्वेषौ न नश्यतः ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थः—वहां (सा) उस कुमारीने (जीवकस्वामिकाम्यया) जीवंधर स्वामीकी प्राप्ति होनेकी इच्छासे (कामं) कामदेवसे (प्रार्थ-

यामास) प्रार्थना की । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (जन्मान्त-रानुवन्धौ) जन्म जन्मान्तरसे बंधे हुए (रागद्वेषौ) रागद्वेष (न नश्यतः) नाश नहीं होते हैं ॥ ३२ ॥

लब्धो वर इति प्रोक्तं बुद्धिषेणेन सा सती ।
मनोभुवो वचो मेने स्त्रीणां मौढ्यं हि भूषणम् ॥३३॥

अन्वयार्थ—(तदा) उस समय(सा सती) उस श्रेष्ठ कन्याने "(लब्धोवरः) तूने अपने वरको प्राप्त कर लिया" (इति) इस प्रकार (बुद्धिषेणेन प्रोक्तं) बुद्धिषेणसे कहे हुए वचनको (मनोभुवः) कामदेवका (वचः) वचन (मेने) समझा । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (स्त्रीणां) स्त्रियोंका (मौढ्यं) मूढता ही (भूषणम्) भूषण है ॥ ३३ ॥

कुमारं दर्शिताकारं दृष्ट्वा जिह्राय तत्क्षणे ।
मृतकल्पा हि कल्पन्ते निर्लज्जा निष्कृपा इव ॥३४॥

अन्वयार्थ—(फिर वह कन्या (तत्क्षणे) उसी समय (दर्शि-ताकारं) दिखलाया है असलीरूप जिन्होंने ऐसे (कुमारं) कुमारको (दृष्ट्वा) देखकर (जिह्राय) लज्जित हुई । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (निर्लज्जाः) लज्जा रहित पुरुष (निष्कृपाः इव) दया हीन पुरुषोंकी तरह (मृतकल्पाः) जीते हुए भी मरे हुएके समान (कल्पन्ते) कल्पना किये जाते हैं ॥ ३४ ॥

पतिकृत्येन पत्नीं तां सुतरां सोऽप्यतोषयत् ।
संसारोऽपि हि सारः स्याद्दम्पत्योरेककण्ठयोः ॥३५॥

अन्वयार्थः—वहां (सोऽपि) उस जीवंधरकुमारने भी (पति कृत्येन) पति कृत्य प्रेमालापादि द्वारा (तां पत्नीं) उस स्त्रीको (सुतरां) अत्यंत (अतोषयत्) संतोषित किया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (दम्पत्योः एक कण्ठयोः) स्त्री पुरुषके एकसा प्रेम होने पर (संसारः अपि) संसार भी (सारः स्यात्) साररूप हो जाता है ॥ ३९ ॥

ततः कुबेरदत्तेन दत्तां तां सुरमञ्जरीम् ।
सुमतेरात्मजां सोऽयमुपयेमे यथाविधि ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (सः अयम्) उस इस जीवंधर कुमारने (कुबेरदत्तेन दत्तां) कुबेरदत्तसे दी हुई (सुमतेः आत्मजां) सुमतीकी पुत्री (तां सुरमञ्जरीं) उस सुरमञ्जरीको (यथाविधि) विधिपूर्वक (उपयेमे) ब्याहा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्वादिभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ सान्वयार्थो सुरमञ्जरीलम्भो नाम नवमो लम्बः ॥

ॐ

दशमो लम्बः

अथ पाणिगृहीतीं तां बहुमेने बहुप्रियः ।
बहुयत्नोपलब्धे हि प्रेमबन्धो विशिष्यते ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (बहु प्रियः) बहुत स्त्रियोंके पति उस जीवंधर कुमारने (तां पाणिगृहीतीं) उस ब्याही हुई सुरमञ्जरी स्त्रीको (बहु मेने) बहुत माना । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (बहुयत्नोपलब्धे) बहुत यत्नसे प्राप्त वस्तुमें (प्रेमबन्धः) प्रेमका संबंध (विशिष्यते) विशेषतर हुआ ही करता है ॥ १ ॥

कृच्छ्रेणाराध्य तां भूयो मित्राणां पार्श्वमाश्रितः ।
स्वामीच्छाप्रतिकूलत्वं कुलजानां कुतो भवेत् ॥२॥

अन्वयार्थः—(भूयः) फिर जीवंधर कुमार (तां) उस स्त्रीको (कृच्छ्रेण) किसी न किसी प्रकारसे (आराध्य) समझा बुझा करके (मित्राणां पार्श्वं) अपने मित्रोंके समीप (आश्रितः) आगये। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (कुलजानां) कुलीन स्त्रियोंके (स्वामीच्छाप्रतिकूलत्वं) अपने स्वामीकी इच्छाके विरुद्धपना (कुतः) कैसे (भवेत्) हो सकता है अर्थात्—नहीं हो सकता ॥२॥

सचित्रीयस्तदा मित्रैः पित्रोरन्तिकमाययौ ।
आत्मदुर्लभमन्येन सुलभं हि विलोचनम् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(तदा) उस समय सुरमञ्जरीके सहज मिल जानेसे (सचित्रीयः) आश्चर्य युक्त (मित्रैः) मित्रोंके साथ

जीवंधर स्वामी (पित्रोः) सुनन्दा व गन्धोत्कट (माता पिता)के (अन्तिकम्) समीप (आययौ) आये । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (आत्म दुर्लभम्) अपने आपको दुर्लभ वस्तु यदि (अन्येन सुलभं) दूसरेको सहज ही मिल जाय तो (विलोचनम्) विस्मयको करनेवाली ही होती है ॥ ३ ॥

पित्रोरप्यतिमात्रोऽभूत्पुत्रस्नेहोऽस्य वीक्षणात् ।
कस्यानन्दकरो न स्यात्कृतान्तास्यादपागतः ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(अस्य वीक्षणात्) इसके देखनेसे (पित्रोरपि) जीवंधर स्वामीके मातापिताको भी (अतिमात्रः) अतिशय (पुत्रस्नेहः अभूत्) पुत्रप्रेम उत्पन्न हुआ । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (कृतान्तास्यात्) कालके मुखसे (अपागतः पुत्रः) निकला हुआ पुत्र (कस्य) किसको (आनंदकर. न स्यात्) आनंदकरनेवाला नहीं होता है अर्थात् होता ही है ॥ ४ ॥

ततो गन्धर्वदत्ता च गुणमाला च वल्लभे ।
उल्लाघतां क्रमान्नीते नीतिरेषा हि संसृतौ ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) फिर जीवंधर स्वामीने (गन्धर्वदत्ता गुणमाला च वल्लभे) गन्धर्वदत्ता और गुणमाला अपनी प्यारी स्त्रियोंको (क्रमात्) बारी २से (उल्लाघतां) प्रसन्नताको (नीते) प्राप्त किया (हि) निश्चयसे (संसृतौ) संसारकी (एषा) यह ही (नीतिः) नीति है ॥ ५ ॥

अथ गन्धोत्कटेनाय मन्त्रयित्वा ततो ययौ ।
विधित्सिते ह्यनुत्पन्ने विरमन्ति न पण्डिताः ॥६॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (अयं) यह जीवंधर कुमार (गंधोत्कटेन सह) गंधोत्कटके साथ (मंत्रयित्वा) सलाह करके (ततः ययौ) वहांसे चले गये (अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (पण्डिताः) विद्वान पुरुष (विधित्सिते) करनेके लिये इच्छित कार्यके (अनुत्पन्ने) पूर्ण नही होने तक (न विरमति) विश्राम नहीं लेते हैं ॥ ६ ॥

विदेहाख्ये ततो देशे धरण्यास्तिलकोपमाम्।
तिलकान्तधरण्याख्यां राजधानीमशिश्रयत् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) वहांसे चल कर जीवंधर कुमार विदेहाख्ये देशे) विदेह नामके देशमें (तिलकोपमाम्) तिलकके समान (तिलकांतधरण्याख्यां) धरणीतिलक नामकी (राजधानीं) राजधानीको (अशिश्रयत् प्राप्त हुए ॥ ७ ॥

महितो मातुलेनात्र विदेहाधिपभूभुजा।
भागिनेयो महाभागो मह्यां केन न मह्यते ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(अत्र) यहां (विदेहाधिपभूभुजा) विदेह देशके स्वामी राजा इसके (मातुलेन) मामाने (महितः) इनका बड़ा आदर सत्कार किया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मह्यां) पृथ्वीमें (महाभागः) भाग्यशाली (भागिनेयः) अपनी बहिनके पुत्रको (केन न मह्यते) कौन नहीं पूजता है अर्थात्—सब पूजते हैं ॥ ८ ॥

आसीद्गोविन्दराजोऽपि तद्राज्यस्थापनोद्यतः।
स्वयं परिणतो दन्ती प्रेरितोऽन्येन किं पुनः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(गोविंदराजः अपि) गोविंदराज भी (तद्राज्यस्थापनोद्यतः) जीवंधर स्वामीके गये हुए राज्यको फिरसे स्थापन

करनेके लिये तैयार (आसीत्) हुआ । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (स्वयं परिणतः दन्ती) अपने आप ही दन्त प्रहार करनेवाला हाथी (अन्येन प्रेरितः) यदि दूसरेसे प्रेरणा किया जाय तो (किं पुनः वक्तव्यं) फिर कहना ही क्या है ॥ ९ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रशालायां मन्त्रयामास मन्त्रवित् ।
न ह्यमन्त्रं विनिश्चेयं निश्चिते च न मन्त्रणम् ॥१०॥

अन्वयार्थः—(मन्त्रवित्) मन्त्रके जाननेवाले राजाने (मन्त्रशालायां) मन्त्रशालामें (मन्त्रिभिः) मन्त्रियोंके साथ (मन्त्रयामास) सलाह की । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (विनिश्चेयं) निश्चय करने योग्य बात (अमन्त्रं) विना मन्त्रकें (न भवति) नहीं होती है (च) और (निश्चिते) किसी बातका निश्चय हो जाने पर (मन्त्रणम् न) सलाह नही की जाती है ॥ १० ॥

काष्ठाङ्गारस्य संदेशं सचिवैः शुश्रुवानयम् ।
ज्ञात्वा हि हृदयं शत्रोः प्रारब्धव्या प्रतिक्रिया ॥११॥

अन्वयार्थः—(अयं) इस गोविन्द राजाने (सचिवैः) मन्त्रियों द्वारा (काष्टाङ्गारस्य) काष्टाङ्गारका यह वक्ष्यमाण (संदेशं) संदेश (शुश्रुवान्) सुनाया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (शत्रोः) शत्रुका (हृदयं) मन (ज्ञात्वा) जानकर ही (प्रतिक्रिया) प्रतीकार (प्रारब्धव्या) प्रारंभ करना चाहिये ॥ ११ ॥

अग्रेनाहमपख्यातिं राजघे मद्हस्तिनि ।
लब्धवानवबुध्येत मिथ्येयं तत्त्ववेदिना ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(राजघे मदहस्तिनि) राजा सत्यंधरको एक मदोन्मत्त हाथीके मारने पर (अघेन) पापसे (अहं) मैंने ही (अपख्यातिं) अपयशको (लब्धवान्) प्राप्त किया । किन्तु (तत्ववेदिना) यथार्थ बातके जाननेवाले (इयं) यह बात (मिथ्या) झूठी (अवबुध्येत) समझते हैं ॥ १२ ॥

निःशल्योऽहं भवाम्येष भवत्यत्र समागते ।
दुर्जनेऽपि हि सौजन्यं सुजनैर्यदि संगमः ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(भवति) आपके (अत्र) यहां (समागते) आनेपर (एषः अहं) अपयशी मैं (निःशल्यः) निःशल्य (भवामि) हूंगा अत्र नीतिः । (हि) निश्चयसे (यदि) अगर (सुजनैः) सज्जन पुरुषोंके साथ (संगमः) समागम मिल जाय तो फिर (दुर्जने अपि) दुष्ट पुरुषमें भी (सौजन्यं) सज्जनता (भवति) हो जाती है ॥१३॥

इत्युक्त्या निश्चितोऽरातिरतिसंधित्सुरञ्जसा ।
असतां हि विनम्रत्वं धनुषामिव भीषणम ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(इति उक्त्या) इस संदेशेसे "(अरातिः) शत्रु (अञ्जसा) शीघ्र ही (अतिसंधित्सुः) धोखा देना चाहता है" (इति) यह (निश्चितः) निश्चय किया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (असतां विनम्रत्वं) दुर्जनोंका नम्र होना (धनुषां इव) धनुषके सदृश (भीषणम्) भयंकर होता है ॥ १४ ॥

विप्रलम्भोत्सुके शत्रौ कार्यान्धोऽयमतप्यत ।
दुर्जनाग्रे दि सौजन्यं कर्दमे पतितं पयः ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(कार्यान्धः) अपने कार्यमें अंध (जिसे अपने कामके सिवाय दूसरा कुछ नहीं सूझता) ऐसे (अयं) यह गोविंद-राजा (विप्रलम्भोत्सुके) धोखा देनेमें उत्सुक (शत्रौ) शत्रुके ऊपर (अतप्यत) अत्यन्त तप्तायमान हुआ। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (दुर्जनाग्रे) दुष्ट पुरुषके अगाड़ी (सौजन्य) सुजनता करना (कर्दमें) कीचड़में (पयः पतितम्) दूध फेंकनेके समान है ॥१५॥

आहूतास्तेन साकूतं गच्छामस्तच्छलाद्वयम् ।
इत्युच्चैर्निश्चिकायासौ बकायन्ते हि जिष्णवः ॥१६॥

अन्वयार्थः—(तेन) उस काष्टाङ्गारसे (साकूतं) किसी अभि-प्रायसे (आहूतः) बुलायें हुए (वयं) हम लोग भी (तच्छलात्) उसको छलनेके लिये (गच्छामः) वहां चलें (इति) यह (असौ) इस गोविन्दराजाने (उच्चैः निश्चिकाय) अच्छी तरहसे निश्चय किया। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (जिष्णवः) दूसरे शत्रुओंको जीतनेवाले राजा लोग (बकायन्ते) बगुलेके सदृश आचरण करते हैं॥

काष्टाङ्गारेण संजातं सख्यं प्रख्यापयन्नसौ ।
डिण्डिमं ताडयामास गतेर्वार्ता हि पूर्वगा ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(काष्टाङ्गारेण सह) काष्टाङ्गारके साथ (सख्यं) हमारी मित्रता (संजातं) होगई (इति) ऐसा (प्रख्यापयन्) प्र-सिद्ध करते हुए (असौ) इस राजाने (डिण्डिमं) ढिंढोरा (ताड़यामास) पिटवा दिया अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (वार्ता) इस समाचारकी सूचना (गतेः पूर्वगा) इनके जानेसे पहले पहुंच गई ॥ १७ ॥

चातुरङ्गबलं पश्चाच्चतुरोऽयं न्यशामयत् ।
आलोच्यात्मारिकृत्यानां प्राबल्यं हि मतो विधिः॥१८

अन्वयार्थः—(पश्चात्) इसके अनंतर (चतुरः) चतुर (अयं राजा) इस राजाने (चातुरङ्गबल) अपनी चतुरङ्गी बडी भारी सेना (न्यशामयत्) चलनेके लिये तैयार की। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (आत्मारिकृत्यानां) अपनी और शत्रुके कार्योंकी (प्राबल्यं) प्रबलताको (आलोच्य) विचार करके ही (विधिः मतः) किसी कामका करना निश्चित किया जाता है ॥ १८ ॥

प्रतस्थे चाथ सल्लग्ने पात्रदानादिपूर्वकम् ।
दानपूजातपःशीलशालिनां किं न सिध्यति ॥१९॥

अन्वयार्थ —(अथ) इसके अनतर (सल्लग्ने) शुभलग्नमें (पात्रदानादि पूर्वकम्) पात्रदानादि पुण्य कर्म पूर्वक जीवंधर सहित गोविंदराज (प्रतस्थे च वहांसे चलदिया। अत्र नीतिः ! (ही) निश्चयसे (दानपूजातप शीलशालिना) दान, पूजा, तप और शीलादिकको पालन करने वाले मनुष्योंके (किं) क्या (नसिध्यति) सिद्ध नही होता है ॥

अर्थात्—उनके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ १९ ॥

अथ राजपुरीं प्राप्य राजा कैश्चित्प्रयाणकैः ।
निकषा तत्पुरीं क्वापि निषसाद महाबलः ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (महाबलः) बडी भारी सेनाका स्वामी (राजा) यह गोविन्दराजा (कैश्चित् प्रयाणकैः) कई एक पडाव डालेनके अनतर (राजपुरीं प्राप्य) राज-

पुरीको प्राप्त कर (तत्पुरीं निकषा) उस राजपुरीके समीप (क्वापि) कहींपर (निषसाद) ठहर गया ॥ २० ॥

प्राभृतं प्राहिणोत्तस्य काष्ठाङ्गारो मुधा मुहुः ।
हन्त कापटिका लोके बुधायन्ते हि मायया ॥२१॥

अन्वयार्थः—(मुधा) व्यर्थ (काष्ठाङ्गारः) काष्टाङ्गारने (तस्य पार्श्वे) उस गोविन्दराजके पास (मुहुः) बार २ (प्राभृतं) बहुतसी भेंटें (प्राहिणोत्) भेजीं । अत्र नीतिः ! (हन्त) खेद है ! कि (हि) निश्चयसे (लोके) संसारमें (कापटिका) कपटीलोग (मायया) मायासे (बुधायन्ते) पण्डित पुरुषोंके समान आचरण करते हैं ॥ २१ ॥

प्रतिप्राभृतमेतस्मै प्राहैषीत्स्वामिमातुलः ।
आ समीहितनिष्पत्तेराराध्याः खलु वैरिणः ॥२२॥

अन्वयार्थः—(स्वामिमातुलः) जीवंधर स्वामीके मामाने भी (एतस्मै) इस काष्टाङ्गारके लिये (प्रति प्राभृतम्) भेंटके बदलेमें भेंट (प्राहैषीत्) भेजी । अत्र नीतिः ! (खलु) निश्चयसे (आ समीहितनिष्पत्तेः) अपने मनोरथकी सिद्धि पर्यंत (वैरिणः) शत्रु भी (आराध्याः भवंति) आराधना करने योग्य होते हैं॥२२॥

कन्याशुल्कतया लोके यन्त्रभेदमघोषयत् ।
उपायप्रष्ठरूढा हि कार्यसिद्धानिरङ्कुशाः ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—और फिर गोविन्दराजने (लोके) लोकमें (कन्याशुल्कतया) कन्याके शुल्कपनेसे (यन्त्रभेदं अघोषयत्) यन्त्र भेदकी घोषणा कराई अर्थात् गोविन्दराजने यह घोषणा

कराई कि जो चंद्रक यंत्रको भेदन करेगा मैं उसे अपनी कन्या व्याह दूंगा अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (उपायपृष्टरूढा) सदुपायमें तत्पर पुरुष (कार्यनिष्टानिरंकूशाः भवन्ति) नियमसे कार्यको विघ्न रहित सिद्ध करलिया करते हैं ॥ २३ ॥

धनुर्धराश्च संभूतास्त्रैवर्णिककुलोद्भवाः ।
आमोहो देहिनामास्थामस्थानेऽपि हि पातयेत् ॥२४॥

अन्वयार्थः—तदनंतर (त्रैवर्णिक कुलोद्भवाः) तीनोंवर्णोंके[1] कुलमें उत्पन्न (धनुर्धराः) धनुष धारी (संभूताः) वहां आकर इकट्ठे हो गये। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (आमोहः) मोहका सद्भाव अर्थात् जब तक मोह रहता है तब तक (देहिनाम्) जीवोंकी (आस्थां) बुद्धि अथवा यत्नको (अस्थानेऽपि) उसके नहीं पाने योग्य वस्तुमें भी (पातयेत्) पतन करा देता है ॥ २४ ॥

ततश्चन्द्रकयन्त्रस्थवराहत्रयभेदने ।
न शेकुश्चापिनः सर्वे क विद्या पारगामिनी ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) फिर (सर्वे चापिनः) सम्पूर्ण धनुषधारी (चन्द्रकयंत्रस्थवराहत्रयभेदने) चंद्रक यंत्रमें बने हुए वराहोंके छेदनेमें (न शेकुः) समर्थ नहीं हुए। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (पारिगामिनी) परिपूर्ण (विद्या) विद्या (क) कहा रक्खी है ॥ २५ ॥

अलातचक्रनः शीघ्रं चक्रमारुह्य हेलया ।
विव्याध विजयासूनुर्भानुः किं न तमोहरः ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(विजयासूनुः) विजया रानीके पुत्र जीवंधर

१—तीन वर्णके कुल—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य ।

स्वामीने (चक्रं आरुह्य) चन्द्रक यंत्र पर चढ़कर (हेलया) क्रीड़ा मात्रसे ही (शीघ्रं) शीघ्र ही (अलातचक्रतः) अलात चक्रसे तीनों वराहोंको (विव्याध) भेदन कर दिया। अत्र नीतिः ! निश्चयसे (किं) क्या (भानुः) सूर्य (तमोहरः न भवति) अन्धकारको नाश करनेवाला नहीं है किन्तु है ही ॥ २६ ॥

अथ गोविन्दराजोऽपि राज्ञामित्थमचीकथत् ।
सात्यंधरिरयं हीति स्थाने हि कृतिनां गिरः॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (गोविन्दराजः अपि) गोविन्दराजने भी (राज्ञां समक्षं) वहां राजाओंके अगाड़ी " (अयं सात्यंधरिः) यह सत्यंधर महाराजके पुत्र हैं इति " (इत्थं अचीकथत्) इस प्रकार कहा। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (कृतिनां) बुद्धिमान पुरुषोंकी (गिरः) वाणी (स्थाने) योग्य स्थानमें ही (भवति) होती है ॥ २७ ॥

राजानोऽप्येवमस्माभिरस्मारीत्यभ्यनन्दिषुः ।
आचष्टे हि नरेन्द्रत्वमालीढादिषु पाटवम् ॥ २८ ॥

अन्वयार्थः—(राजानः अपि) यह बात सुनकर राजा लोगोंने भी " (एवं) ऐसा (अस्माभिः) हम लोग भी (अस्मारि) स्मरण करते हैं " (इति) इस प्रकार (अभ्यनन्दिषुः) राजपुत्रकी तारीफ की। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (आलीढादिषु पाटवम्) आलीढादि पांच स्थानोंमें चतुरताने जीवंधरके (नरेन्द्रत्व) राजापनेको (आचष्टे) कहा अर्थात् धनुषधारियोंमें जीवंधरकी चतुराई देखकर राजा लोगोंने यह निश्चय कर लिया कि अवश्य यह सत्यंधर महाराजके पुत्र हैं ॥ २८ ॥

काष्ठाङ्गारः कुमारस्य वीक्षणात्क्षीणमानसः ।
तच्छ्रुतेर्मृतकल्पोऽयमनल्पाधिरचिन्तयत् ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—(कुमारस्य) जीवंधर कुमारके (वीक्षणात्) देखनेसे (क्षीणमानसः) क्षीणचित्त (अयं काष्ठाङ्गार) यह काष्ठाङ्गार (तत् श्रुतेः) गोविन्द महाराजकी वार्ताको सुननेसे (मृतकल्पः) मरे हुएके समान (अनल्पाधिः) अत्यंत मानसीक व्यथासे व्यथित होकर (अचिन्तयत्) विचार करने लगा ॥ २९ ॥

सात्यंधरौ च सत्यस्मिन्सद्यो हन्त वयं हताः ।
वीरेण हि मही भोज्या योग्यतायां च किंपुनः ॥३०॥

अन्वयार्थ—(सात्यंधरौ अस्मिन् सति) सत्यंधर महाराजका पुत्र इसको होनेपर तो (हन्त !) हाय ! (वयं) हम (सद्यः) अभी (हताः) मारे गये । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (मही) पृथ्वी (वीरेण) वीर (भोज्या) भोग्या (भवति) होती है (पुनः) फिर (योग्यतायां) सब प्रकारकी योग्यता रहने पर (तु कि वक्तव्यं) तो कहना ही क्या है ॥३०॥

कथमेनं वणिक्पाशं मथनोऽप्यवधीत्तदा ।
आत्मनीने विनात्मानमञ्जसा न हि कश्चन ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(तदा) उस समय (मथनः अपि) मथनने भी मेरी आज्ञासे (एनं वणिक्पाशं) इस कत्सित वैश्यको (कथं) कैसे (अवधीत्) मारा था । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे इसलोकमें (आत्मनीने) अपने हितके लिये (आत्मानं) अपने (विना) बिना (कश्चन) कोई (अञ्जसा हितःन) सच्चा हित कारी नहीं है ॥ ३१ ॥

दुराकूतः किमाहूतो मातुलोऽस्य मया मुधा ।
स्ववधाय हि मूढात्मा कृत्योत्थापनमिच्छति ॥३२॥

अन्वयार्थः—(मया) मैने (दुराकूतः) दुष्ट अभिप्राय वाले (अस्य) इसके (मातुलः) मामाको (मुधा) व्यर्थ (किमाहूतः) क्यों बुलाया । अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (मूढात्मा) मूर्ख पुरुष (स्ववधाय) अपने नाशके लिये (कृत्योत्थापनम्) किसी कार्यके रचना करनेकी अपने आप ही (इच्छति) इच्छा किया करते हैं ॥ ३२ ॥

गोविन्दराजयुक्तोऽयं दुर्दान्तः किं विधित्सति ।
मरुत्सखे मरुद्भूते मह्यां किं वा न दह्यते ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थः—(गोविदराजयुक्तः) गोविदराजसे युक्त होकर (अयं दुर्दातः) यह कठनाईसे दमन होनेवाला कुमार (किं विधित्सति) क्या करेगा अर्थात् यह मेरे लिये सब अनिष्टोंको करनेके लिये समर्थ है । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मरुद्भूते) वायुके वेगसे प्रज्वलित (मरुत्सखे) अग्निके होने पर (मह्यां) पृथ्वीमें (किंवा) क्या वस्तु (न दह्यते) नहीं जलती है अर्थात् सब भस्मीभूत हो जाती हैं ॥ ३३ ॥

इति चिन्ताकुलं शत्रुं स्वामिमित्राणि चिक्षिपुः ।
विपदो वीतपुण्यानां तिष्ठन्त्येव हि पृष्ठतः ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थः—(स्वामिमित्राणि) जीवंधर स्वामीके मित्रोंने (इति) इस प्रकार (चिन्ताकुलं) चिन्तासे व्याकुल (शत्रुं) शत्रु काष्ठाङ्गारको (चिक्षिपुः) भड़काया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे

(वीतपुण्यानां) जिनका पुण्यकर्म क्षीण हो गया है उन पुरुषोंके (विपदः) विपत्तियां (पृष्ठतः) पीछे (तिष्ठन्ति एव) लगी ही रहती हैं ॥ ३४ ॥

मत्सरी कौरवेणायं भर्त्सनादयुयुत्सत ।
मत्सराणां हि नोदेति वस्तुयाथात्म्यचिन्तनम् ॥३५॥

अन्वयार्थः—फिर (अयं मत्सरी) मत्सर भाव रखने वाले इस काष्ठाङ्गारने (भर्त्सनात्) ताड़न और अपमानसे (कौरवेण सह) कुरुवंशी जीवंधर स्वामीके साथ (अयुयुत्सत) युद्ध करनेकी इच्छा की । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मत्सराणां) मत्सरी पुरुषोंके (वस्तुयथात्म्यचिन्तनम्) पदार्थके यथार्थ स्वरूपका विचार करना (न उदेति) नहीं होता है ॥ ३५ ॥

केचित्कौरवतः केचिद्वैरितोऽप्यभवन्नृपाः ।
सुजनेतरलोकोऽयमधुना न हि जायते ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थः—(युद्धे) उस युद्धमें (केचित् नृपाः) कुछ राजा तो (कौरवतः) जीवंधर स्वामीकी ओर (अभवन्) हो गये और (केचित्) कुछ (वैरितः अपि) शत्रुके पक्षमें (अभवन्) हो गये । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (सुजनेतरलोकः) सज्जन और दुर्जनका पक्ष करनेवाला (अयं) यह संसार (अधुना) अभी ही (न जायते) नही होगया किन्तु हमेशासे चला आ रहा है ॥३६॥

कौरवोऽप्याहवेऽरातिं लोकान्तरमजीगमत् ।
दुर्बला हि बलिष्ठेन बाध्यन्ते हन्त संसृतौ ॥३७॥

अन्वयार्थः—(कौरवः अपि) कुरुवंशी जीवंधर स्वामीने भी

(आहवे) संग्राममें (अरातिं) शत्रुको (लोकान्तरं अजीगमत्) पर-लोक पहुंचा दिया । अत्र नीतिः ! (हन्त !) खेद है ! हाय ! (हि) निश्चयसे (संसृतौ) संसारमें (दुर्बलाः) दुर्बल प्राणी (बलिष्ठैन) बलवानोंसे (बाध्यन्ते) पीड़ित किये जाते हैं ॥ ३७ ॥

अथ संग्रामसंरम्भं कौरवोऽयमवारयत् ।
मुधावधादिभीत्या हि क्षत्रिया व्रतिनो मताः ॥३८॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (अयं कौरव.) इस जीवंधर कुमारने शत्रुके मर जाने पर (संग्रामसंरम्भं) संग्रामके आरंभको (अवारयत्) बंद कर दिया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (मुधा) व्यर्थ, निष्प्रयोजन (वधादिभीत्या) हिंसादिक पांच पापोंके डरसे (क्षत्रियाः) क्षत्री लोग (व्रतिनः मताः) व्रती माने गये हैं ॥ ३८ ॥

वीरसूर्विजया जाता वीरपत्नी च मे सुता ।
इत्युक्त्वा मातुलोऽप्येनमानन्दादभ्यनन्दयत् ॥३९॥

अन्वयार्थः—(मातुलः अपि) जीवंधर स्वामीके मामाने भी "(विजया वीरसूः) मेरी बहिन विजयाने वीरपुत्रको (जाता) जना (च) और (मे सुता) मेरी पुत्री (वीरपत्नी) वीर पुरुषकी स्त्री (जाता) हुई" (इति) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (एनं) कुमारको (आनंदात्) आनन्दसे (अभ्यनन्दयत्) अभिनन्दन किया ॥ ३९ ॥

समन्ततः समायाताः सामन्तास्तं सिषेविरे ।
समौ हि नाट्यसभ्यानां संपदां च लयोदयौ ॥४०॥

अन्वयार्थः—फिर (समन्ततः) चारो ओरसे (समायातः)

आए हुए (सामन्ताः) छोटे २ देशोंके राजा (तं सिषेविरे) उनकी सेवा करने लगे । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (नाट्य-सभ्यानां) नाटकके सभ्यों अर्थात् दर्शकोंके लिये (संपदां) नाटकके पात्रकी सम्पत्तिका (लयोदयौ) नाश और उदय (समौ) तुल्य होता है ॥ ४० ॥

राजपुर्यामगाच्चायमभिषेक्तुं जिनालयम् ।
भगवद्दिव्यसान्निध्ये निष्प्रत्यूहा हि सिद्धयः ॥४१॥

अन्वयार्थः—फिर यह जीवधरस्वामी (राजपुर्यां) राजपुरी नगरीके अन्दर (जिनालयं) जिन मन्दिरमें (अभिषेक्तुं) राज्याभिषेकसे अभिषक्त होनेके लिये (अगात) चले गये । अत्र नीतिः ! (हिं) निश्चयसे (भगवद्दिव्यसानिध्ये) भगवानकी दिव्य समीपता होने पर (सिद्धयः) सिद्धियें (निष्प्रत्यूहा भवन्ति) निर्विघ्न परिप्राप्त होती है ॥ ४१)

तावता संन्यधात्तत्र यक्षो यक्षचरो मुदा ।
फलमेव हि यच्छन्ति पनसा इव सज्जनाः ॥४२॥

अन्वयार्थः—(तावता) उसी समय (यक्षचरः यक्षः) कुत्तेका जीव यक्ष (मुदा) हर्षसे (तत्र) वहां (संन्यधात्) आया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (सज्जनाः) सज्जन पुरुष (पनसा इव) कटहरके वृक्षकी तरह (फलं एव) फलको ही (यच्छंति) देते हैं ॥ ४२ ॥

अथ गोविन्दराजेन यक्षराजो यथाविधि ।
अभ्यषिञ्चन्महाराजं कौरवं गुरुगौरवात् ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (यक्षराजः) यक्षेन्द्रने

(गोविन्दराजेन सह) गोविन्दराजके साथ (गुरुगौरवात्) बड़े गौरवसे (महाराजं कौरवम्) महाराजा जीवंधरस्वामीका (यथा-विधि) विधिपूर्वक (अभ्यषिञ्चन्) राज्याभिषेक किया ॥ ४३ ॥

अयादापृच्छ्य राजेन्द्रं यक्षेन्द्रोऽपि स्वमन्दिरम् ।
न ह्यासक्त्या तु सापेक्षो भानुः पद्मविकासने ॥४४॥

अन्वयार्थः—(यक्षेन्द्रः अपि) यक्षेन्द्र भी (राजेन्द्रं आपृच्छ्य) राजेन्द्रसे पूछ कर (स्व मन्दिरं) अपने स्थानको (अयात्) चला गया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (भानुः) सूर्य (पद्मविकासने) कमलोंके प्रफुल्लित होने पर (आसक्त्या) फिर किसी आसक्तिसे (सापेक्षो न भवति) अपेक्षा नहीं करता है । अर्थात् कमलोंको खिलाकर फिर उनसे कुछ संबंध नहीं रखता हुआ अस्ताचलकी ओर चला जाता है ॥ ४४ ॥

तर्पिताखिललोकोऽस्मात्सौधाभ्यन्तरमाश्रितः ।
सिंहासनमलंचक्रे राजसिंहः क्रमागतम् ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थः–(तर्पिताखिललोकः) फिर प्रसन्न किया है सम्पूर्ण लोकको जिसने ऐसे (राजसिंहः) उन राजाओंमें श्रेष्ठ जीवंधर स्वामीने (अस्मात्) इस जिन मन्दिरसे निकल कर (सौधाभ्यंतर-माश्रितः) और अपने महलको प्राप्त करके (क्रमागतम्) कुलपरं-परासे प्राप्त (सिंहासनं) राजसिंहासनको (अलंचक्रे) सुशोभित किया ॥ ४५ ॥

तद्वृत्तान्तवितर्कोऽभूल्लोके विस्मयवृंहितः ।
अतर्क्यसंपदापद्भ्यां विस्मयो हि विशेषतः ॥४६॥

अन्वयार्थः—(लोके) फिर सारे लोकमें (विस्मयबृंहितः) विस्मयसे वृद्धिगत (तद्वृत्तान्तवितर्कः) जीवंधरस्वामीके वृत्तान्तका विचार (अभूत्) हुआ। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (अतर्क्य संपदापद्भ्यां) अचानक विना विचारे संपत्ति और आपत्तिसे (विशेषतः) अधिकतर (विस्मयः) आश्चर्य (भवति) हुआ करता है ॥४६॥

क्व पूज्यं राजपुत्रत्वं प्रेतावासे क्व वा जनिः।
क्व वा राज्यपुनःप्राप्तिरहो कर्मविचित्रता ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थः—(क्व) कहां तो (पूज्यं) वह पूज्य (राजपुत्रत्वं) राजपुत्र पना (क्वा) और कहां उसका (प्रेतावासे जनिः) श्मशान भुमिमें जन्म लेना (क्वा) और कहां (राज्यपुनःप्राप्तिः) यह फिरसे राज्यका मिल जाना (अहो!) अहो! (कर्मविचित्रता) कर्मोंकी विचित्रता पर आश्चर्य है ॥ ४७ ॥

पुण्यपापादृते नान्यत्सुखे दुःखे च कारणम्।
तन्तवो न हि लूतायाः कूपपातनिरोधिनः ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (पुण्यपापात्) पुण्य और पापके (ऋते) बिना (अन्यत्) और कोई भी बस्तु (सुखे) सुख (च) और (दुःखे) दुखमें (कारणं न) कारण नहीं है। जैसे पापका उदय होनेसे (लूतायाः) मकडीको उसके जालेके (तन्तवः) छोटे २ तन्तु भी (कूपपातनिरोधिनः न भवंति) कूपमें गिरनेसे रोकने वाले नही होते हैं ॥ ४८ ॥

हत्वा जिघांसुमात्मानं लेभे राज्यं जिघांसितः।
भाव्यवश्यं भवेदेव न हि केनापि रुध्यते ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थः—(जिघांसितः) जिसको मारना चाहते थे उसने (आत्मानं) अपने (जिघांसुः) मारनेवालेको (हत्वा) मारकर (राज्यं) राज्य (लेभे) ले लिया । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (भावि) जो कुछ होना है वह (अवश्यं एव) अवश्य ही (भवेत्) होता है (केनापि) किसीसे भी (न रुद्धते) नहीं रोका जाता है ॥ ४९ ॥

जिजीविषाप्रपञ्चेन जातोऽयं राजवञ्चकः ।
काष्ठाङ्गारोऽपि नष्टोऽभूत्स्वयं नाशी हि नाशकः ॥५०

अन्वयार्थः—(जिजीविषा प्रपञ्चेन) अपने जीनेकी इच्छाके विस्तारसे (राजवञ्चकः) राजाको धोखेसे मारनेवाला (अयं काष्ठाङ्गारः अपि) यह काष्ठाङ्गार भी (नष्टः अभूत्) मारा गया अत्र नीतिः (हि) निश्चयसे (नाशी) दुसरेका नाश करने वाला (स्वयं नाशकः स्यात) अपना ही नाश करने वाला होता है ॥ ५० ॥

यक्षः क्षणोपकारेण प्राणदायी बभूव सः ।
काष्ठाङ्गारः कृतघ्नोऽभूत्स्वभावो न हि वार्यते ॥५१॥

अन्वयार्थः—(स यक्षः) कुत्तेका जीव वह यक्ष (क्षणोपकारेण) क्षणमात्रके उपकारसे (प्राणदायी बभूव) जीवधर स्वामीके प्राणोंके बचानेवाला हुआ और (काष्ठाङ्गारः) काष्ठाङ्गार (कृतघ्नःअभूत्) कृतघ्नी हुआ अर्थात्–सत्यंधर महाराजने जिसे राज्य दिया था वही उन्हींके प्राणोंका घातक हुआ । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे इसलिये (स्वभावः) प्रकृति किसीकी भी (न वार्यते) निवारण नहीं की जा सकती है ॥५१॥

अपकारोपकाराभ्यां सदसन्तौ न भेदिनौ ।
दग्धं च भाति कल्याणं केनाङ्गारविशुद्धता ॥५२॥

अन्वयार्थः—(सदसन्तौ) सज्जन और दुर्जन (अपकारोपकाराभ्यां) अपकार और उपकार करनेसे (न भेदिनौ) दुर्जन और सज्जन नहीं होजाते अर्थात् सज्जनके साथ अपकार करनेसे वह दुर्जन नहीं होजाते और दुर्जनके साथ उपकार करनेसे वह सज्जन नहीं होजाते है । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (दग्धं च कल्याणं) जला हुआ भी सोना (भाति)शोभायमान होता है किन्तु (अङ्गारविशुद्धता) कोयलेकी शुद्धता (केनापि उपायेन) किसी भी उपायसे (न भवति) नहीं होती है ॥ ५२ ॥

रिक्तारिक्तदशायां च सदसन्तौ न भेदिनौ ।
खातापि हि नदी दत्ते पानीयं न पयोनिधिः ॥५३॥

अन्वयार्थः—(रिक्तारिक्तदशाया च) धनी और निर्धनकी अवस्थामे भी (सदसन्तौ) सज्जन और दुर्जन (न भेदिनौ) भेदित नहीं होते है अर्थात्–निर्धन अवस्थामें भी सज्जन उपकार ही करते हैं परन्तु दुर्जन सधन अवस्थामें भी अपकार ही करता है। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (खातापि नदी) सूख जाने पर खोदी हुई नदी (पानीयं दत्ते) प्यासोंको जल देती है किन्तु (पयोनिधिः न) लवालब जलसे भरा हुआ भी समुद्र किसीके उपयोगमें नहीं आता ॥ ५३ ॥

इतीयं किंवदन्ती च तद्देशे शंवदाप्यभूत् ।
राजन्वती सती भूमिः कुतो वा न सुखायते ॥५४॥

अन्वयार्थः—(तद्देशे) जीवंधर स्वामीके राजमें (अपि) भी (इति) इस प्रकार (इयं किं वदन्ती) यह कहावत (शंवदा अभूत्)

सबको प्यारी हुई (हि) निश्चयसे (राजन्वती) उत्तम राजासे युक्त (सती) समीचीन (भूमिः) पृथवी (कुतो वा न सुखायते) क्या प्रजाको सुख देनेवाली नहीं होती है ? किन्तु होती ही है ॥५४॥

काष्ठाङ्गारकुटुम्बस्याप्यनुमेने सुखासिकाम् ।
स्वस्थानेऽपि महाराजो न ह्यस्थानेऽपि रुट् सताम्॥५५

अन्वयार्थः—(महाराजः) महाराज जीवंधरने (काष्ठाङ्गार कुटुम्बस्य) काष्ठाङ्गारके कुटुम्बको (अपि) भी (स्वस्थानेऽपि) अपने ही स्थानमें (सुखासिकाम्) सुख पूर्वक रहनेकी (अनुमेने) अनुमति देदी । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (सतां) सज्जन पुरुषोंका (रुट्) क्रोध (अस्थाने) अयोग्य स्थानमें (न भवति) नहीं होता है ॥ ५५ ॥

यौवराज्ये च नन्दाढ्यं वृद्धक्षत्रोचिते पदे ।
गन्धोत्कटं च चक्रेऽसौ लोकवन्द्ये च मातरौ ॥५६॥

अन्वयार्थः—(फिर असौ) इन जीवंधर स्वामीने (यौवराज्ये) युवराजके पदपर अपने छोटे भाई (नन्दाढ्यं) नन्दाढ्यको (च) और (वृद्धक्षत्रोचिते पदे) बूढे क्षत्रियोंके योग्य पदपर (गन्धोत्कट) गन्धोत्कटको (च) और (लोकवन्द्ये) लोकपूज्य (पदे) पदपर (मातरौ) दोनों माताओंको (चक्रे) स्थापित्त किया ॥ ५६ ॥

अकरामकरोद्धात्रीं वर्षाणि द्वादशाप्ययम् ।
महिषैः क्षुभितं तोयं न हि सद्यः प्रसीदति ॥५७॥

अन्वयार्थः—और (अयं) इन जीवंधर स्वामीने (धात्रीं) पृथवीको (द्वादश वर्षाणि) बारह वर्ष पर्यंत (अकराम्) कर

(टैक्स) से रहित (अकरोत्) करदी । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (महिषैः) भैंसाओंसे (क्षुभितं तोयं) गदला किया हुआ जल (सद्यः) शीघ्र ही (न प्रसीदति) निर्मल नहीं होता है ॥ ५७ ॥

पद्मवक्त्रादिमित्रेभ्यो यथायोग्यमदात्पदम् ।
अविशेषपरिज्ञाने न हि लोकोऽनुरज्यते ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थः—और इन जीवंधर स्वामीने (पद्मवक्त्रादि मित्रेभ्यः) पद्मास्यादिक मित्रोंके लिये (यथायोग्यं पदं) यथा योग्य पद (अदात्) दिये । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (अविशेषपरिज्ञाने) साधारण सामान्य सत्कारसे (लोकः) लोग (न अनुरज्यते) अनुरज्यायमान नही होते हैं । अर्थात्— जीवंधर स्वामीने मित्रोंपर कौन किस पदके योग्य है ऐसा परिज्ञान करके उनको यथायोग्य पद दि । ॥ ५८ ॥

पद्माद्योऽपि तद्देव्यः समागत्य तदाज्ञया ।
तं समीक्ष्य क्षणे चासन्क्षीणाखिलमनोव्यथाः ५९॥

अन्वयार्थः—(तदाज्ञया पद्मादयोऽपि देव्यः) उस समय महाराजकी आज्ञासे पद्मा आदिक उनको स्त्रियें (समागत्य) आकर (तं समीक्ष्य) उन जीवंधर स्वामीको देखकर (क्षणे च) उस समय (क्षीणाखिलमनोव्यथाः) सम्पूर्ण मनकी पीडासे रहित (आसन्) हुई ॥ ५९ ॥

चिरस्थाय्यपि नष्टं स्याद्विरूढार्थे हि वीक्षिते ।
सन्निधावपि दीपस्य किं तमिस्रं गुहामुखम् ॥६०॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (विरूद्धार्थे) विरुद्ध पदार्थके (वीक्षिते) देखनेपर (चिरस्थाय्यपि) चिरकालसे स्थित पदार्थ (अपि) भी (नष्टं स्यात्) नष्ट होजाते हैं अर्थात् जरासा सुख मिलनेसे पूर्वके सब दुःख भूल जाते हैं (दीपस्य संनिधावपि) दियेके समीप आनेपर भी (किं) क्या (गुहामुखं) गुफाओंका मुख (तमिस्रं) अन्धकार युक्त (स्यात्) रहसकता है ? नहीं ॥ ६० ॥

अथायं नवुतेः पुत्रीं दत्तां गोविन्दभूभुजा ।
पर्यणैषीन्महाराजः पार्थिवैर्विहितोत्सवः ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (पार्थिवैः विहितोत्सवः) राजाओंने किया है उत्सव जिनके लिए ऐसे (अयं महाराजः) इन महाराज जीवंधरने (गोविन्दभूभुजा) गोविन्दराजसे (दत्तां) दी हुई (नुवतेः) नुवतीकी (पुत्रीं) पुत्री लक्ष्मणाको (यथाविधि पर्यणैषीत्) विधिपूर्वक व्याही ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्वादिभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूडामणौ सान्वयार्थो लक्ष्मणा लम्भो नाम दशमो लम्बः ॥

ॐ

एकादशो लम्बः

अथ राज्यश्रिया लब्ध्वा लक्ष्मणां मुमुदे कृती ।
चिरकाङ्क्षितलाभे हि तृप्तिः स्यादतिशायिनी ॥१॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (कृती) विद्वान् महाराजा जीवंधर (राज्यश्रिया सह) राज्यलक्ष्मीके साथ (लक्ष्मणा लब्ध्वा) लक्ष्मणाको प्राप्त करके (मुमुदे) अत्यन्त प्रसन्न हुए। अत्र नीति.! (हि) निश्चयसे (चिरकाङ्क्षित लाभे) चिरकालकी चाही हुई वस्तुकी प्राप्ति होनेपर ही (अतिशायिनी) बड़ी भारी (तृप्तिः) प्रसन्नता (स्यात्) होती है ॥ १ ॥

लब्ध्वा राज्यमयं राजा रेजे सर्वगुणैरपि ।
काचो हि याति वैगुण्यं गुण्यतां हारगो मणिः ॥२॥

अन्वयार्थः—(अयं राजा) यह महाराज जीवंधर (राज्यं लब्ध्वा) राज्यको प्राप्त करके (सर्वगुणैः अपि) और सब गुणोंसे भी (रेजे) शोभायमान हुए। अत्र नीति.! (हि) निश्चयसे (हारगः काचः) हारलतामें पिरोया हुआ कांच (वैगुण्यं याति) बुरा प्रतीत होता है (तु) और उस स्थान पर पिरोई हुई (मणिः) मणि (गुण्यतां याति) बहुत ही शोभायमानपनेको प्राप्त होती है।

अर्थात्—सर्व गुण सम्पन्न जीवंधर कुमारको राज्यकी प्राप्ति सुवर्णमें सुगंधकी तरह हुई ॥ २ ॥

कृतिनामेकरूपा हि वृत्तिः संपदसंपदोः ।
न हि नादेयतोयेन तोयधेरस्ति विक्रिया ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (संपदसंपदोः) सम्पत्ति और विपत्तिमें (कृतिनां) बुद्धिमानोंकी (वृत्तिः) वृत्ति (एकरूपा भवेत्) एकसी रहती है । सच है–(नादेयतोयेन) नदीके जलसे (तोयधेः) समुद्रमें (विक्रियानास्ति) विकार भाव नहीं होता है ॥३॥

सुखदुःखे प्रजाधीने तदाभूतां प्रजापतेः ।
प्रजानां जन्मवर्जं हि सर्वत्र पितरौ नृपाः ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(तदा) उस समय अर्थात् राज्य मिलने पर (प्रजापतेः) महाराज जीवंधरके (सुखदुःखे) सारे सुखदुख (प्रजाधीने) प्रजाके आधीन (अभूताम्) हो गये अर्थात् प्रजाके सुख दुःखसे वह अपनेको सुखी दुःखी समझने लगे । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (जन्मवर्जं) जन्म देनेके सिवाय सर्वत्र अन्य सब विषयोंमें (नृपाः) राजा ही (प्रजानां) प्रजाके (पितरौ स्तः) मां बाप हैं ॥ ४ ॥

आसीत्प्रीतिकरं तस्य करदानं च दानवत् ।
वृषलाः किं न तुष्यन्ति शालेये बीजवापिनः ॥५॥

अन्वयार्थः—(च) और (तस्य) उसकी प्रजाको (करदानं) राजाको महसूल देना भी (दानवत्) दान देनेकी तरह (प्रीतिकरं) प्रीतिकर अर्थात् आनंददायक (आसीत्) हुआ । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (शालेये) धान्यके खेतमें (बीजवापिनः) बीज बोनेवाले (वृषलाः) किसान लोग (किं) क्या (न तुष्यति) संतुष्ट नहीं होते हैं, होते ही हैं ।

अर्थात् जिस प्रकार किसान खेतमें बीज बोनेसे खुश होता है उसी प्रकार प्रजा राजाको कर देनेमें प्रसन्न थी ॥ ५ ॥

मित्रोदासीनशत्रूणां विषयेष्वपसर्पतः ।
तदज्ञानेऽपि तद्ज्ञानात्तदैवासीत्प्रतिक्रिया ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(तदज्ञानेऽपि) उस राजाके राज्यमें राजाको स्वयं किसी कार्यका साक्षात ज्ञान नहीं होनेपर भी (मित्रोदासीन-शत्रूणां) मित्र, शत्रु और उदासीन राजाओंके (विषयेषु) देशोंमें (अपसर्पतः) घूमनेवाले गुप्तचरों द्वारा (तद्ज्ञानात्) उनका सारा वृत्तान्त जानकर (तदाएव) उसी समय (तत्प्रतिक्रिया) उसका उपाय (आसीत्) होता था ॥ ६ ॥

रात्रिंदिवविभागेषु नियतो नियतिं व्यधात् ।
कालातिपातमात्रेण कर्तव्यं हि विनश्यति ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(नियत) नियम पूर्वक कार्य करनेवाले उस राजाने (रात्रिन्दिवविभागेषु) रातदिनके विभागोंमें (नियतिं) नियत किये हुए कार्यको (व्यधात्) यथा समय पर किया। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (कालातिपातमात्रेण) काम करने योग्य समयके निकल जाने पर (कर्तव्य विनश्यति) योग्य कार्य नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

तपसा हि समं राज्यं योगक्षेमप्रपञ्चतः ।
प्रमादे सत्यधःपातादन्यथा च महोदयात् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (योगक्षेमप्रपञ्चतः) योग और क्षेमके विस्तारसे (तपसा समं राज्यं) तपके समान राज्य है अर्थात्

जिस प्रकार तपमें योग और क्षेमकी (मन वचन काय रूप योगोंके रोकनेकी) आवश्यकता है उसी प्रकार राज्यमें योग और क्षेमकी आवश्यकता है । कभी नही प्राप्त वस्तुके पानेको योग कहते हैं। और प्राप्तकी रक्षा करना क्षेम कहलाता है । और (प्रमादे सति) प्रमाद होने पर अर्थात् राजा और तपस्वी राज्य पालन और तपस्यामें यदि प्रमाद करे तो (अधःपताद्) दोनोंका अधः पतन होता है (च) और (अन्यथा) प्रमाद रहित योग और क्षेम पालन करनेसे (महोदयात्) दोनोंका महान् उदय होता है ॥ ८ ॥

प्रबुद्धेऽस्मिन्भुवं कृत्स्नां रक्षत्येकपुरीमिव ।
राजन्वती च भूरासीदन्वर्थं रत्नसूरपि ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(प्रबुद्धेऽस्मिन्) सारे कार्योमें सावधान इस राजाके (एक पुरीं इव) एक पुरी (नगरी) के समान (कृत्स्नां भुवं) सारी पृथ्वीकी (रक्षति सति) बुद्धिमानीसे रक्षा करनेपर (भू) पृथ्वी (राजन्वती) श्रेष्ठ राजासे युक्त (अन्वर्थं) सार्थक (रत्नसूरपि) रत्नगर्भा (आसीत्) हुई ॥९॥

एवं विराजमानेऽस्मिन्राजराजे महोदये ।
विजया जननी तस्य विरक्ता संसृतावभूत् ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(एवं) इस प्रकार (महोदये) महान् उदयवाले (अस्मिन् राजराजे) इस राजेश्वरके (विराजमाने) विराजमान होने पर (विजयातस्य जननी) विजया नामकी जीवंधरकी माता (संसृतौ विरक्ता) संसारसे विरक्त (अभूत्) हुई अर्थात् उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥

पैतृकं पदमद्राक्षमत्राहं पुत्रपुङ्गवे।
कृताः पुरोपकर्तारः कृतकृत्या यथोचितम् ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(अत्र पुत्रपुङ्गवे) इस पुत्रश्रेष्टमें (अहं) मैंने (पैतृकं) पिताके (पदं) पदको अर्थात् राजाके पदको (अद्राक्षम्) देख लिया और (पुरोपकर्तारः) पहले उपकार करनेवाले भी (यथोचितम्) यथोचित (कृतकृत्याः) कृतकृत्य (कृताः) कर दिये।

अर्थात्—पहिले जिन्होंने हमपर उपकार किया था उन सबका हमने प्रत्युपकार कर दिया ॥ ११ ॥

फलं च पुण्यपापानां मया मय्येव वीक्षितम्।
शास्त्रादृते किमन्यत्र कर्मपाकोऽयमीक्षितः ॥१२॥

अन्वयार्थः—(च) और जब (मया) मैंने (शास्त्रादृकते) शास्त्रोंके विना (मयि एव) आपमें ही (पुण्यपापानां) पुण्य और पापका फल (वीक्षितम्) देख लिया तो (पुनः) फिर (अय कर्मपाकः) यह कर्मोका फल (अन्यत्र) दूसरे स्थानमें (मया कि ईक्षितः) मैं क्यो देखूं ॥ १२ ॥

अतोऽपास्य सुतस्नेहं तपस्यामि यथोचितम्।
ज्ञात्वापि कुण्डपातोऽयं कुत्सितानां हि चेष्टितम् ॥१३

अन्वयार्थः—(अतः) इसलिये (अहं) मै (सुतस्नेहं) पुत्रका मुंह (अपास्य) छोड करके (यथोचितं) जैसा चाहिये वैसा (तपस्यामि) तप करूंगी। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (संसारभावं ज्ञात्वापि) संसारके स्वभावको जानकर भी फिर (अयं कुण्ड-

पातः) इस संसार रूपी गड्ढेमें पड़े रहना (कुत्सितानां) नीच पुरुषोंकी (चेष्टतम्) चेष्टा है ॥ १३ ॥

इति वैराग्यतस्तस्याः सुनन्दापि व्यरज्यत ।
पाके हि पुण्यपापानां भवेद्बाह्यं च कारणम् ॥१४॥

अन्वयार्थः—(इति) इस प्रकार (तस्याः) विजया रानीके (वैराग्यतः) विरक्त हो जानेपर (सुनन्दापि) गन्धोत्कटकी स्त्री सुनन्दा भी (व्यरज्यत) संसारसे विरक्त हो गई । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (पुण्यपापानां च) पुण्य और पापके (पाके) उदय आनेमें (बाह्यं कारणं) बाह्य कारण (भवेदेव) अवश्य ही होता है ॥ १४ ॥

ततः कृच्छ्रायामाणं ते महीनाथं च कृच्छ्रतः ।
अनुज्ञाप्य ततो गत्वादीक्षिषातां यथाविधि ॥१५॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (ते) उन दोनों माताओंने (कृच्छ्रायमाणं) शोकयुक्त (महीनाथं) जीवंधर स्वामीको (कृच्छ्रतः) किसी न किसी प्रकार कष्टसे (अनुज्ञाप्य) समझा कर (ततो गत्वा) और घरसे वनमें जाकर (यथाविधि) विधिपूर्वक (अदीक्षिषातां) जिन दीक्षा लेली ॥ १५ ॥

पद्माख्या श्रमणीमुख्या विश्राण्य श्रमणीपदम् ।
तन्मातृभ्यां ततस्तं च महीनाथमबोधयत् ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(श्रमणीमुख्या) उस समय सम्पूर्ण अर्जिकाओंमें श्रेष्ठ (पद्माख्या) पद्मा नामकी अर्जिकाने (तन्मातृभ्यां) उन दोनों माताओंके लिये (श्रमणी पदम्) अर्जिकाका पद

(विश्राण्य) देकर (ततः) फिर (तं च महीनाथं) उन जीवंधर महाराजको (अबोधयत्) प्रतिबोधित किया ॥ १६ ॥

प्रव्रज्या जातुचित्प्राज्ञैः प्रतिषेद्धुं न युज्यते ।
न हि खादापतन्ती चेद्रत्नवृष्टिर्निवार्यते ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(प्राज्ञैः) बुद्धिमानोंको (जातुचित्) कभी भी (प्रव्रज्याः) किसीकी दीक्षा लेनेको (प्रतिषेद्धुं) रोकना (न युज्यते) उचित नहीं है। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (चेत्) यदि (खाद्) आकाशसे (रत्नवृष्टिः) रत्नोंकी वर्षा (आपतन्ती) होती है तो (न निवार्यते) रोकी नहीं जाती उसी प्रकार ॥१७॥

वयस्यन्तेऽपि वा दीक्षा प्रेक्षावद्भिरपेक्ष्यताम् ।
भस्मने रत्नहारोऽयं पंडितैर्न हि दह्यते ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(अपि वा) और (प्रेक्षावद्भिः) बुद्धिमान पुरुष (अन्ते वयसि) अवस्थाके अन्तमें (दीक्षा) जिन दीक्षा ग्रहण करनेकी (अपेक्ष्यताम्) अपेक्षा किया करते हैं। अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (पण्डितैः) पण्डित पुरुष (अयं रत्नहारः) इस मनुष्य जन्म रूपी रत्नोंके हारको (भस्मने) इन्द्रिय विषय रूपी भस्मके लिये (न दह्यते) नहीं जला देते हैं ॥ १८ ॥

इति प्रबोधितो नत्वा प्रसवित्रीं सकाशतः ।
प्रश्रयेण गतो राजा प्राविक्षन्नृपमन्दिरम् ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(इति) इसप्रकार (प्रबोधितः) समझाये हुए (राजा) जीवंधर महाराजने (नत्वा) नमस्कार करके (प्रसवित्रीं सकाशतः) माताके समीपसे (प्रश्रयेण गतः) विनय

पूर्वक लौटकर (नृपमन्दिरम् प्राविक्षत्) राजमन्दिरमें प्रवेश किया ॥ १९ ॥

न चिराद्धि पदं दत्ते कृतिनां हृदि विक्रिया ।
यदि रत्नेऽपि मालिन्यं न हि तत्कृच्छ्रशोधनम् ॥२०॥

अन्वयार्थः—(हि यथा) निश्चयसे जिस प्रकार (विक्रिया) इष्ट वियोगादि जन्य शोकादि भाव (कृतिनां हृदि) बुद्धिमानोंके हृदयमें (चिरात्) बहुत काल तक (पदं) स्थानको (न दत्ते) प्राप्त नहीं करता है । उसी प्रकार (रत्ने अपि) रत्नमे भी (यदि मालिन्यं) यदि मलिनता हो तो (तत्कृच्छ्रशोधनम् न) उसका साफ होना कुछ कठिन नही हैं ॥ २० ॥

अथास्य क्षात्रविद्यस्य क्षणवद्भुञ्जतो महीम् ।
त्रिदशोपमसौख्येन त्रिंशद्वर्षाण्ययासिषुः ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (क्षात्रविद्यस्य) क्षत्र विद्याको जाननेवाले और (त्रिदशोपमसौख्येन) देवताओके समान सुखसे (महीं) पृथ्वीको (भुञ्जतः) भोगते हुए (अस्य) इन जीवंधर महाराजके (त्रिंशत् वर्षाणि) तीस ३० वर्ष (क्षणवत्) एक क्षणभरके समान (अयासिषुः) बीत गये ॥ २१ ॥

ततः कदाचिदस्यासीज्जलक्रीडामहोत्सवः ।
वसन्ते सह कान्ताभिरष्टाभिरतिकौतुकात् ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) इसके अनंतर (कदाचित्) कभी (वसन्ते) वसन्त ऋतुमें (अष्टाभिः कान्ताभिः सह) अपनी आठ स्त्रियोंके साथ (अतिकौतुकात्) बड़े कौतुकसे (अस्य) इन जीवंधर

स्वामीको (जलक्रीडामहोत्सवः) जलक्रीडाका महान उत्सव (आसीत्) प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥

जलक्रीडाश्रमात्सोऽयमाक्रीडे च सनीडके ।
क्रीडन्कापटिकैः श्लाघ्यं कापेयं निरवर्तयत् ॥२३॥

अन्वयार्थः—(सः अयं) फिर उन इन जीवंधर कुमारने (जलक्रीडाश्रमात्) जलक्रीडाके परिश्रमसे थककर (सनीडके) लतामण्डप युक्त (आक्रीडे) किसी उद्यान (बगीचे) में (कापटिकैः क्रीडन्) बन्दरोंके साथ क्रीडा करते हुए (श्लाघ्यं कापेय) प्रशंसनीय बन्दरोंकी चेष्टा (निरवर्तयत्) देखी ॥ २३ ॥

अन्यसंपर्कतः क्रुद्धां मर्कटीं कोऽपि मर्कटः ।
प्रकृतिस्थां बहूपायैर्नाशकत्कर्तुमुद्यतः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—तत्पश्चात् (कोऽपि) कोई एक (मर्कटः) बंदर (अन्यसंपर्कतः) दूसरी किसी और बंदरीसे सम्भोग करनेके कारण (क्रुद्धां) क्रोधित (मर्कटीं) अपनी प्यारी बंदरीको (बहूपायैः) बहुत उपायोंसे (प्रकृतिस्थां) पूर्वकी तरह प्रसन्न (कर्तुं) करनेके लिये (उद्यतः नअशकत्) समर्थ नहीं हुआ ॥ २४ ॥

ततः शाखामृगोऽप्यासीन्मायिको मृतवद्दशः ।
तदवस्थां भयग्रस्ता वानरीऽयमपाकरोत् ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) फिर (मायिकः) छली मायावी (शाखा मृगः अपि) वह बंदर भी (मृतवद्दशः) मरे हुएके तुल्य दशा वाला (आसीत्) होगया । अर्थात्—श्वास रोक कर पृथ्वी पर लेट गया । वह देख (भयग्रस्ता) भयसे पीडित

(इयम् वानरी) इस बंदरीने (तदवस्थां) उसकी मृत तुल्य अवस्थाको (अपाकरोत्) दूर कर दिया ॥ २५ ॥

हर्षलो हरिरप्यस्यै पनसस्य फलं ददौ ।
वनपालो जहारैतद्वानरीमपि भर्त्सयन् ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(हर्षलः हरिः अपि) तब हर्षित उस बंदरने भी (अस्यै) इस अपनी वानरीके लिये (पनसस्य फलं) एक पनसका फल (ददौ) दिया परन्तु (बानरीं अपि भर्त्सयन्) वानरीको भगा कर (बनपालः) वनपालने (एतद् जहार) यह फल छीन लिया ॥ २६ ॥

इत्यशेषं विशेषज्ञो वीक्षमाणः क्षितीश्वरः ।
तत्क्षणे जातवैराग्यादनुप्रेक्षामभावयत् ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(इति) यह (अशेषं) सब घटना (वीक्षमाणः) देखनेवाले (विशेषज्ञः) विद्वान् (क्षितीश्वरः) इन महाराज जीवंधरने (तत्क्षणे) उस समय (जातवैराग्यात्) वैराग्य उत्पन्न होनेसे पहले (अनुप्रेक्षाम्) बारह भावनाओंका (अभावयत) चिन्तवन किया ॥ २७ ॥

१—अथानित्यत्वानुप्रेक्षा ।

मद्यते वनपालोऽयं काष्ठाङ्गारायते हरिः ।
राज्यं फलायते तस्मान्मयैव त्याज्यमेव तत् ॥२८॥

अन्वयार्थः—(अयं वनपालः) यह वनपाल (मद्यते) मेरे समान है, (हरिः) बानर (काष्ठाङ्गारायते । काष्ठाङ्गारके समान है, और (राज्यं) राज्य (फलायते) पनस फलके समान

है (तस्मात) इसलिये (तत्) यह राज्य (मया एव) मेरेसे (त्याज्यं एव) छोड़ने ही योग्य है ॥ २८ ॥

जाताः पुष्टाः पुनर्नष्टा इति प्राणभृतां प्रथाः ।
न स्थिता इति तत्कुर्याः स्थायिन्यात्मन्पदे मतिम्२९.

अन्वयार्थः—(जाताः) जन्म धारण कर (पुष्टाः) पुष्ट हुए (पुनर्नष्टाः) और फिर नष्ट हो गये (इति) ऐसी (प्राणभृतां) संसारमें प्राणियोंकी (प्रथाः) परिपाटी है (नकेऽपि स्थिताः) कोई भी स्थिर नहीं है (तत्) इसलिये (हे आत्मन् !) हे आत्मा ! (स्थायिनी पदे) सदा स्थिर रहनेवाले मोक्षस्थानमें ही (मति) बुद्धि अर्थात् अपने ध्यानको (कुर्याः) लगा ॥२९॥

स्थायीति क्षणमात्रं वा ज्ञायते न हि जीवितम् ।
कोटेरप्यधिकं हन्त जन्तूनां हि मनीषितम् ॥३०॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (जीवितम्) यह जीवन (क्षणमात्रं वा) क्षणमात्र भी (स्थायीति न ज्ञायते) स्थायी नहीं जान पडता है । हन्त ! खेद है ! फिर भी (जन्तूनां) प्राणियोंकी (मनीषितम्) इच्छायें (कोटैरपि अधिकं) क्रोड़ोंसे भी अधिक है ॥ ३० ॥

अवश्यं यदि नश्यन्ति स्थित्वापि विषयाश्चिरम् ।
स्वयं त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा ॥३१

अन्वयार्थः—(यदि) अगर (विषयाः) इन्द्रियोंके विषय (चिरं) बहुत काल तक (स्थित्वापि) स्थिर रहकर भी (अवश्यं) अवश्य (नश्यंन्ति) नाशको प्राप्त हो जाते हैं । तो (स्वयं)

स्वयं ही (त्यज्याः) छोड देने चाहिये (तथाहि) ऐसा करने पर (मुक्तिः स्यात्) आत्मा कर्म बन्धनसे छूट जाती है। (अन्यथा) और इसके विपरीत करनेसे (संसृतिः एव स्यात्) संसार ही होता है अर्थात् फिर संसारमें घूमना पडता है ॥३१॥

अनश्वरसुखावाप्तौ सत्यां नश्वरकायतः ।
किं वृथैव नयस्यात्मन्क्षणं वा सफलं नय ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) और हे आत्मा ! यदि (नश्वरकायतः) नाशवान शरीरसे (अनश्वरसुखावाप्तौ सत्यां) अविनाशी सुख अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो सके तो (किं) क्यों (वृथा एव) वृथा ही (क्षण) समयको (नयसि) खोता हैं (सफलं नय) तू इस समयको सफल कर ॥ ३२ ॥

२—अथाशरणानुप्रेक्षा ।

पयोधौ नष्टनौकस्य पतत्रेरिव जीव ते ।
सत्यपाये शरणं न तत्स्वास्थ्ये हि सहस्रधा ॥३३॥

अन्वयार्थः—(हे जीव) हे जीव ! (पयोधौ) समुद्रमें (नष्टनौकस्य) डूब गया है नौकारूपी आश्रय जिसका ऐसे (पतत्रेरिव) पक्षीकी तरह (ते) तेरे (अपाये सति) नाश अर्थात मृत्युके समय (शरणं न) कोई भी शरण नहीं है। अत्र नीतिः !- (हि निश्चयसे (स्वास्थ्ये) सुखी अवस्थामें (सहस्रधा शरणं भवंति) हजारों शरण हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

आयुधीयैरतिस्निग्धैर्बन्धुभिश्चाभिसंवृतः ।
जन्तुः संरक्ष्यमणोपि पश्यतामेव नश्यति ॥३४॥

अन्वयार्थः—(आयुधीयैः) आयुधको लिये हुए (अतिस्निग्धैः) अत्यन्त प्यारे (बंधुभिः) बन्धुओंसे (अभिसंवृतः) चारों ओरसे घेरे हुए और (संरक्ष्यमाणः अपि) सरक्षित भी (जन्तुः) प्राणी (पश्यताम् एव) देखनेवालोंके ही अगाडी (नश्यति) नाशको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

मन्त्रयन्त्रादयोऽप्यात्मन्स्वतन्त्रं शरणं न ते ।
किंतु सत्येव पुण्ये हि नो चेत्के नाम तैः स्थिताः॥३५

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मा ! (मन्त्रयन्त्रादयः अपि) मन्त्र यन्त्रादिक भी (ते) तेरे (स्वतंत्रं) स्वतन्त्र (शरणं न) रक्षक नही है (किन्तु) क्योंकि (पुण्ये सति एव) पुण्य होने पर ही यह सब सहायता करते है (नो चेत्) यदि पुण्यका उदय नही है तो (तै) इन मन्त्र तन्त्रादिकोसे (के नाम स्थिताः) कौन संसारमें स्थिर रहे अर्थात कोई भी स्थिर न रहे ॥ ३५ ॥

३–अथ संसारानुप्रेक्षा ।

नटवन्नैकवेषेण भ्रमस्यात्मन्स्वकर्मतः ।
तिरश्चि निरये पापाद्दिवि पुण्याद्द्वयान्नरे ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मा ! (त्वं) तू (नैक वेषेण) नाना प्रकारके वेष धारण करके (नटवत्) नटके समान (स्व कर्मतः) अपने कर्मोंके वशसे (भ्रमसि) घूम रहा है और (पापात) पापसे (तिरश्चिनिरये) तिर्यंच और नरक गतिमें, (पुण्यात्) पुण्यसे (दिवि) स्वर्गमे और (द्वयात) पुण्य, पापसे (नरे) मनुष्य गतिमें जन्म धारण करता है ॥ ३६ ॥

पञ्चानन इवामोक्षादसिपञ्जर आहितः ।
क्षणेऽपि दुःसहे देहे देहिन्हन्त कथं वसेः ॥३७॥

अन्वयार्थः—(हे देहिन्) हे देहिन् ! (हन्त !) खेद है । (असिपञ्जर आहितः) तू लोहेके पिंजरेमें कैद हुए (पञ्चानन इव) सिंहकी नाईं जो (आमोक्षात्) बिना मोक्षके (क्षणेऽपि दुःसहे) क्षण मात्र भी नहीं सहा जाय ऐसे (देहे) शरीरमें (कथं) किस प्रकार (वसेः) रहता है ॥ ३७ ॥

तन्नास्ति यन्न वै भुक्तं पुद्गलेषु मुहुस्त्वया ।
तल्लेशस्तव किं तृप्त्यै बिन्दुः पीताम्बुधेरिव ॥३८॥

अन्वयार्थः—और हे आत्मन् ! (पुद्गलेषु) पुद्गलोंमें (तद् नास्ति) भी कोई परमाणु ऐसा नहीं है (यत) जो (त्वया) तूने (मुहुः) बार २ (न वै भुक्तं) नहीं भोगा हो और (तल्लेशः) इन पुद्गलोंका लेश (पीता) पी हुई (अम्बुधेः) समुद्रकी (बिन्दुः इव) बूंदके समान (किं) क्या (तव) तेरी (तृप्त्यै) तृप्तिके लिये है (अपितु न स्यात्) कदापि नहीं हैं॥३८॥

भुक्तोज्झितं तदुच्छिष्टं भोक्तुमेवोत्सुकायसे ।
अभुक्तं मुक्तिसौख्यं त्वमतुच्छं हन्त नेच्छसि ॥३९॥

अन्वयार्थः—और हे आत्मन् (त्वं) तू (भुक्तोज्झितं) भोगकर छोडी हुई (तद् उच्छिष्टं) उस ही उच्छिष्टको (भोक्तुं एव) फिर भोगनेके लिये (उत्सुकायसे) उत्कंठित हो रहा हैं। (हन्त!) खेद है ! तो भी (त्वं) तू (अभुक्तं) पूर्वमें नहीं किया है भोग जिसका ऐसे (अतुच्छं) महान (मुक्तिसौख्यं) मोक्षरूपी सुखको (न इच्छसि) इच्छा नहीं करता है ॥ ३९ ॥

संसृतौ कर्म रागाद्यैस्ततः कायान्तरं ततः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियद्वारा रागाद्याश्चक्रकं पुनः ॥ ४० ॥

अन्वयार्थः—(संसृतौ) संसारमें (रागाद्यैः) रागादिक भावोंसे (कर्म) कर्म बंधते हैं। और फिर (ततः) उसी कर्मसे (कायान्तरं) नवीन शरीर उत्पन्न होता है। और फिर (ततः) उसी शरीरसे (इन्द्रियाणि) इन्द्रियां उत्पन्न होती हैं और (इन्द्रियद्वारा रागाद्याः) इन्द्रियोंके द्वारा ही राग द्वेषादिक होते हैं। और फिर (पुनः) इसी प्रकार (चक्रकं) संसारचक्रकी उत्पत्ति होती है। ॥ ४०)

सत्यनादौ प्रवन्धेस्मिन्कार्यकारणरूपके ।
येन दुःखायसे नित्यमद्य वात्मन्विमुञ्च तत् ॥४१॥

अन्वयार्थः—(कार्य कारण रूपके) कार्य कारण रूप (अनादौ) अनादि (अस्मिन् प्रबन्धेसति) इस प्रबन्धके होनेपर (येन) जिससे (त्वं नित्यं दु खायसे) तु नित्य दुखी होता है इस लिये (हे आत्मन्!) हे आत्मन्! (अद्यवा) अभी (तत् विमुञ्च) इसको छोंडदे ॥ ४१ ॥

४—अथैकत्वानुप्रेक्षा ।

त्यक्तोपात्तशरीरादिः स्वकर्मानुगुणं भ्रमन् ।
त्वमात्मन्नेक एवासि जनने मरणेऽपि च ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्!) हे आत्मन्! (त्यक्तोपात्त शरीरादिः) छोडकर फिर ग्रहण किया है शरीरादिकको जिसने ऐसा (त्वं) तू (स्वकर्मानुगुणं भ्रमन्) अपने कर्मोंके अनुसार भ्रमण करता हुआ (जनने) जन्म (मरणेऽपि च) और मरनेके

समयमें भी (एक एव अस्ति) अकेला ही है अर्थात् उस समय तेरा दूसरा कोई भी साथी नहीं है ॥ ४२ ॥

बन्धवो हि श्मशानान्ता गृह एवार्जितं धनम् ।
भस्मने गात्रमेकं त्वां धर्म एव न मुञ्चति ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थः—और देख (बन्धवः) बन्धुजन भी (श्मशानान्ताः) केवल श्मशान पर्यंत ही साथ जाते हैं (अर्जितं धनं) कमाया हुआ धन (गृहेएव) घरमे ही रह जाता है और (गात्रं भस्मने) शरीर भी तेरा भस्मरूप परिणत होजाता है (एक) केवल (धर्मः एव) धर्म ही (त्वा न मुञ्चति) तुझको नही छोडता है अर्थात् धर्म ही एक तेरे साथ जाता है ॥ ४३ ॥

पुत्रमित्रकलत्राद्यमन्यदप्यन्तरालजम् ।
नानुयायीति नाश्चर्यं नन्वङ्ग सहजं तथा ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थः—(पुत्र मित्र कलत्रादि) पुत्र मित्र स्त्री तथा (अन्तरालजम् अन्यदपि) बीचमे मिलने वाले और भी (न अनुयायी) यदि तेरे साथ नही जाते तो (इति न आश्चर्य) इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है (ननु अङ्ग सहजं तथा) किन्तु इस पर्यायके प्रारंभसे ही साथ रहनेवाला शरीर भी साथ नहीं जाता है इसमें आश्चर्य है ॥ ४४ ॥

त्वमेव कर्मणां कर्ता भोक्ता च फलसन्ततेः ।
मोक्ता च तात किं मुक्तौ स्वाधीनायां न चेष्टसे ।४५।

अन्वयार्थः—और (त्व एव) तू ही (कर्मणां) कर्मोंका (कर्त्ता) कर्त्ता और (फल संतते) फलोंका (भोक्ता) भोगने-

वाला है (भोक्ता च) और तू ही कर्मोंका नाश करके मुक्तिको प्राप्त करने वाला है । इसलिये (हे तात !) हे तात ! (स्वाधीनायां मुक्तौ) अपने स्वाधीन मुक्तिकी प्राप्तिमें (किं न चेष्टसे) क्यों प्रयत्न नही करता है ॥ ४५ ॥

अज्ञातं कर्मणैवात्मन्स्वाधीनेऽपि सुखोदये ।
नेहसे तदुपायेषु यतसे दुःखसाधने ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ.—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (कर्मणा एव अज्ञातं) कर्मोंके उदयसे तू अज्ञानी होकर (स्वाधीने) स्वाधीन (सुखोदये) मोक्ष सुखमें और (तत् उपायेषु) उसके उपायोंमें (न ईहसे) चेष्टा नहीं करता है किन्तु (दुःख साधने) दुःखोंके कारणोंमें तू निरंतर (यतसे) यत्न किया करता है ॥

५--अथान्यत्वानुप्रेक्षा ।

देहात्मकोऽहमित्यात्मञ्जातु चेतसि मा कृथाः ।
कर्मतो ह्यपृथक्त्वं ते त्वं निचोलासिसंनिभः ॥४७॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (देहात्मक अहं) मै देह रूप हूं (इति) यह बात (त्वं) तू (जातु) कदापि (चेतसि) अपने चित्तमें (मा कृथाः) मतला (हि) निश्चयसे (कर्मतः) कर्मसे (ते) तेरे (अपृथकत्वं) शरीरकी एकता है (त्वं) तू तो (निचोलासिसंनिभः) म्यानके भीतर रहनेवाली तलवारके समान है ॥ ४७ ॥

अध्रुवत्वादमेध्यत्वादचित्त्वाच्चान्यदङ्गकम् ।
नित्यनित्यत्वमेध्यत्वैरात्मन्नन्योऽसि काथतः ॥४८॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (अध्रुवत्वात्) अनित्य (अमेध्यत्वात्) अपवित्र और (अचित्तत्वात्) चेतना रहित इन तीन कारणोंसे (अङ्गकम्) शरीर (अन्यत्) आत्मासे भिन्न है और (नित्त्वनित्यत्वमेध्यत्वैः) सचेतन नित्य पवित्र होनेके कारण (त्वं) तू (कायतः अन्यः असि) शरीरसे भिन्न है ॥ ४८ ॥

हेये स्वयं सती बुद्धिर्यत्नेनाप्यसती शुभे ।
तद्धेतुकर्म तद्वन्तमात्मानमपि साधयेत् ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थः—(बुद्धिः) बुद्धि (हेये) बुरे कामोंमे (स्वयं सती) अपने आप ही लग जाती है किन्तु (शुभे यत्नेनापि असती) अच्छे कामोंमें प्रयत्न करने पर भी प्रवृत्त नहीं होती (तद् हेतुः) उस प्रवृत्तिसे बंधनेवाला (कर्म) कर्म ही (आत्मानं अपि) आत्माको भी (तद्वन्तं साधयेत्) वैसा ही कर देता है ॥ ४९ ॥

६—अथाशुचित्वानुप्रेक्षा ।

मेध्यानामपि वस्तूनां यत्संपर्कादमेध्यता ।
तद्गात्रमशुचीत्येतत्किं नाल्पमलसंभवम् ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—(यत्संपर्काद्) जिसके संबधसे (मेध्यानाम्) पवित्र (वस्तूनां अपि) वस्तुएं भी (अमेध्यता) अपवित्र हो जातीं हैं और जो (अल्प मलसंभवम्) अनेक रुधिर वीर्यादि मलोंसे उत्पन्न हुआ है (इति) इसलिये (एतद्) यह (किं) क्या (अशुचिः न) अपवित्र नहीं है अवश्यही अपवित्र है ॥ ५० ॥

अस्पष्टं दृष्टमङ्गं हि सामर्थ्यात्कर्मशिल्पिनः ।
स्पष्टमूहे किमन्यत्स्यान्मलमांसास्थिमज्जतः ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (कर्मशिल्पिनः) कर्मरूपी कारीगिरकी (सामर्थ्यात्) चतुराईसे (अङ्गं) शरीर अस्पष्ट दृष्ट) स्पष्ट दिखाई नहीं देता है (अतः) इसलिये (रम्यं भाषते) सुन्दर मालूम होता है (ऊहे सति) परन्तु विचार करनेपर इसमें (मलमांसास्थिमज्जतः) मल, मांस, हड्डी और मज्जाके सिवाय (अन्यत् किं स्यात्) और क्या है अर्थात् शरीर इन ही अपवित्र वस्तुओंसे बना है ॥ ५१ ॥

दैवादन्तःस्वरूपं चेद्बहिर्देहस्य किं परैः ।
आस्तामनुभवेच्छेयमात्मन्को नाम पश्यति ॥५२॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (परैः किं) और तो क्या (चेत्) यदि (दैवात्) दैवयोगसे (देहस्य) इस शरीरका (अन्तः स्वरूपं) भीतरी हिस्सा (बहिर्यात्) शरीरसे बाहर निकल आवे तो (इयं अनुभवेच्छा) इसके अनुभव करने की इच्छा तो (दूरे आस्ता) दूर ही रहे (को नाम पश्यति) कोई इसे देखेगा भी नहीं ॥ ५२ ॥

एवं पिशितपिण्डस्य क्षयिणोऽक्षयशंकृतः ।
गात्रस्यात्मन्क्षयात्पूर्वं तत्फलं प्राप्य तत्त्यज ॥ ५३॥

अन्वयार्थः—(एवं च) इस प्रकार (हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (क्षयिणाः) नाशको प्राप्त होनेवाले (अक्षयशंकृतः) किन्तु अविनाशी सुखके कारणी भूत (पिशित पिण्डस्य गात्रस्य) इस मांसके पिण्डरूप शरीरके (क्षयात् पूर्वं) नाश होनेसे पहले (तत्फलं प्राप्य) इससे मोक्षरूपी फलको प्राप्त करके (तत्त्यज) इसको छोडदे ॥ ५३ ॥

आत्तसारं वपुः कुर्यास्तथात्मंस्तत्क्षयेऽप्यभीः ।
आत्तसारेक्षुदाहेऽपि न हि शोचन्ति मानवाः ॥५४॥

अन्वयार्थः—(हि) निश्चयसे (यथा) जिस प्रकार (मानवाः) वराई बोनेवाले मनुष्य (आत्तसारेक्षुदाहेऽपि) गृहण कर लिया है रस रूपी सार जिसका ऐसे ईखके छिलकोंके जलानेमें (न शोचंति) शोक नहीं करते हैं। (तथा) उसी प्रकार (हे आत्मन्) हे आत्मन्! (त्वं) तू भी (आत्तसारं) गृहीतसार इस (वपुः) शरीरको (कुर्याः) करले (यतः) जिससे तु (तत्क्षयेऽपि) इस शरीरके नाश होनेपर भी (अभीः) भय रहित रहवे ॥ ५४ ॥

७--अथास्रवानुप्रेक्षा ।

अजस्रमास्रवन्त्यात्मन्दुर्मोचाः कर्मपुद्गलाः ।
तैः पूर्णस्त्वमधोधः स्या जलपूर्णो यथा प्लवः ॥५५॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् (दुर्मोचाः) बड़े दुःखसे अलग होनेवाले (कर्मपुद्गलाः) कर्म रूपी पुद्गल (अजस्रं) निरंतर (आश्रवन्ति) आते हैं (तैः पूर्णः) और उन कर्मोंसे परिपूर्ण भरा हुआ (त्व) तू (जलपूर्णः प्लवः यथा) जलसे भरी हुई नौकाके समान (अधोऽधःस्याः) नीचे ही नीचे चला जाता है अर्थात् अधोगतिको प्राप्त होता जाता है ॥ ५५ ॥

तन्निदानं तवैवात्मन्योगभावौ सदातनौ ।
तौ विद्धि सपरिस्पन्दं परिणामं शुभाशुभम् ॥५६॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (तन्निदानं) इस आस्रवके कारण (तवैव) तेरे ही (सदातनौ) अनादि-

कालसे प्रवृत्त (योगभावौस्तः) योग और आत्माके कषायादिक भाव हैं (तौ) और उन योग और कषायको (त्वं) तू (स परिस्पन्दं) आत्माके प्रदेशोंमें चञ्चलता सहित (शुभाशुभम्) शुभ और अशुभ रूप (परिणामं) परिणाम (विद्धि) जान । अर्थात्—आत्माके प्रदेशोंकी चंचलताको योग और शुभ अशुभ रूप आत्माके परणामोंको कषाय कहते हैं ॥ ९६ ॥

आस्रवोऽयममुष्येति ज्ञात्वात्मन्कर्मकारणे ।
तत्तन्निमित्तवैधुर्यादपवाह्योर्ध्वगो भव ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (अमुष्य) अमुक कर्मका (अयं आस्रवः) यह आस्रव है (इति ज्ञात्वा) इस प्रकार भलीभांति जानकर (तत्तन्निमित्त वैधुर्यात्) तत्तत कर्मके निमित्तके त्यागनेसे (कर्मकारणे) कर्म और कारण रूप आस्रवको (अपवाह्य) छोड़कर (ऊर्ध्वगः भव) ऊर्धगामी हो अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर ॥ ९७ ॥

८--अथ संवरानुप्रेक्षा ।

संरक्ष्य समितिं गुप्तिमनुप्रेक्षापरायणः ।
तपःसंयमधर्मात्मा त्वं स्या जितपरीषहः ॥ ९८ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (अनुप्रेक्षा-परायणः) बारह भावनाओंमें तत्पर (त्वं) तू (तपःसंयमधर्मात्मा) तप संयम और धर्म रूप होकर (समिति गुप्ति) समिति और गुप्तियोंका (संरक्ष्य) पालन करता हुआ (जितपरीषहः) बाईस २२ परीषहोंका जीतनेवाला (स्याः) हो । ९८॥

एवं च त्वयि सत्यात्मन्कर्मास्रवनिरोधनात् ।
नीरन्ध्रपोतवद्भूया निरपायो भवाम्बुधौ ॥ ५९ ॥

अन्वयार्थः—हे आत्मन्! (एवं च) इस प्रकार (कर्मास्रव निरोधनात्) कर्मोका आस्रव रुक जानेसे (त्वयि सति) तेरे निरास्रव होनेपर (नीरन्ध्रपोतवत्) रुक गया है जल आनेका द्वार जिसका ऐसी नौकाके समान तेरी आत्मा (भवाम्बुधौ) संसार रूपी समुद्रमें (निरपायः भूयाः) निर्विघ्न हो जायगी ॥५९॥

विकथादिवियुक्तस्त्वमात्मभावनयान्वितः ।
त्यक्तबाह्यस्पृहो भूया गुप्त्याद्यास्ते करस्थिताः॥६०॥

अन्वयार्थः—हे आत्मन्! (विकथादिवियुक्तः) विकथादि प्रमादोंसे रहित और (आत्मभावनयान्वितः) आत्म भावनासे युक्त होकर (त्वं) तू (त्यक्तबाह्यस्पृहः भूयाः) बाह्य पदार्थोंमें वाञ्छा रहित हो (तथा सति) ऐसा होनेपर (गुप्त्याद्याः) गुप्त्यादिक (ते) तेरे (करस्थिताःस्युः) हाथपर ही रक्खी हुई वस्तुकी तरह हो जांयगीं ॥ ६० ॥

एवमक्लेशगम्येऽस्मिन्नात्माधीनतया सदा ।
श्रेयोमार्गे मतिं कुर्याः किं बाह्ये तापकारिणि ॥६१॥

अन्वयार्थः—हे आत्मन्! (एवं) इस प्रकार (सदा) हमेशा (आत्माधीनतया) आत्माकी स्वाधीनतासे (अक्लेशगम्ये) सुलभ प्राप्त (अस्मिन्) इस (श्रेयोमार्गे) मुक्ति मार्गमें (मति कुर्याः) अपनी बुद्धि लगा (तापकारिणि बाह्ये) दुःखदायी बाह्य मार्गमें (बुद्धयाः किं प्रयोजनं) बुद्धि लगानेसे क्या प्रयोजन ? ॥६१॥

शुष्कनिर्बन्धतो बाह्ये मुह्यतस्तव हृद्व्यथा ।
प्रत्यक्षितैव नन्वात्मन्प्रत्यक्षनिरयोचिता ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (बाह्ये) बाह्य पदार्थोंमें (शुष्कनिर्बन्धतः) निःसार संबंध करके (मुह्यतः तव) मोह करते हुए तेरे (हृद्व्यथा) हृदयमें पीड़ा (प्रत्यक्ष निरयोचिता) प्रत्यक्ष तर्कके समान (प्रत्यक्षिता एव) प्रत्यक्ष सिद्ध ही है ॥ ६२ ॥

९ अथ निर्जरानुप्रेक्षा ।

रत्नत्रयप्रकर्षेण बद्धकर्मक्षयोऽपि ते ।
आध्मातः कथमप्यग्निर्दाह्यं किं वावशेषयेत् ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थः—हे आत्मन् ! (रत्नत्रयप्रकर्षेण) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रकी वृद्धिसे (ते) तेरे (बद्धकर्म क्षयोऽपि भवेत्) संचित कर्मोंका नाश हो ही जाता है जैसे (आध्मातः) धोंकनीसे उद्दीप्त हुई (अग्निः) अग्नि (दाह्यं) दाह्य वस्तुको (किं) क्या (कथमपि) किसी प्रकार (अवशेषयत्) बाकी रहने देती है किन्तु नहीं रहने देती ॥ ६३ ॥

क्षयादनास्रवाच्चात्मन्कर्मणामसि केवली ।
निर्गमे चाप्रवेशे च धाराबन्धे कुतो जलम् ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् (त्वं) तू (कर्मणां) पूर्व सचित कर्मोंके (क्षयात्) क्षयसे (अनास्रवाच्च) और आगामी आनेवाले कर्मोंके निरोधसे (केवली असि) केवलीके समान है जैसे (धारावन्धे) सरोवरमें (जलस्य निर्गमे) पूर्व

संचित जलके निकल जानेपर और (अप्रवेशे च) नवीन जलके नहीं आनेपर (जलम्) जल (कुतः) कहांसे (भवेत) हो सकता है ? ॥ ६४ ॥

रत्नत्रयस्य पूर्तिश्च त्वयात्मन्सुलभैव सा ।
मोहक्षोभविहीनस्य परिणामो हि निर्मलः ॥ ६५ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (तदा) तब (सा रत्नत्रयस्य पूर्तिश्च) वह रत्नत्रयकी पूर्ति (त्वया सुलभा एव) तेरे लिये सुलभ ही हो जायगी (हि) निश्चयसे (मोहक्षोभविहीनस्य) मोहके क्षोभसे रहित जीवके (परिणामः) परिणाम (निर्मलः) निर्मल (भवेत्येव) ही होते हैं ॥ ६५ ॥

परिणामविशुद्ध्यर्थं तपो बाह्यं विधीयते ।
न हि तण्डुलपाकः स्यात्पावकादिपरिक्षये ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थः—हे आत्मन् ! (परिणामविशुद्ध्यर्थं) परिणामोंकी शुद्धिके लिये (बाह्यं तपः) बाह्य तप (विधीयते) करना चाहिये । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (पावकादि परिक्षये) अग्नि आदिकके अभावमें (तण्डुलपाकः न स्यात्) चावलोंका पकना नहीं होता है ॥ ६६ ॥

परिणामविशुद्धिश्च बाह्ये स्यान्निःस्पृहस्य ते ।
निःस्पृहत्वं तु सौख्यं तद्बाह्ये मुह्यासि किं मुधा ॥६७॥

अन्वयार्थः—हे आत्मन (बाह्ये) बाह्य पदार्थोंमें (निःस्पृहस्य ते) इच्छा रहित तेरे (परिणामविशुद्धिश्च स्यात्) परिणामोंकी विशुद्धि होगी (तु पुनः) और (निःस्पृहत्वं सौख्यं भवति)

बाह्य पदार्थोंमें इच्छा न करना ही सुख है (तत्तस्मात्) इसलिये (बाह्ये) बाह्य पदार्थोंमें (किं) क्यों (मुधा) वृथा (मुह्यसि) मोह करता है ॥ ६७ ॥

गुप्तेन्द्रियः क्षणं वात्मन्नात्मन्यात्मानमात्मना ।
भावयन्पश्य तत्सौख्यमास्तां निश्रेयसादिकम् ॥६८॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् (गुप्तेन्द्रियः) जितेन्द्रिय होकर (आत्मनि) आत्मामें (आत्मना) आत्माके द्वारा (आत्मानं) आत्माको (क्षणं भावयन्) क्षणमात्र अनुभव न करता हुआ (त्वं) तू (तत्सौख्यं पश्य) उस सुखको देख (निश्रेयसादिकम् दूरे आस्तां) मोक्षका सुख तो दूर ही रहने दे ॥ ६८ ॥

अनन्तं सौख्यमात्मोत्थमस्तीत्यत्र हि सा प्रमा ।
शान्तस्वान्तस्य या प्रीतिः स्वसंवेदनगोचरा ॥६९॥

अन्वयार्थः—(शान्तस्वान्तस्य) शान्त अन्तःकरणवाले पुरुषोको (स्वसंवेदन गोचरा) अपने आप अनुभवमे आनेवाली (प्रीतिः) प्रीति ही (आत्मोत्थं) आत्मासे उत्पन्न (अनन्तं सौख्यं) अनन्त सुख है (हि) निश्चयसे (इत्यत्र) इसमें (सा प्रमा) यही प्रमाण है ॥ ६९ ॥

१०—अथ लोकानुप्रेक्षा ।

प्रसारिताङ्घ्रिणा लोकः कटिनिक्षिप्तपाणिना ।
तुल्यः पुंसोर्ध्वमध्याधोविभागस्त्रिमरुद्वृतः ॥ ७० ॥

अन्वयार्थः—हे आत्मन् ! (ऊर्ध्वमध्याधो विभागः) ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक और अधोलोक ये तीन विभाग हैं जिसके ऐसा

और (त्रिमरुत् वृत्तः) घनोदधिवातबलय, घनबातवलय और तनुवातवलय इन तीन बात वलयोंसे वेष्टित (प्रसारिताङ्घ्रिणा) पैर फैलाये हुए (कटिनिक्षिप्तपाणिना) कमर पर हाथ रक्खा है जिसने ऐसे (पुंसा) पूरूषके (तुल्यः) समान (लोकः अस्ति) यह लोक है ॥ ७० ॥

जन्ममृत्योः पदे ह्यात्मन्नसंख्यातप्रदेशके।
लोके नायं प्रदेशोऽस्ति यस्मिन्नाभूरनन्तशः ॥७१॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्!) हे आत्मन्! (जन्म मृत्योः) जन्म मरणके (पदे) स्थान (असंख्यातप्रदेशके) असंख्यात प्रदेश रूप (लोके) इस लोकमें (अयं प्रदेशः नास्ति) ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है (यस्मिन्) जिस प्रदेशमें (त्वं) तू (अनंतशः) अनन्तवार (न अभूः) न जन्मा मरा हो ॥७१ ॥

सत्यज्ञाने पुनश्चात्मन्पूर्ववत्संसरिष्यसि।
कारणे जृम्भमाणेऽपि न हि कार्यपरिक्षयः ॥७२॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन्!) हे आत्मन्! (अज्ञाने सति) मिथ्या ज्ञानके होने पर (त्वं) तू (पूर्ववत्) पहलेकी नाई (पुनश्च) फिर (संसरिष्यसि) संसारमें घूमेगा। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (कारणे जृम्भमाणे) कारणके विद्यमान रहने पर (अपि) क्या (कार्यपरिक्षयः भवति) कार्य नष्ट हो जाता है! (न भवति) अर्थात् कार्य कदापि नष्ट नहीं होता है ॥ ७२ ॥

यतस्व तत्तपस्यात्मन्मुक्त्वा मुग्धोचितं सुखम्।
चिरस्थाय्यन्धकारोऽपि प्रकाशे हि विनश्यति ॥७३॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (मुग्धोचितं) मूढ पुरुषोंके भोगने योग्य (सुखं) इन्द्रिय सुखको (मुक्त्वा) छोड़कर (तपसि यतस्व) तप करनेमें यत्न कर अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (प्रकाशे) प्रकाश होनेपर (चिरस्थायी) चिरकालसे स्थित (अन्धकारः अपि) अन्धकार भी (विनश्यति) नष्ट हो जाता है ॥ ७३ ॥

११-अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा ।

भव्यत्वं कर्मभूजन्म मानुष्यं स्वङ्गवंश्यता ।
दुर्लभं ते क्रमादात्मन्समवायस्तु किं पुनः ॥ ७४ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (ते) तेरा (कर्मभूजन्म) कर्म भूमिमें जन्म लेना, (मानुष्यं) मनुष्यपर्यायका पाना, (भव्यत्वं) भव्यता, (स्वङ्गवंश्यता) सुन्दर शरीर और अच्छे कुलमे उत्पन्न होना-ये सब बातें (क्रमात्) क्रमसे (उत्तरोत्तरं दुर्लभं) उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं (तु) और (समवायः) इन सबका एक जगह मिलना तो (अतीव दुर्लभः) अत्यन्त ही दुर्लभ है ॥ ७४ ॥

व्यर्थः स समवायोऽपि तवात्मन्धर्मधीर्न चेत् ।
कणिशोद्गमवैधुर्ये केदारादिगुणेन किम् ॥ ७५ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! अब भी (चेत्) यदि (तव) तेरी (धर्मधीः न स्यात्) धर्ममें बुद्धि नहीं हुई तो (स समवायः अपि व्यर्थः) पूर्वोक्त सब बातोंका मिलना भी निष्फल है । अत्र नीतिः ! (हि) निश्चयसे (कणिशोद्गमवैधुर्ये)

अन्नके पौधोंमें अन्नयुक्त बालोंके न निकलने पर (केदारादिगुणेन) खेत आदिक सामग्रियोंके उत्तम होनेसे (किं) क्या प्रयोजन ? ॥ ७५ ॥

तदात्मन्दुर्लभं गात्रं धर्मार्थे मूढ कल्प्यताम् ।
भस्मने दहतो रत्नं मूढः कः स्यात्परो जनः ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थः—(हे मूढात्मन् !) हे मूढ त्मन् ! इसलिये (तद् दुर्लभं गात्रं) इस दुर्लभ शरीरको (धर्मार्थे) धर्मके लिये (कल्प्यताम्) संकल्प करदे । अत्र नीति : ! (हि) निश्चयसे (भस्मने) भस्मके लिये (रत्नं दहतः) रत्नको जलाने वाले पुरुषकी अपेक्षा (परः) दूसरा (कः) कौन (जनः) मनुष्य (मूढः) मूर्ख (स्यात्) है ॥ ७६ ॥

देवता भविता श्वापि देवः श्वा धर्मपापतः ।
तं धर्मं दुर्लभं कुर्या धर्मो हि भुवि कामसूः ॥ ७७ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् ! धर्मपापत.) धर्म और पापसे (श्वापि) कुत्ता भी (देवः) देव और (देवता) देवता (श्वा) कुत्ता (भविता) हो जाता है । इसलिये तू (दुर्लभं) दुर्लभ (तं) उस (धर्मं) धर्मको (कुर्याः) धारण कर (हि) निश्चयसे (भुवि) संसारमें (धर्मः) धर्म (कामसूः) इच्छित कार्य को पुष्ट करने वाला है ॥ ७७ ॥

भव्यस्याबाह्यचित्तस्य सर्वसत्वानुकम्पिनः ।
करणत्रयशुद्धस्य तवात्मन्बोधिरेधताम् ॥ ७८ ॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (भव्यस्य) भव्य, (अबाह्य चित्तस्य) बाह्य पदार्थोंमें मानसीक वृत्ति रहित,

(सर्वसत्वानुकम्पिनः) सम्पूर्ण जीवोंपर दया करने-वाले और (करणत्रयशुद्धस्य) अध.करण, अपूर्वकरण तथा अनवृत्तिकरण रूप परिणामोंसे निर्मल (तव) तेरे (बोधिःएधताम्) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी वृद्धि होवै ॥ ७८ ॥

१२–अथ धर्मानुप्रेक्षा ।

पश्यात्मन्धर्ममाहात्म्यं धर्मकृत्यो न शोचति ।
विश्वैर्विश्वस्यते चित्रं स हि लोकद्वये सुखी ॥७९॥

अन्वयार्थः—(हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (त्वं) तू (धर्ममाहात्म्यं पश्य) धर्मका माहात्म्य देख (धर्मकृत्यः) धर्म कार्य करने वाला मनुष्य (न शोचति) कभी शोक नहीं किया करता है और (विश्वैः विश्वस्यते) सब मनुष्य उसका विश्वास करते हैं । (हि) निश्चयसे (चित्रं) आश्चर्य है (स.) वह (लोकद्वये) दोनों लोकोंमें (सुखी भवति) हमेशा सुखी रहता है ॥ ७९ ॥

तवात्मन्नात्मनीनेऽस्मिञ्जैनधर्मेऽतिनिर्मले ।
स्थवीयसी रुचिः स्थेयादामुक्तेर्मुक्तिदायिनी ॥८०॥

अन्वयार्थः—इसलिये (हे आत्मन् !) हे आत्मन् ! (आमुक्ते) जबतक मुक्ति न हो तब तक (आत्मनीने) आत्माका हित करनेवाले, (अति निर्मले) अत्यन्त निर्मल (अस्मिन् जैन धर्मे) इस जैन धर्ममें (तव) तेरी (स्थवीयसी) स्थिर (मुक्तिदायिनी) मुक्तिको देनेवाली (रुचिः स्थेयात्) रुचि होवे ॥ ८० ॥

इति द्वादशानुप्रेक्षा ।

इत्यनुप्रेक्षया चासीदक्षोभ्यास्य विरक्तता ।
व्यवस्था हि सतां शैली साहाय्येऽप्यत्र किं पुनः॥८१॥

अन्वयार्थः—(इति) इस प्रकार (अनुप्रेक्षया) बारह भावनाओंके चिन्तवन करनेसे (अस्य) इन जीवंधर महाराजका (विरक्तता) वैराग्य भाव (अक्षोभ्य) स्थिर (आसीत्) हो गया। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे (सतां) सज्जन पुरुषोंकी (शैली) किसी कार्यके प्रारम्भ करनेकी प्रवृत्ति (व्यवस्था स्यात्) निश्चल हुआ करती है और (अपि) यदि (अत्र साहाय्ये) इसमें सहायता मिल जाय तो (किं पुनः वक्तव्यः) फिर कहना ही क्या है ॥ ८१ ॥

विरक्तो राज्यमन्यच्च न तृणायाप्यमन्यत ।
हस्तस्थेऽप्यमृते को वा तिक्तसेवापरायणः ॥ ८२ ॥

अन्वयार्थः—(विरक्तः) फिर संसारके विषयोंसे विरक्त जीवंधर महाराजने (राज्यं) अपने राज्यको (अन्यच्च) और सब पदार्थोंको (तृणाय अपि) तृणके समान भी (न अमन्यत) नहीं समझा। अत्र नीतिः! निश्चयसे (हस्तस्थे) हाथमे रक्खे हुए (अमृतेऽपि) अमृतके होने पर भी (को वा) कौन बुद्धिमान् पुरुष (तिक्तसेवापरायणः स्यात) कड़वी वस्तुके सेवन करनेमें तत्पर होगा? कोई भी नहीं ॥ ८२ ॥

ततस्तस्माद्विनिर्गत्य संपूज्य परमेश्वरम् ।
योगीन्द्रादशृणोद्धर्ममधीती जिनशासने ॥ ८३ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) तदनन्तर (जिनशासने अधीती) जैन शास्त्रोंके जाननेवाले उन जीवंधर स्वामीने (तस्मात् विनिर्गत्य) वहांसे आकर (परमेश्वरम् संपूज्य) जिनेन्द्र भगवानकी पूजा कर (योगीन्द्रात) किसी ऋद्धिधारी मुनिसे (धर्म अशृणोत्) धर्म श्रवण किया ॥ ८३ ॥

धर्मश्रुतेर्बभूवायं धार्मविद्योऽतिनिर्मलः ।
अत्युत्कटो हि रत्नांशुस्तद्ज्ञवेकटकर्मणा ॥ ८४ ॥

अन्वयार्थः—और फिर (धर्मश्रुतेः) धर्मका स्वरूप सुननेसे (अयं) यह जीवंधर कुमार (अति निर्मलः) अत्यंत निर्मल (धार्मविद्यः बभूव) धर्म विद्याके जाननेवाले होगये। अत्र नीतिः! (हि) निश्चयसे जिस प्रकार (रत्नांशुः) रत्नोंकी किरणें (तद्ज्ञवेकटकर्मणा) रत्नको शान पर रखनेवाले चतुर मनुष्यकी चमक आनेकी चतुराईसे (अत्युत्कटः अभूत्) अत्यन्त उज्वल होजाती हैं उसी प्रकार जीवंधर स्वामी और धर्मका स्वरूप सुननेसे और भी बडे भारी तत्वज्ञाता हो गये ॥ ८४ ॥

पुनश्चारणयोगीन्द्रः पूर्वजन्मबुभुत्सया ।
भूपेन परिपृष्टोऽयमाचष्टास्य पुराभवम् ॥ ८५ ॥

अन्वयार्थः—(पुनश्च) फिर (पूर्वजन्मबुभुत्सया) अपने पूर्वजन्मके वृतान्तको जाननेकी इच्छासे (भूपेन) राजासे (परिपृष्टः) पूछे गये हुए (अय चारणयोगीन्द्रः) उन चारण मुनिने (अस्य पुराभवम्) इन जीवंधर महाराजके पूर्वजन्मका वृतान्त (आचष्ट) इस प्रकार कहा ॥ ८५ ॥

अब अगाड़ीके ६ श्लोकोंमें चारण मुनि जीवंधर महाराजके पूर्वजन्मका वृत्तान्त कहते हैं ॥

भूपेन्द्र धातकीषण्डे भूम्यादितिलके पुरे ।
सूनुः पवनवेगस्य राज्ञोऽभूस्त्वं यशोधरः ॥ ८६ ॥

अन्वयार्थः—(हे भूपेन्द्र!) हे राजन्! (धातकी षण्डे) धातुकी खण्ड नामके द्वीपमें (भूम्यादितिलके पुरे) भूमितिलक

नामके पुरम् (त्व) तुम (राज्ञः पवनवेगस्य) राजा पवनवेगका (यशोधरः सूनुः अभूः) यशोधर नामके पुत्र थे ॥ ८६ ॥

राजहंस कदाचित्त्वं राजहंसस्य शावकम् ।
नीडात्क्रीडार्थमानीय निरवद्यमवीवृधः ॥ ८७ ॥

अन्वयार्थः—(हे राजहंस !) हे राजश्रेष्ठः (त्वं) तुमने (कदा चित्) किसी समय (राजहंसस्य शावकम्) हंसके बच्चेको (क्रीड़ार्थ) खेलनेके लिये (नीड़ात् आनीय) घोंसलेसे लाकर (निरवद्यं यथास्यात्तथा अवीवृधः) उसका निर्दोषतासे पालन पोषण किया ॥ ८७ ॥

तत्कुतोऽपि समाकर्ण्य धार्मविद्यः स ते पिता ।
तदा धर्ममुपादिक्षद्यतोऽभूरतिधार्मिकः ॥ ८८ ॥

अन्वयार्थः—(तदा) उस समय (धार्मविद्यः) धर्मात्मा (सः) उस (ते) तुम्हारे (पिता) पिताने (तत् कुतः अपि) यह बात कहींसे (समाकर्ण्य) सुनकर तुमको (धर्म उपादिक्षत्) धर्मका उपदेश दिया (यतः) जिस उपदेशके सुननेसे (त्वं) तुम (अति धार्मिकः अभूः) अत्यन्त धर्मात्मा बन गये ॥ ८८ ॥

निवारितोऽपि पित्रा त्वमतिनिर्वेदतस्ततः ।
जातरूपधरो जातः स्त्रीभिरष्टाभिरन्वितः ॥ ८९ ॥

अन्वयार्थः—(ततः) फिर (पित्रा) पितासे (निवारितः अपि) रोके हुए भी (त्वं) तुम (अतिनिर्वेदतः) अत्यन्त वैराग्यके कारण (अष्टाभिः स्त्रीभिः अन्वितः) आठ स्त्रियों करके सहित (जातरूपधरः जातः) दिगम्बरी मुनि हो गये ॥ ८९ ॥

घोरेण तपसा लब्ध्वा देवत्वं च त्रिविष्टपात् ।
अष्टाभिः स्त्रीभिरेताभिरत्राभूर्भव्यपुङ्गव ॥ ९० ॥

अन्वयार्थः—(हे भव्यपुङ्गव !) हे भव्य श्रेष्ठ ! फिर (त्वं) तुम (घोरेण तपसा) घोर तपश्चरणके द्वारा (देवत्वं च लब्ध्वा) देव पर्यायको प्राप्त कर (त्रिविष्टपात्) फिर उस स्वर्गसे चयकर (अत्र) यहांपर (एताभिः अष्टाभिः स्त्रीभिः सह) इन आठ स्त्रियोंके साथ (अभूः) उत्पन्न हुए हो ॥ ९० ॥

स्वपदाद्बालहंसस्य पितृभ्यां च पुराभवे ।
वियोजनाद्वियोगस्ते बन्धोऽभूदिव बन्धनात् ॥९१॥

अन्वयार्थः—इस लिये (पुराभवे) पूर्व जन्ममें (बालहंसस्य) हंसके बच्चेको (स्वपदात्) उसके स्थान (पितृभ्यां च) और माता पितासे (वियोजनात्) वियोग करानेसे (ते वियोगः) स्थान और माता पितासे वियोग और (बन्धनात्) उस बच्चेको पिंजरेमें बन्द कर रोकनेसे (बन्धः अभूत्) तुम्हारा बन्धन हुआ ॥ ९१ ॥

इति योगीन्द्रवाक्येन भोगीव पविपाततः ।
भीतो राज्यादयं राजा प्रणम्य स्वपुरीमयात् ॥९२॥

अन्वयार्थः—(इति योगीन्द्र वाक्येन) इस प्रकार मुनिके वचनोंसे (पविपाततः) बिजलीके गिरनेसे (भीतः भोगी इव) डरे हुए सर्पकी तरह (राज्यात् भीतः) राज्यसे भयभीत (अयं राजा) यह जीवंधर महाराज (प्रणम्य) मुनिको नमस्कार कर (स्वपुरीं अयात्) अपनी नगरीमें आये ॥ ९२ ॥

सद्धर्मामृतपानेन सानुजास्तस्य वल्लभाः ।
विषप्रख्यममन्यन्त तत्सौख्यं विषयोद्भवम् ॥ ९३ ॥

अन्वयार्थः—(सानुजाः) इनके छोटे भाई सहित (तस्य-वल्लभाः) इनकी आठों स्त्रियोंने (सद्धर्मामृतपानेन) धर्म रूपी अमृतको पान करनेसे (विषयोद्भवं सौख्यं) पंचेन्द्रियोंके विषयसे उत्पन्न सुखको (विषप्रख्य अमन्यन्त) विषके समान समझा ॥९३॥

तत्र गन्धर्वदत्तायाः पुत्रं सत्यंधराह्वयम् ।
अभिषिच्य ततस्ताभिः प्रापदास्थायिकां कृती ॥९४॥

अन्वयार्थः—(तत्र) वहां पर (कृती) बुद्धिमान जीवंधर महाराजने (गन्धर्वदत्तायाः) गन्धर्वदत्ताके (सत्यंधराह्वयम्) सत्यंधर नामके (पुत्रं) पुत्रको (अभिषिच्य) राज्य भिषेक करके (ततः) फिर (ताभिः सह) अपनी आठ स्त्रियोंके साथ (आस्थायिकां प्रापत्) भगवानके समोसरणमें पहुंचे ॥ ९४ ॥

श्रीसभायां समभ्येत्य श्रीवीरं जिननायकम् ।
पूजयामास पूज्योऽयमस्तावींच्च पुनः पुनः ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थः—फिर (अयं पूज्यः) इन पूज्य जीवंधर महाराजने (श्री सभायां समभ्येत्य) समवसरण सभामें पहुंचकर (जिननायकं श्रीवीरं) जिनेन्द्र श्रीमहावीर स्वामीकी (पूजयामास) पूजा की और (पुनः २ अस्तावीत्) फिर वारंवार उनका स्तवन किया ॥ ९५ ॥

भगवन्भवरोगेण भीतोऽहं पीडितः सदा ।
[illegible] कारणा ॥९६॥

अन्वयार्थः—(हे भगवान् !) हे भगवान् ! (अहं) मैं (भवरोगेण) संसारके जन्म मरणके रोगसे (सदा) हमेशासे (पीडितः) पीडित और (भीत. अस्मिः) भयभीत हूं तो भी (त्वयि अकारणवैद्येऽपि) आपके अकारण वैद्य होनेपर भी (किं) क्या (तस्य कारणा) उसकी वेदना (सह्या) सहने योग्य है ? अर्थात् आप इस वेदनाको शीघ्र ही नष्ट करें ॥ ९६ ॥

त्वं सार्वः सर्वविद्देव सर्वकर्मणि कर्मठः ।
भव्यश्चाहं कुतो वा मे भवरोगो न शाम्यति ॥९७॥

अन्वयार्थः—(हे देव !) हे देव ! (त्वं) आप (सार्वः) सबके हित करने वाले (सर्ववित्) सब कुछ देखने जाननेवाले और (सर्वकर्मणि कर्मठः) संपूर्ण संचित कर्मोंके नाश करनेमें शूर-वीर (असि) हो (च) और (अहं) मैं (भव्यः) एक भव्य हूं तो (मे भवरोगः) मेरा संसारका रोग (कुत. वा न शाम्यति) क्यों शान्त नहीं होता ॥ ९७ ॥

निर्मोह मोहदावेन देहजीर्णोरुकानने ।
दह्यमानतया शश्वन्मुह्यन्तं रक्ष रक्ष माम् ॥ ९८ ॥

अन्वयार्थः—(हे निर्मोह !) हे मोहरहित जिनेन्द्र ! (देह जीर्णोरुकानने) देह रूपी पुरानी बड़ी भारी अटवीमें (मोहदावेन) मोह रूपी दावानलसे (दह्यमानतया) जलनेके कारण (शश्वत् मुह्यन्तं) निरंतर विवेक रहित (मां) मुझको (रक्ष ! रक्ष ! !) रक्षा करो ! ! ॥ ९८ ॥

संसारविषवृक्षस्य सर्वापत्फलदायिनः ।
अङ्कुरं रागमुन्मूलं वीतराग विधेहि मे ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थः—(हे वीतराग !) हे वीतराग ! (सर्वापत्फलदायिनः) सर्व प्रकारकी विपत्ति रूपी फलको देनेवाले (संसारविष वृक्षस्य) संसार रूपी विषवृक्षके (अंकुरं) अंकुरके समान (मे रागं) मेरे राग भावको (उन्मूलं विधेहि) जड़से रहित करदे ॥ ९९ ॥

कर्णधार भवार्णोधेर्मध्यतो मज्जता मया ।
कृच्छ्रेण बोधिनौर्लब्धा भूयान्निर्वाणपारगा ॥१००॥

अन्वयार्थः—(हे कर्णधार !) हे सच्चे खेवटिया भगवत् ! (भवार्णोधेः मध्यतः) संसार रूपी समुद्रके मध्यमें (मज्जता मया) डूबते हुए मेरे द्वारा (कृच्छ्रेणलब्धा) बड़ी कठिनाईसे प्राप्त की हुई (बोधिनौः) रत्नत्रय रूपी नौका (निर्वाणपारगा भूयात्) मुझे मोक्ष रूपी पार पर पहुंचाने वाली होवै ॥ १०० ॥

इति स्तोत्रावसाने च लब्ध्वायं त्रिजगद्गुरोः ।
अनुज्ञां जिनदीक्षायामानमद्गणनायकम् ॥ १०१ ॥

अन्वयार्थः—(इति त्रिजगद्गुरोः) इस प्रकार तीन जगतके स्वामी महावीर स्वामीके (स्तोत्रावसाने) स्तवनके अन्तमें (अयं) इन्होंने (अनुज्ञां लब्ध्वा) आज्ञा पाकर (जिन दीक्षायाम्) जिन दीक्षा लेनेके प्रारंभमें (गणनायकम्) गणधरको (आनमत्) नमस्कार किया ॥ १०१ ॥

प्राज्ञः प्रव्रज्य तत्पार्श्वे तपस्तेपेऽतिदुश्चरम् ।
येन कर्माष्टकस्यापि नष्टता स्याद्यथाक्रमम् ॥१०२॥

अन्वयार्थः—फिर (प्राज्ञः) बुद्धिमान राजाने (प्रव्रज्य) दीक्षा ग्रहण करके (तत्पार्श्वे) महावीर स्वामीके निकट (अति

दुश्चरम् तपः) बहुत कठोर तप (तेपे) किया (येन) जिस तपके द्वारा (कर्माष्टकस्य) आठ कर्मोंका (नष्टता) नाशपना (यथाक्रमम् स्यात्) यथाक्रमसे होता है ॥ १०२ ॥

श्रीरत्नत्रयपूर्त्याथ जीवंधरमहामुनिः ।
अष्टाभिः स्वगुणैः पुष्टोऽनन्तज्ञानसुखादिभिः ॥१०३॥

अन्वयार्थः—(अथ) इसके अनंतर (जीवंधर महामुनिः) वे जीवंधर महामुनि (श्रीरत्नत्रयपूर्त्या) श्रीसम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी परिपूर्णतासे (अनन्तज्ञानसुखादिभिः) अनन्त सुखादिक (अष्टाभिः स्वगुणैः) आठ आत्माके स्वाभाविक गुणोंसे (पुष्टः अभूत्) पुष्ट हुए ॥ १०३ ॥

सिद्धो लोकोत्तराभिख्यां केवलाख्यामकेवलाम् ।
अनुपमामनन्तां तामनुबोभूयते श्रियम् ॥ १०४ ॥

अन्वयार्थः—फिर (सिद्धः भूत्वा) सिद्ध पदवीको प्राप्त कर (लोकोत्तराभिख्यां) सर्व लोकोत्कृष्ट (अनुपमां) उपमा रहित (तां)उस (अनन्तां) अनन्त (केवलाख्यां) केवलज्ञान रूपी (अकेवलां श्रियं) मुख्य मोक्षरूपी लक्ष्मीका (अनुबोभूयते) अनुभव किया १०४॥

एवं निर्मलधर्मनिर्मितमिदं शर्म स्वकर्मक्षय-
प्राप्तं प्राप्तुमतुच्छमिच्छतितरां यो वा महेच्छो जनः ।
सोऽयं दुर्मतकुञ्जरप्रहरणे पञ्चाननं पावनं
जैनं धर्ममुपाश्रयेत मतिमान्निश्रेयसः प्राप्तये ॥१०५॥

अन्वयार्थः—(योवा महेच्छोजनः) जो उत्तम सहृदय पुरुष (एवं) इस प्रकार (निर्मलधर्मनिर्मितं) पवित्र धर्मको

सेवन करनेसे रचित (स्वकर्मक्षयप्राप्तं) आत्माके अष्ट कर्मोंके नाश होनेसे प्राप्त (अतुच्छं) महान (इदं शर्म) इस सुखको (प्राप्तुं) प्राप्त करनेके लिये (इच्छतितरां) अतिशय इच्छा करता है (सः अयं मतिमान्) वह यह बुद्धिमान पुरुष (निश्श्रेयसः प्राप्तये) मोक्षकी प्राप्तिके लिये (दुर्मतकुञ्जर प्रहरणे) मिथ्या मत रूपी हस्तियोंके नाश करनेके लिये (पञ्चाननं) सिंहके समान (पावनं) पवित्र (जैनंधर्मं) जिनेन्द्र प्रणीत धर्मको (उपाश्रयेत) धारण करे ॥ १०५ ॥

राजतां राजराजोऽयं राजराजो महोदयैः ।
तेजसा वयसा शूरः क्षत्रचूडामणिर्गुणैः ॥ १०६ ॥

अन्वयार्थः—(गुणैः क्षत्रचूडामणिः) राजाके गुणोंसे क्षत्रियोंके शिरोभूषण, (तेजसा) तेज (च) और (वयसा) युवावस्थासे (शूरः) शूरवीर (महोदयैः) महान् ऐश्वर्यसे (राजराजः) कुबेरके समान (अयं राजराजः) ये राजाओंके राजा जीवंधर महाराज निरंतर (राजतां) शोभायमान होवें ॥ १०६ ॥

इति ।

इति श्रीमद्वादीभसिंहसूरिविरचिते क्षत्रचूड़ामणौ सान्वयार्थो मुक्ति श्री लम्भो नाम एकादशोलम्बः ।